जुलाई 2021

# रंग संवाद

रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र
तथा वनमाली सृजन पीठ की संवाद पत्रिका

भूरी बाई

## सांस्कृतिक आपसदारी के अर्थ

टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र

## रबिन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल

## शिक्षा तथा संस्कृति की परस्परता का रचनात्मक उपक्रम

## अवधारणा, परिदृश्य और उद्देश्य

नई छात्र पीढ़ी में विज्ञान और तकनीकी शिक्षा के साथ संस्कृति, कला तथा साहित्य के प्रति जिज्ञासा, अभिरूचि, सृजन और संस्कारशील व्यक्तित्व गढ़ने के उद्देश्य से रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वकला एवं संस्कृति केन्द्र की स्थापना की गई है।

अपनी सक्रियता के चलते इस केन्द्र ने अध्ययन, शोध और प्रदर्शनकारी गतिविधियों के माध्यम से विश्वविद्यालय में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं तथा विभिन्न विधाओं के अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त सर्जकों और विशेषज्ञों के बीच नवोन्मेषी रचनात्मक परिवेश तैयार किया है।

यह केन्द्र रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल, डॉ. सी. वी. रामन विश्वविद्यालय, बिलासपुर, खंडवा और पटना तथा आईसेक्ट विश्वविद्यालय हजारीबाग में समान रूप से संचालित है। भोपाल इसकी केन्द्रीय इकाई है।

विभिन्न ललित कलाओं, संस्कृति और साहित्य के विभिन्न पक्षों को अपनी गतिविधियों के दायरे में रखते हुए यह केन्द्र आंचलिक प्रस्तुतियों के अलावा शोध, विमर्श, संवाद, सृजन-शिविर, कार्यशालाओं, पुस्तक लोकार्पण, व्याख्यान, संपादन, अनुवाद और दस्तावेज़ीकरण की दिशाओं में सक्रिय है।

स्थानीय, प्रादेशिक, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय महत्व के अनेक आयोजनों ने सकारात्मक परिवेश तैयार किया है। इस केन्द्र की सक्रियता को साहित्य, ललित कलाओं और रंगमंच की श्रेणियों में देखा जा सकता है।

अपनी प्रवृत्तियों और उद्देश्यों के साथ टैगोर विश्वकला एवं संस्कृति केन्द्र बहुलता की संस्कृति का आदर करते हुए सौहार्द और समन्वय की पुनर्स्थापना के लिए कृत संकल्प है।


**संपर्क**

भोपाल-चिकलोद रोड, बंगरसिया चौराहे के पास, भोपाल, फोन : 0755-2700400, 2700404, मो. 9826392428

ई-मेल : tagorekala9@gmail.com, vinay.srujan@gmail.com

# रंग संवाद


जुलाई– 2021

**टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र तथा**

**वनमाली सृजन पीठ, रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय की**

**संवाद पत्रिका**

प्रधान संपादक

**संतोष चौबे**

choubey@aisect.org

संपादक

**विनय उपाध्याय**

vinay.srujan@gmail.com

शब्दांकन **: अमीन उद्दीन शेख़**



**संपादकीय संपर्कः**

22, E-7, अरेरा कॉलोनी,

भोपाल–462016

फोन : 0755-2423806, मोबाइल : 9826392428


• • •


जरूरी नहीं कि पत्रिका में संग्रहित आलेखों–चित्रों में व्यक्त रचनाकारों के विचारों से 'रंग संवाद' सहमत हो। किसी भी विवाद के लिए न्यायिक क्षेत्र भोपाल रहेगा।


---


**टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र तथा**

**वनमाली सृजन पीठ ( रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय ), भोपाल द्वारा प्रकाशित**

ई–मेल : **tagorekalabpl@gmail.com**

**मुद्रक : पहले पहल प्रिंटरी प्रेस कॉम्प्लेक्स, भोपाल**

भूरी बाई

## इस बार


● आपसदारी के अर्थ–**नर्मदा प्रसाद उपाध्याय**/7

● अभिनेता के कर्ज़ पर ज़िंदा रहता है क़िरदार–**मोहन आगाशे**/12

● बहुआयामी होना ही मेरी ताक़त– **अतुल तिवारी**/ 35

● नृत्यमय जगत– **स्वरांगी साने की कविता**/45

● मन भीगे मौसम के मनछूते रूपक– **विनय**/48

● जनजातीय देवलोक में प्रवेश– **विजय मनोहर तिवारी**/50

**अलंकरण/52**

भूरी बाई ● कपिल तिवारी

**सदी के नायक/55**

रविशंकर ● सैयद हैदर रज़ा ● सिद्धेश्वर सेन

**स्मृति शेष/60**

अस्ताद देबू ● सुनील कोठारी ● गुलाम मुस्तफ़ा ● मुकुंद लाठ ● मंगलेश डबराल ● अभिलाष ● राजन मिश्र ● नरेन्द्र कोहली ● मंज़ूर एहतेशाम ● राजाराम ● सुरेश मिश्र ● श्याम मुंशी ● महेन्द्र गगन ● सुनील मिश्र ● प्रभु जोशी ● रमेश उपाध्याय ● बटुक चतुर्वेदी ● ज़हीर कुरेशी ● राजेश झरपुरे ● अनिल चौबे ● अनुराग सीठा ● राजकुमार केसवानी ● वसंत काशीकर ● प्रशांत रामस्नेही ● मोहन नागर ● सतीश मेहता ● सिद्धराम स्वामी कोरवार ● युगेश शर्मा ● कुँअर बेचैन

(आलेख : विनय उपाध्याय, राकेश श्रीमाल, अजय बोकिल, संजय सिंह राठौर)

**विश्वरंग 2020 पर विस्तृत रपट/16**

सरहदों तक बहता संस्कृति का सैलाब

**सृजन के आसपास/87**

सांस्कृतिक गतिविधियाँ


---


**आवरण चित्र :** भूरी बाई **आवरण आकल्पन :** वंदना श्रीवास्तव

**भीतर का आकल्पन :** विनय उपाध्याय, अमीन उद्दीन शेख

**छायाचित्र :** उपेन्द्र पटने, आलोक खत्री, नीरज रिछारिया, प्रवीण दीक्षित, विजय रोहतगी

**सहयोग :** संतोष कौशिक, हेमंत देवलेकर, मुकेश सेन

# कलात्मक संवेदना की ज़रूरत

'रंग संवाद' का यह अंक वैश्विक महामारी की दूसरी लहर के बाद प्रकाशित हो रहा है। इस दौर में हमने अपने कई प्रिय मित्रों को खो दिया। भाई महेंद्र गगन, प्रभु जोशी, मंजूर एहतेशाम, रमेश उपाध्याय, ज़हीर कुरैशी, श्याम मुंशी, राजकुमार केसवानी.... जाने कितने नाम इस वक्त याद आ रहे हैं और दिल दुखा रहे हैं। 'रंग संवाद' का यह अंक उन सब मित्रों की स्मृति को समर्पित है।

हमारा मानना है कि विकास की जो राह हमने पकड़ी है (वैश्विक स्तर पर भी और राष्ट्रीय स्तर पर भी) उसमें प्रकृति पर विजय नहीं, प्रकृति के साथ समन्वय दृष्टि को शामिल होना होगा, नहीं तो प्रकृति अपने रंग दिखाती रहेगी और मानव अंततः उससे अचंभित होकर दुख के समुद्र में डूबता-उतरता रहेगा। मुझे बरबस ही कोविड की पहली लहर के दौरान ई.एफ. शूमाकर के अपने अनुवाद की याद आ रही है जो आज से लगभग सात सौ वर्ष पूर्व लिखी महान कवि 'दांते' की रचना 'डिवाईन कॉमेडी' से समाप्त होता है।

डिवाइन कॉमेडी में दांते जब जागते हैं और अपने आप को भयानक घने अंधेरे जंगल में पाते हैं, जहाँ वह कभी जाना नहीं चाहते थे, तो पहाड़ पर चढ़ने की उनकी सदिच्छा उनके काम नहीं आती, पहले उन्हें दावानल में उतरना पड़ता है जिससे वे पाप के यथार्थ को पूरा-पूरा समझ सकें। आज के समय में उन लोगों को, जो आज की परिस्थितियों को उसी दावानल के समकक्ष समझते हैं, 'डूम्सडे वाचर' या निराशावादी कहा जाता है। डोरोथी सेयर्स जो दांते की श्रेष्ठ टिप्पणीकार के रूप में जानी जाती हैं और आधुनिक विश्व की समस्याओं पर भी बहुत अच्छा लिखती हैं, का कहना है कि :

> 'दांते के उपन्यास का दावानल आधुनिक मानव समाज के पाप और भ्रष्टाचार का ही एक चित्र है, इस बात से सभी सहमत होंगे। आज जब कि हममें से अधिकतर लोग इस बात से सहमत हैं कि समाज की हालत खराब है और वह किसी आदर्श स्थिति की ओर नहीं बढ़ रहा है तब हम आसानी से यह भी समझ सकते हैं कि किन चरणों में यह गहरा भ्रष्टाचार समाज में पैठा है। निरर्थकता बोध, एक जीवित आस्था की अनुपस्थिति, गिरी हुई नैतिकता की ओर भटकाव, लालची किस्म का उपभोक्तावाद, आर्थिक ग़ैर ज़िम्मेदारी, अनियंत्रित और गुस्सैल स्वभाव, ज़िद्दी' किस्म का व्यक्ति वाद तथा हठधर्मिता, हिंसा, जीवन तथा संपत्ति के प्रति सम्मान का कम होना जिसमें खुद का जीवन और संपत्ति भी शामिल है, सेक्स के आधार पर शोषण, विज्ञापनों और

प्रचार द्वारा भाषा का खराब होना, धर्म का व्यवसायीकरण, मनुष्य को अंधविश्वास और जनोन्माद तथा मंत्र मुग्ध करने वाले वक्तव्यों द्वारा नियंत्रण में लेना, खोखलापन और जनजीवन का कठपुतलियों की डोर खींचने जैसा नियंत्रण, भौतिक सुखों में गैर ईमानदारी, बौद्धिक ग़ैर ईमानदारी, असहमतियों को बढ़ावा देना, एक वर्ग को दूसरे के और एक देश को दूसरे के खिलाफ खड़ा करना, जिससे पता नहीं किसी को क्या मिलता है, संवाद के सभी तरीकों के साथ जालसाजी और उनका नाश, व्यक्ति की सबसे निम्नस्तरीय और सबसे मूर्खतापूर्ण भावनाओं का शोषण, अपने ही भाई बंधु, देश और चयनित मित्रों के साथ धोखाधड़ी, जिनके प्रति शायद आपने समर्पण की शपथ ली थी, ये वे सारे चरण हैं जो धीरे-धीरे समाज को एक ठंडी मौत की ओर ले जा रहे हैं और सारे सभ्यता पूर्ण संबंधों पर धूल डालने का काम कर रहे हैं।'

देखिए कि यह कितनी और कैसी अपसारी समस्याएँ हैं! और फिर भी लोग गुस्सा हो जाते हैं जब उनसे कहा जाता है कि समाज का पुनर्निर्माण बाहर से नहीं, भीतर से होगा। उपरोक्त पैराग्राफ लगभग पच्चीस वर्षों पूर्व लिखा गया था। उसके बाद ढलान की तरफ ज्यादा प्रगति हुई है और अब हम दावानल को और गहराई से पहचान पाते हैं।

लेकिन कुछ धनात्मक बदलाव भी हुए हैं: कुछ लोग अब गुस्सा नहीं होते जब उनसे कहा जाता है कि पुनर्निर्माण भीतर से होगा। इस विश्वास को, कि राजनीति ही सब कुछ है और सिस्टम में क्रांतिकारी बदलाव सभ्यता को बचाने के लिए काफी होगा, अब उस पागलपन के साथ नहीं बचाया जाता जैसा पच्चीस साल पूर्व किया जाता था, दुनिया में सभी तरफ नयी जीवनशैलियों की तलाश जारी है और स्वयंसेवी रूप से, सरलता का पक्ष लिया जाने लगा है। वैज्ञानिक भौतिकवाद की अहम्मन्यता अब ढलान पर है और विनम्र समाज में कभी-कभी ईश्वर के ज़िक्र करने को बरदाश्त कर लिया जाता है। यह माना जाना चाहिए कि मनुष्य के दिमाग में यह परिवर्तन किसी आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के कारण नहीं आया है, यह भौतिकतावादी डर से ही पैदा हुआ है। प्राकृतिक विनाश का संकट, ईंधन का संकट, भोजन के कम हो जाने का संकट या आगामी स्वास्थ्य संकट की आहटों ने कई अन्य चुनौतियाँ और खतरे भी हैं- इस परिवर्तन को पैदा किया है। अधिकतर लोग इसके तकनीकी समाधान में विश्वास करते हैं, यदि हमने फ्यूज़न एनर्जी बना ली तो ईंधन की समस्याएँ सुलझ जाएंगी, यदि हमने तेल से खाने योग्य प्रोटीन निकाल लिए तो हमारी भोजन की समस्या निपट जायेगी, अगर हमने नयी दवाइयाँ बन लीं तो वह आने वाले स्वास्थ्य संकट को दूर कर देंगी.... जैसी कई बातें सोच ली जाती हैं।

इसके बावजूद भी मनुष्य की सार्वभौमिकता में विश्वास कम होता जा रहा है। यदि नई समस्याओं को तकनीकी समाधानों द्वारा सुलझा भी लिया जाये तब भी निरर्थकता, अव्यवस्था और भ्रष्टाचार बचे रह जाएंगे। वे वर्तमान संकट के गहराने के पहले भी थे और उनका नाश अपने आप नहीं होगा। अधिक से अधिक लोग अब इस बात को पहचान पाते हैं कि आधुनिकता का प्रयोग असफल हो गया है। उसको प्रारंभ में कार्टेसियन क्रांति से गति मिली, और अपने अकाट्य तर्क से उसने मनुष्य को उसकी उच्चतर शक्तियों से अलग कर दिया, वही जो उसकी मानवीयता बचाए रख सकती थीं। आदमी ने स्वर्ग के द्वार बंद कर लिए और पूरी ऊर्जा तथा

कल्पना के साथ अपने आपको धरती से जोड़ लिया। अब वह इस बात को जान पा रहा है कि धरती तो सिर्फ एक अस्थायी चरण था और स्वर्ग की ओर होने वाली यात्रा को छोड़ देने से अब वह नर्क की यात्रा करने के लिए अभिशप्त है।

जीवन जीने की कला खराब परिस्थिति को अच्छी परिस्थिति में बदलने की कला है। सिर्फ तभी जब हम समझ लेंगे कि हम गर्त में गिर चुके हैं और कुछ नहीं बल्कि समाज की ठंडी मृत्यु और सभी सभ्य संबंधों का विनाश हमारा वहाँ इंतजार कर रहा है, तभी हम वह हिम्मत जुटा पाएंगे जिससे चीजों को उलट सकें, यह एक आध्यात्मिक रुपांतरण होगा। इसका अर्थ दुनिया को एक नई रोशनी में देखना होगा, एक ऐसी जगह के रूप में, जहाँ उन सभी चीज़ों को किया जा सकेगा जिनकी आधुनिक मनुष्य बात तो करता है लेकिन उन्हें करने में असफल रहता है। धरती की उदारता सबके लिए खाने का प्रबंध कर सकती है, हम अब पर्यावरण के बारे में इतना जानते हैं कि धरती को सुरक्षित रख सकें, लोगों के रहने के लिए धरती पर पर्याप्त जगह है और इतनी सामग्री भी कि सबके घर का निर्माण हो सके, हम इस बारे में सक्षम हैं कि लोगों की आवश्यकता के अनुरूप भोजन का प्रबंध कर सकें, और किसी को भी दयनीय दशा में रहने की आवश्यकता नहीं है। और सबसे बढ़कर यह कि आर्थिक समस्या एक अभिसारी समस्या है जिसे पहले ही सुलझा लिया गया है। हम जानते हैं कि कैसे सब को पर्याप्त रूप से मिल सकता है, और इसके लिए किसी हिंसात्मक, अमानवीय, आक्रामक तकनीक की आवश्यकता नहीं है। हमारे सामने कोई आर्थिक समस्या नहीं है, देखा जाए तो कभी थी भी नहीं। हमारे सामने नैतिक समस्या है। नैतिक समस्याएँ अभिसारी समस्याएँ नहीं होती जिन्हें हमारे भविष्य की पीढ़ियाँ बिना किसी प्रयास के सुलझा लें, वे अपसारी समस्याएँ होती हैं जिन्हें समझा जाना और उनसे पार पाया जाना आवश्यक है।

इस पार पाने की प्रक्रिया में कलात्मक उपादान हमारे बड़े सहायक हो सकते हैं। 'रंग संवाद' का यह अंक हमें उनमें से कई उपादानों की याद दिलाता है। जहाँ नर्मदा प्रसाद उपाध्याय आपसदारी के अर्थ बतला रहे हैं तो अतुल तिवारी बहु-आयामी होने को ज़रूरी समझते हैं। जनजातियाँ हमारे देश में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं और उनका एक अपना देवलोक है जिसे विजय मनोहर तिवारी उद्‌भासित कर रहे हैं। पंडित रविशंकर, सैयद हैदर रज़ा एवं सिद्धेश्वर सेन को सदी के नायकों की तरह याद किया गया है।

'विश्व रंग 2020' के बाद प्रकाशित हो रहा यह अंक उम्मीद है कि आपको पसंद आयेगा। सदा की तरह आपकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।

शुभकामनाओं सहित,

**● संतोष चौबे**

# 'कामायनी' की याद

महामारी का अंधड़। मृत्यु का दमन चक्र। भय और भटकाव के बीच भरोसे की तलाश। वक्त के आईने में झाँक रही ज़िन्दगी का अभी-अभी यही तो चेहरा था। इतिहास गवाह है कि जब-जब भी जीवन और प्रकृति की लय टूटी, हाहाकार मचा। लेकिन महाविनाश के बाद नवनिर्माण की कहानियाँ भी मनुष्य के महाविजय की तस्दीक करती हैं।

इस दौरान 'कामायनी' पढ़ते हुए दो समयों की समान्तर यात्रा से गुजरने का अनुभव हुआ। घटनाओं के रूप-स्वरुप भले ही जुदा हों, पर त्रासदी का दंश और उससे जुड़े कई सवाल मिलते-जुलते हैं। साहित्य के संसार में इस महाकाव्य का व्यापक स्वागत हुआ था। आलंकारिक भाषा और गहरे भाव बिम्बों में बिंधे इस ग्रन्थ का पिछले दिनों बड़े ही परिश्रम और रचनात्मक कौशल से अंग्रेज़ी में अनुवाद किया है रतलाम, मध्यप्रदेश के रहवासी कवि-अध्येता रतन चौहान ने। इस अनुवाद को हिंदी के मूल टीका के साथ बोधि प्रकाशन ने 620 पृष्ठों में छापा है। भारत ही नहीं, दुनिया के दीगर मुल्कों के साहित्य प्रेमियों के लिए 'कामायनी' इस दारुण दौर में विचार का सम्बल देने वाली पुस्तक साबित हो सकती है। निश्चय ही 'कामायनी' का पुनर्पाठ मन की बेचैनियों को शांत करता है। उसका छंद यकीन देता है -'दु:ख की पिछली रजनी बीच, विकसता सुख का नवल प्रभात'।

प्रसंगवश यह जानना ग़ैरज़रूरी नहीं कि 'कामायनी' की रचना क़रीब पिच्यासी बरस पहले छायावाद के अप्रतिम कवि जयशंकर प्रसाद ने की थी। हिंदी के आखर जगत में यह एक ऐसे महाकाव्य का सृजन था जिसमें भारतीय संस्कृति और मनुष्यता का गौरवगान है। एक ऐसी वैश्विक आवाज़, जो समरसता, शांति और सौहार्द की सुगंध बिखेरती उम्मीद के नये पंख पसारती है। साहित्य प्रेमी जानते ही हैं कि 'कामायनी' की आत्मा में मनुष्यता की चिंता है। एक ओर मूल्यों का पतन, जीवन में पसरती निराशा, तो इसी गुबार के बीच चमकती उम्मीद फिर नए नीड़ के निर्माण की प्रेरणा बन जाती है। यहाँ महाजलप्लावन यानि प्रलय की विकराल पृष्ठभूमि है। देव संस्कृति के वैभव और विलासिता ने जब मर्यादा की तमाम सीमाएँ लांघी तो परमशक्ति का क्रोध प्रलय बनकर प्रकट हुआ। देवों का नाश हुआ। एक ही प्रतिनिधि बचे मनुष्यता के प्रथम पिता- मनु, जो कामायनी यानि स्त्री पात्र श्रद्धा के सहचर बनकर तमाम संशयों, उलझनों और सवालों के समाधान तलाशते हुए फिर नए जीवन का सपना देखते हैं। पंद्रह सर्गों में फैला कामायनी का कथानक ज्ञान, कर्म और इच्छा के बीच समरसता की स्थापना है। जब प्रसाद कहते हैं कि 'प्रकृति के यौवन का श्रृंगार, कभी न करेंगे बासी फूल' तो आशय स्पष्ट है कि नये सोच, नई संकल्पना से ही जीवन की मूरत गढ़ी जा सकती है। यहाँ आत्ममंथन से जीवन का नया उजाला फूटता है। अद्वैत का दर्शन सारी दुनिया से सहकार और समन्वयवादी संस्कृति का शंखनाद करता है।

दस्तावेज़ बताते हैं कि प्रसाद ने अस्थमा से जूझते हुए कामायनी को अंजाम दिया था। पुस्तकाकार उसे प्रकाशित होता देख उन्हें परम संतोष मिला था। स्वयं प्रसादजी ने साहित्यिक मित्रों के इसरार पर काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अनुरोध पर 'कामायनी' का पाठ किया था। यह दिलचस्प है कि इस कृति के कई अंश संगीत की धुनों में बिंध कर आकाशवाणी-दूरदर्शन से प्रसारित होते रहे। कई सभा-समारोहों में इसका वाचन भी हुआ। रंगमंच से भी 'कामायनी' अछूती नहीं रही। कालजयी रचनाओं की यही पहचान है।

**- विनय उपाध्याय**

साहित्य और कला

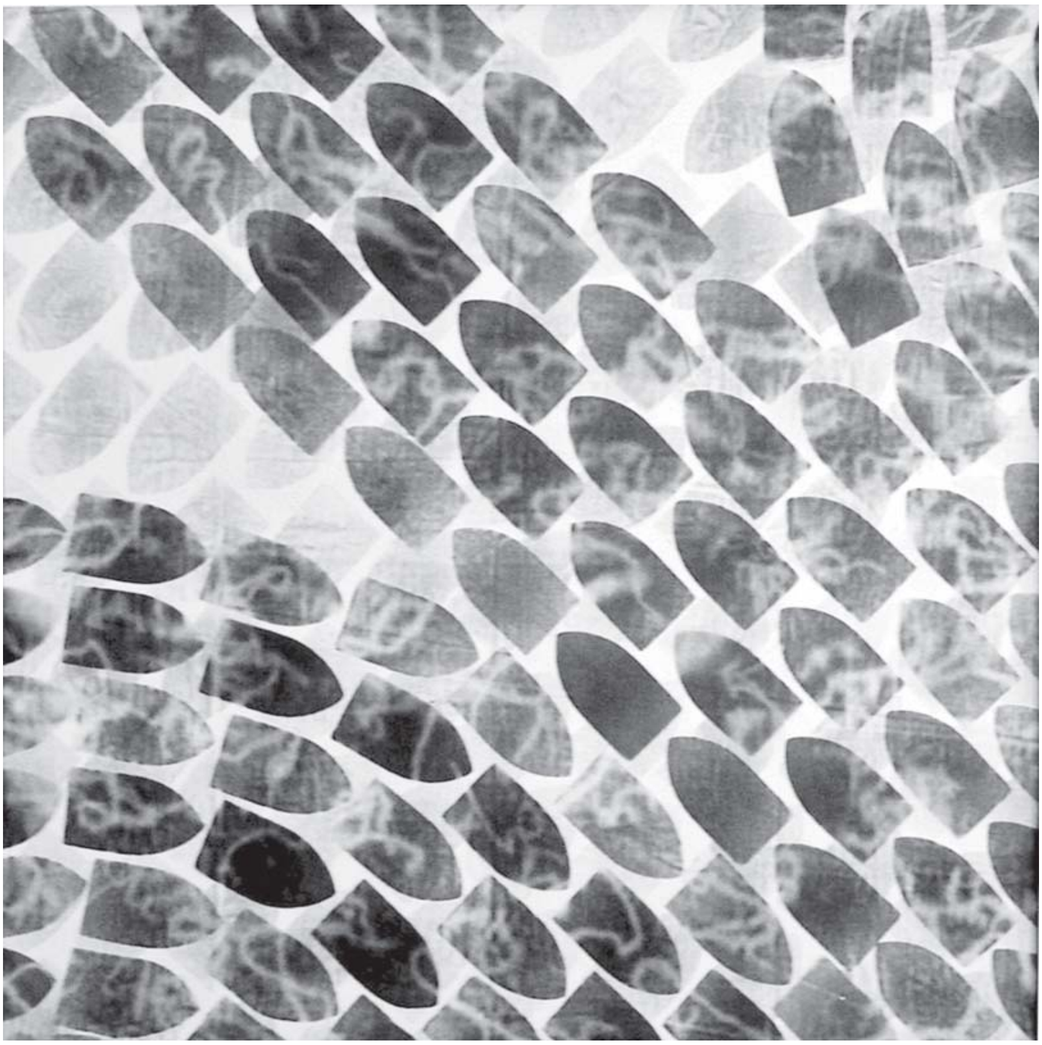

प्रियेश मालवीय

# आपसदारी के अर्थ

## नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

**भारतीय कला का मर्म उसका सौंदर्य पक्ष है और इस सौंदर्य के मूल में है रस जो वास्तव में अखंड होने का, सकल होने का सार है। यह सौंदर्य व्यष्टि का वह छंद है जो समष्टि के छंद से मिलकर चलता है और सुंदर को जनम देता है। यह छंद शब्द में, रेखा में, गंध और वर्ण में सामंजस्य के भाव को ढूँढ लेता है। यही कारण है कि भारतीय कला के सौंदर्य में काव्य की प्रतिष्ठा हो जाती है।**

अंतरसंबंध का आशय अंतर से अर्थात हृदय से जुड़ा होना है। यह संबंध दिखायी नहीं देता। जैसे हरिद्वार की गंगा जब प्रयागराज आती है तो गंगा–यमुना के इस संगम में अंतः सलिला सरस्वती मिलती है, विलीन हो जाती है। लेकिन दिखाई नहीं देती। संगम की पहचान तभी बनती है जब उसमें सरस्वती का विलय हो। कला मनुष्य की उस तपस्या का मूर्त रूप है जो उसे विकास की ओर ले जाती है। भारतीय कला में निरंतरता है, जड़ता या स्थिरता नहीं है। इसलिए खजुराहो के जीवंत शिल्प समाधि के नहीं संभावनाओं के शिल्प हैं। भारतीय कला की सौंदर्य दृष्टि अभिजात नहीं है। यहाँ सौंदर्य लोक से, प्रकृति से आया है। सीता, शकुंतला और पार्वती के सौंदर्य का आख्यान जब कालिदास करते हैं तो वे उसी वन्य शोभा के परिप्रेक्ष्य में करते हैं जो हम सबकी है। सीता के स्नान से सरोवर तप से पूरित होते हैं, पार्वती के वन में किए गए तप से उनका सौंदर्य निखरता है और दुष्यंत कण्व के आश्रम की उस कन्या के सौंदर्य पर रीझते हैं जो श्रम से आया है।

पाश्चात्य सौंदर्य की अवधारणा से भारतीय अवधारणा का साम्य नहीं है। पश्चिम की अवधारणा वैयक्तिकता पर ज़ोर देती है। उसके केंद्र में व्यक्ति है, लोक नहीं है। वहाँ समन्वय या समग्रता तथा अखंडता के तत्व दिखाई नहीं देते। पश्चिम की कला अवधारणा विभिन्न खंडों में अपने आपको अभिव्यक्ति करती है। वहाँ कला एकाकी और स्वतंत्र है। विभिन्न अनुशासनों के बीच साझीदारी का प्राय: अभाव है, जबकि भारतीय कला अवधारणा में यह एक आवश्यक तत्व है। पश्चिम में विशेष रुप से फ्रांस में अनेक कलावाद जन्मे और समय के साथ विलुप्त होते गए। जबकि भारत में वाद पर ज़ोर नहीं रहा। मूल संवेदना वही रही, भले उसका समय के अनुरूप रूपांतरण होता रहा हो। इस परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट होता है कि भारतीय कला में अवधारणाओं का गुंजलक विद्यमान नहीं है। भारतीय कला में कहीं-से-कहीं तक क्लिष्टता नहीं है, दुरुहता नहीं है। वह नैसर्गिक है। भारतीय कलाकार ने अमूर्तन में भी अपनी उन मानस छवियों को साकार किया है जो कहीं अपने लोक की चिंताओं से जन्मी हैं। भारतीय कला के प्रवाहों की दिशा में भिन्नता भले परिभाषित की जाने की चेष्टा की जाती रही हो, किंतु यह भिन्नता है नहीं।

जहाँ तक 'साहित्य' का प्रश्न है यह शब्द संस्कृत के 'सहित' शब्द से बना है जिसका अर्थ है साथ-साथ। जो सबके सहित है, वह साहित्य है। साहित्य, सहित शब्द में आकारत्व के साथ 'य' प्रत्यय के योग से बना है। प्रख्यात वैयाकरण भामह ने अपने ग्रंथ काव्यालंकार में साहित्य की परिभाषा देते हुए कही है, ''सहितस्य भाव: साहित्यम्' राजशेखर और कुंतक ने भी साहित्य का प्राय: यही अर्थ किया है। साहित्य तब तक साहित्य है ही नहीं जब तक उसमें कही स्व है, निजता है, केवल अपने तक सिमटने का भाव है। साहित्य समग्र का है, इसीलिए साहित्य है और तैत्तरीय उपनिषद में इस भावना का उद्घोष 'रसो वैस:' कहकर किया गया है अर्थात रस हमारी सबकी दैवीय प्रकृति है। जहाँ रस है, वहाँ वह है ही इसीलिए क्योंकि वह सबका है।

पूरे विश्व को साथ लेने का भाव और यह भाव इतना प्रबल है कि यदि तुलसीदास राम की कथा 'स्वांत: सुखाय' भी लिखते हैं तो वह युगों-युगों के, पूरे समाज के सुख के लिए कही गई कथा हो जाती है और सूर जैसे दृष्टा जब अपनी आँखों के कोटरों में राधा-कृष्ण की लीला देखते हैं तो फिर वह लीला जन-जन की आँखों में समा जाती है और सूर के जैसा दृष्टिसंपन्न सर्जक हमें संसार में दूसरा नहीं दिखायी देता। उनकी आँखों का अंधत्व समूचे युग का आलोक बन जाता है। सूर की आँखें हमारी आँखें हो जाती हैं। हम आज साहित्य को जिस विधागत रूप तक सीमित करते हैं यह साहित्य का, उसकी व्यंजना का विखंडन है।

भारत में साहित्य का अर्थ बड़ा व्यापक है। भारतीय साहित्य भाषा को भाषा के साथ या भाव को भाव के साथ ही नहीं मिलाता, अपितु मानव को मानव के साथ, अतीत को वर्तमान के साथ और बाह्य को अंतर के साथ मिलाता है।

वास्तविकता यह है कि कला और साहित्य इन दोनों की प्रकृति और प्रयोजन एक जैसे हैं, केवल माध्यम भिन्न हैं। जैसे हम कविता में शब्दों को, उनसे बने वाक्यों को पढ़ते हैं वैसे ही शिल्पी पत्थर की भाषा को पढ़ता और सुनता है। यह सोचना गलत है कि शिल्पी अपनी छेनी से पत्थर में मूर्ति बनाता है, सच यह है कि पत्थर की भाषा उसे अपना रुप बता देती है और वह सिर्फ़ यही करता है कि पत्थर की इस मूर्ति के स्पष्ट होने में पत्थर का जो अंश बाधक होता है, उसे निकाल देता है तो वह मूर्ति स्वयं प्रकट हो जाती है। वास्तव में विषय के अंतर्निहित छंद को कवि और पत्थर के अंतर्निहित छंद को शिल्पी पहचानता है। आज कविता कानों का विषय बना दी गई है और चित्र या शिल्प आँखों के विषय मान लिए गए हैं, जबकि सच्चे अर्थों में कविता आँखों का विषय भी होती है और चित्र या मूर्ति की ध्वनियों को भी हमारे कान सुनते हैं।

कवि या शिल्पी वास्तविक जगत की वस्तुओं को देखकर पहले अपने चित्त में एक मानसी मूर्ति बनाते हैं और फिर कविता लिखी जाती है या मूर्ति बनाई जाती है। यह कार्य सरल नहीं होता। यह कहा गया है कि सीधी रेखा खींचने का काम सदैव टेढ़ा होता है।

साहित्य और कला इन दोनों की प्रकृति समान है। दोनों लोक के लिए लोक की देन हैं तथा इन दोनों का प्रयोजन लोकहित है। कला और साहित्य तपस्या के प्रतिफल हैं और दोनों की पहचान एक-दूसरे से बनती है। यह अलग बात है कि इस अंतरावलंबन को हम नहीं पहचान पाते।

कला और साहित्य के भारतीय संदर्भ में लोक की दृष्टि बहुत महत्वपूर्ण है। यह लोक पश्चिम के 'फोक' से पूरी तरह भिन्न है। यह लोक हमारी वाचिक परंपरा में आया है जिसके माध्यम से शब्द नहीं, बल्कि चेतना परिवहित होती है। इसी लोक शब्द से आलोक बना है जिसका अर्थ है 'उजाला'। इस लोक से कला और साहित्य दोनों अटूट रूप से संबद्ध हैं। भारत में कला अपने लोक का प्रतिनिधित्व करती है। यहाँ तक कि मध्यकाल के राज्याश्रयी चितेरों और शिल्पियों ने भी अपने लोक को रचा है। साँची, भरहुत, अमरावती, नागार्जुनकोण्डा, कार्ले, कान्हेरी, भज, बदामी और सित्तनवासल की कला से लेकर अजंता और बाद्य तक में लोक के दर्शन होते हैं। यह लोक, कला और साहित्य में कुछ इस तरह समाया है कि उसके बिना इन दोनों की पहचान नहीं बनती।

कला और साहित्य के बीच अंतर्संबंध वेदों के समय से हैं। वेद, पुराण, ब्राह्मण और स्मृतियों से लेकर पाणिनी की अष्टाध्यायी, कौटिल्य का अर्थशास्त्र और वात्स्यायन के कामसूत्र से लेकर वाल्मीकि की रामायण और वेदव्यास के महाभारत तक के ग्रंथ साहित्य और कला के ग्रंथ हैं। इनका विभाजन हमने धर्म, साहित्य और कला के ग्रंथों के रूप में कर दिया है। ईसा पूर्व की सदियों में रचे गए इन ग्रंथों की परंपरा बाद में कालिदास, बाणभट्ट और भोज तक निरंतर चली तथा इन महान कवियों और लेखकों ने जो ग्रंथ रचे, वे कला और साहित्य के अंतर्संबंधों पर केंद्रित ग्रंथ थे।

कालिदास की कृतियों का यदि केवल चित्रांकन की दृष्टि से ही परिशीलन किया जाए तो यह ज्ञात होता है कि उनकी सभी कृतियों में चित्रांकन के विपुल संदर्भ हैं। ये दो तरह के हैं। एक ओर तो वे चित्रों के संबंध में भिन्न-भिन्न प्रसंगों में संदर्भ देते हैं तो वहीं दूसरी ओर अपनी

कला और साहित्य के भारतीय संदर्भ में लोक की दृष्टि बहुत महत्वपूर्ण है। यह लोक पश्चिम के 'फोक' से पूरी तरह भिन्न है। यह लोक हमारी वाचिक परंपरा में आया है जिसके माध्यम से शब्द नहीं, बल्कि चेतना परिवहित होती है। इसी लोक शब्द से आलोक बना है जिसका अर्थ है उजाला। इस लोक से कला और साहित्य दोनों अटूट रूप से संबद्ध हैं।

भारतीय कला में कहीं-से-कहीं तक क्लिष्टता नहीं है, दुरुहता नहीं है। वह नैसर्गिक है। भारतीय कलाकार ने अमूर्तन में भी अपनी उन मानस छवियों को साकार किया है जो कहीं अपने लोक की चिंताओं से जन्मी हैं। भारतीय कला के प्रवाहों की दिशा में भिन्नता भले परिभाषित की जाने की चेष्टा की जाती रही हो, किंतु यह भिन्नता है नहीं।

रचनाओं में इतना बिंबात्मक विवरण देते हैं कि समूचा चित्र हमारी आँखों के सामने मूर्त हो उठता है। रघुवंश, मेघदूत, कुमारसंभव, ऋतुसंहार जैसे काव्य तथा अभिज्ञानशाकुंतल, विक्रमोवर्शीय तथा मालविकाग्निमित्र में कालिदास ने जो बिंब खींचे हैं, वे अद्भुत हैं। इन बिंबों के आधार पर परवर्तीकाल में भी पहाड़ और राजस्थान की शैलियों से लेकर मालवा और दक्कन तक की शैलियों में बहुत सुंदर लघुचित्रों के अंकन हुए। कालिदास ने अपनी सभी नायिकाओं के सौंदर्य का सजीव वर्णन किया, विशेष रूप से पार्वती का। उन्होंने पार्वती के केवल दैहिक लावण्य का ही वर्णन नहीं किया, अपितु उनकी कुशाग्र बुद्धि का भी बिंबात्मक वर्णन किया। उन्होंने लिखा कि पार्वती ने जब पढ़ना आरंभ किया तो पूर्व जन्म की सभी विद्याएँ उन्हें वैसे ही स्मरण हो आईं, जैसे शरद ऋतु के आगमन पर गंगा में हंस स्वयं आ जाते हैं अथवा स्वत: चमकने वाली जड़ी-बूटियों से रात को चमक आ जाती है।

पार्वती की उज्ज्वल मुस्कान के बारे में उन्होंने लिखा कि यदि नवपल्लवों के बीच सफेद फूल को रख दिया जाए या लाल रंग के मूँगे पर उज्ज्वल मोती रख दिया जाए तो दोनों में से एक की तुलना पार्वती के अरुण अधरों पर कांति बरसाने वाले उनके उज्जवल मंद हास्य से की जा सकती है। इसी तरह 12वीं सदी में जयदेव के द्वारा रचित ग्रंथ 'गीतगोविन्द' अत्यंत महत्वपूर्ण है जिसकी प्रत्येक अष्टपदी जहाँ एक ओर साहित्य का मानक है वहीं दूसरी ओर वह संगीत और चित्रकला जैसी महान कलाओं की उद्गाता भी है। नाट्य, संगीत, चित्रांकन और नृत्य ये सब कलाएँ गीतगोविन्द में विद्यमान हैं तथा गीतगोविन्द के आधार पर इन अनुशासनों का आज के समय तक विस्तार हुआ है। गीतगोविन्द की अष्टपदियाँ कई रागों में निबद्ध हैं।

आगे चलकर यह परंपरा खड़ी बोली के साहित्य में भी निरंतर चली आती है। भारतेन्दु से लेकर उनके समकालीन प्रताप नारायण मिश्र और बालमुकुंद गुप्त जैसे निबंधकार कला और साहित्य के आख्याता हैं, और आगे के काल में माखनलाल चतुर्वेदी जैसे महान रचनाकार हमारे बीच आते हैं जिन्होंने 'कला का अनुवाद' और 'साहित्य देतवा' जैसे अंतराअनुशासिक ग्रंथ लिखे। अज्ञेय, डॉ. राम विलास शर्मा और नामवर सिंह जी तथा डॉ. रमेश कुन्तल 'मेघ' जैसे रचनाकारों ने हमारे कला और साहित्य की अंतरावलंबन परंपरा पर आधुनिक युग में विचार किया है।

यदि भारतीय लघुचित्रों की परंपरा को लें जो 11वीं सदी से लेकर 19वीं सदी तक अप्रतिहत रूप से विद्यमान रही तो हम पाएँगे कि इन लघुचित्रों में राग-रागिनियों को चित्रित किया गया है अर्थात ध्वनि का चित्रण है। हम देखेंगे कि इन लघुचित्रों में वाल्मीकि की 'रामायण', तथा व्यास के 'महाभारत' के प्रसंगों सहित कालिदास के 'रघुवंश', 'मेघदूत' तथा 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' के प्रसंगों को चित्रित किया गया है। मुगलकालीन लघुचित्रों में ऐतिहासिक घटनाओं का चित्रण है। फतेहपुर सीकरी के निर्माण से लेकर विभिन्न युद्ध दृश्यों को चित्रित किया गया है। मध्यकाल की पहाड़ी और राजस्थान व मालवा की चित्रशैलियों में केशव की 'रसिकप्रिया' व 'कविप्रिया', बिहारी की 'सतसई', मतिराम के 'रसराज' तथा पुहकर की 'रसबेली' के प्रसंगों को चित्रित किया गया है। इस चित्रण में कल्पनाशीलता भी

है जो इस चित्रकर्म को साहित्य के निकट ले जाती है। इसलिए यह सूत्र ध्यान में रखा जाना बहुत आवश्यक है कि ये अंतरसंबंध भारतीय कला और साहित्य के दृढ़ स्तंभ हैं।

कला और साहित्य के अंतरसंबंधों का भारतीय संदर्भ में पूर्ण औचित्य है इसलिए कि भारतीय साहित्यिक और कलात्मक परिप्रेक्ष्य के प्रयोजन एक जैसे हैं। हमारे यहाँ ये अंतर्संबंध आज के नहीं हैं, ये हमें विरासत में मिले हैं। वात्स्यायन ने जिन 64 कलाओं को गिनाया है उनमें एक-तिहाई कलाएँ साहित्यिक व ललित कलाएँ हैं, जैसे-कथा, नाटक, आख्यायिका, काव्य, शिल्प, छंद, विदेशी लिपियों व विदेशी भाषाओं में पारंगत होने की कला, वीणा, वेणु, मुरज तथा कांस्य वाद्यों का बजाना व नृत्य, गीत, चित्रकर्म, पुस्तक लेखन व पत्रच्छेदन आदि। ये हमारे संस्कारों में हैं। इन अंतरसंबंधों के कारण हमारे चिंतन का और उस चिंतन से उपजे सृजन का क्षेत्रफल बढ़ता है।

हुआ यह है कि हमने इन अंतरसंबंधों की पड़ताल करना बंद कर दिया। हम जड़ता से जुड़ गए। आप स्मरण कीजिए हमारे वेद की ऋचाओं का जिनमें किसी ईश्वर की वंदना नहीं है, बल्कि अग्नि, ऊषा और नदी की वंदना है। इसलिए कि आदिमानव इर्द-गिर्द के वातावरण को जीवंत रूप में देखता था। उसके लिए पेड़, पशु, नदी और पर्वत सब जीवंत थे। वे उसके लिए प्राणवान थे और इसी जीवंतता ने मनुष्य के विकास का पथ प्रशस्त किया। वास्तव में विकास के पथ पर आगे बढ़ने में ही कलात्मकता विद्यमान थी, वह सृजन विद्यमान था जो साहित्य की आत्मा है।

साहित्य और कला के अंतरसंबंध इसलिए भी होना चाहिए क्योंकि आज विश्व में निकटता इतनी बढ़ी है कि उस निकटता की यह आवश्यकता हो गई है कि हम समग्रता में एक दूसरे को समझें और जानें। अपने अस्तित्व को अलग-अलग रखते हुए हम इस निकटता का अनुभव नहीं कर सकते और यह निकटता तभी जानी जा सकती है जब हमारे तमाम अनुशासन एक दूसरे से मिलें, उनकी आवाजाही हो और वे एक दूसरे की सर्जनात्मकता को ग्रहण कर सकें।

# अभिनेता के कर्ज़ पर ज़िंदा रहता है क़िरदार

## रंगमंच और सिने अभिनेता मोहन आगाशे

### संवाद: विनय उपाध्याय

सितारा छवियों के जगमग संसार में अक्सर उन क़िरदारों के काम और चेहरे ओझल हो जाते हैं जो अपने हिस्से की पारी खेल वक्त के एक मुकाम पर नेपथ्य की शरण ले लेते हैं। लेकिन कुछ शख़्सियतें ऐसी होती हैं जिन्हें श्रांत भवन में ठहरे रहना रास नहीं आता। वे फिर किसी नयी डगर पर चल पड़ते हैं जिसके अगले मोड़ पर कोई मंज़िल बाँह पसारे उनके इंतज़ार में खड़ी होती है। मोहन आगाशे का सितारा एक ऐसी ही चमकती और चलती-फिरती मौजूदगी है। यह उजास सिर्फ रंगमंच, सिनेमा और टी.वी. के परदे पर फैली उनके अभिनय की आभा नहीं है। एक बेमिसाल कलाकार से अलहदा उनकी ख्याति एक सफल मनोचिकित्सक की भी है। मानवता की सेवा को वे महान निधि मानते हैं और ख़ुद उदारमन से ज़रुरतमंदों के लिए दान का हाथ आगे बढ़ाते हैं। घर-परिवार के किसी बड़े-बुजुर्ग या पुरखे की तरह उनकी प्रेमिल उष्मा हमारे भीतर उतरने लगती है। दंभ और अभिमान से दूर बहुत अपने से लगते आगाशे इस यक़ीन के पास ले जाते हैं कि रंगमंच ज़िंदगी का हो या कला का, कसौटियाँ दोनों तरफ हैं। क़िरदार को निभाना, उसे अभिनय के साँचे में उतारना आसान तो नहीं!

बहरहाल सत्तर पार की उम्र में भी वे ऊर्जा से लबालब हैं। मनोचिकित्सक होने के नाते 'मन' की गहरी सतरों तक उतरना और व्यक्ति को समग्रता में समझना उनकी फ़ितरत है। वे बचपन को याद करते हुए महाराष्ट्र के गणेशोत्सव के मंच पर पहुँच जाते हैं जहाँ पहली बार एक क़िरदार में ढलकर संवाद बोले थे। निशांत, मंथन, सदगति जैसी दर्जनों फ़िल्में सामने आती हैं। अनेक टी.वी. धारावाहिक जिनमें मुख़्तलिफ़ भूमिकाएँ और अभिनय के बदलते आयाम उनके कद्रदानों को रास आते हैं। पद्मश्री और संगीत नाटक अकादेमी सम्मान उनकी अपार स्वीकृति और योगदान की ताईद करते हैं। मोहन आगाशे से हाल ही हुआ यह दुर्लभ संवाद उनके कला जीवन का सार है जहाँ वे तमाम तजुरबों से गुज़रते एक सबक की तरह पेश आते हैं।

**विनय उपाध्याय: वो कौन सा मुकाम था, कौन सा लम्हा था जब मोहन अगाशे को ये पता चला कि उनके भीतर एक अभिनेता है?**

**मोहन आगाशे:** एक चीज़ ऑनेस्टली बताना चाहता हूँ कि जैसा आप सोचते हैं ऐसा मुझे कुछ हुआ नहीं। मेरा मानना है, कहना है और अनुभव ये है कि हम सारे लोग अपने जीवन का प्रारम्भ एक्टिंग से करते हैं। दो या तीन साल का कोई भी बच्चा या बच्चे एक्टिंग में पारंगत होते हैं। उस उम्र में हम स्टार होते हैं। क्यूँ? हम ख़ुद ही अपने क़िरदार चुनते हैं। दर्शक भी हम ही चुनते हैं। वो सब हमारे आसपास ही बसे होते हैं। और घर आकर बोलते हैं हमारी टीचर ऐसी-वैसी पेश आती है। फिर उसके हाव-भाव उतारने की कोशिश करते हैं। छोटे-मोटे नाटक तो हम सभी लोग करते ही रहते हैं क्योंकि जिन्दगी के बारे में एक बेहतर तरीका, यह इमीटेशन है। आज भी मैं अगर किसी अच्छे आदमी को मिलता हूँ उसकी आवाज़ पसंद है, उसकी खूबियाँ पसंद हैं तो मैं पहले कोशिश करता हूँ कि क्या मैं उस तरह के बातें कर सकता हूँ? उस तरह का मूवमेंट कर सकता हूँ? मुश्किल ये होती है कि बहुत बार लोग समझते हैं कि मैं मज़ाक उड़ा रहा हूँ लेकिन असल में मैं मज़ाक नहीं उड़ा रहा हूँ मैं वो बनने की कोशिश कर रहा था क्योंकि मैं उनसे प्रभावित हूँ और दूसरे को जानने का ये जो तरीका है कि जो क़िरदार आप निभाना चाहते हो, वो अगर आप होना चाहते हो तो समझ अच्छी आती है जिसका उपयोग या फायदा मुझे नाटक में हुआ है, फिल्म में हुआ है और सबसे ज्यादा मनोविज्ञान में हुआ है। मैं यह भी बताना चाहता हूँ ईमानदारी से कि व्यावसायिक कौशल, अलग चीज़ है। वह हमेशा आपके बेहतर प्रदर्शन या भीतर के असली कलाकार को गढ़ने में मदद करे यह ज़रुरी नहीं। आप अच्छी किताब लिखें कुकिंग पर, लेकिन खाना बढ़िया बनेगा ये नहीं बोल सकते। जो खाना बढ़िया बनाता है उसे शायद बताना नहीं आता होगा कि कैसे करना है? दोनों अलग चीज़ें है। एक चीज़ है अच्छी तरह देखकर समझकर अपने में आकलन करके बताना है और दूसरी बात देखने के लिए, सुनने के लिए, स्पर्श के लिए, स्वाद के लिए और सूंघने के लिए जो हम बचपन से, ध्यान से अपने भीतर पाते हैं कुदरती। बुद्धि पहले कभी डेवलप नहीं होती पहले हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ विकसित होती हैं। दीज़ आर कॉल्ड सेंस। और दुनिया के बारे में सारी जानकारी हम उन ज्ञानेन्द्रियों से लेते हैं। उसकी शुरुआत ही मुँह से, हम माँ के स्तन से जब दूध पीते हैं उससे होती है।

**निश्चित रूप से हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ विकसित होती हैं। संवेदनाएँ ही दरअसल हमारे भीतर एक अच्छे मनुष्य को तलाशने और उसे गढ़ने में मददगार होती हैं मैं ऐसा समझ पा रहा हूँ। मेरा प्रश्न था और उस प्रश्न के आस-पास आपने बहुत महत्वपूर्ण बातें की। आपको कब ऐसा लगा कि आपके भीतर एक अभिनेता है लेकिन अब मैं उसमे एक चीज़ और जोड़ता हूँ कि मोहन अगाशे को पहले-पहल एक अभिनेता के रूप में कब और कौन सा मंच मिला?**

– आप जानते होंगे कि महाराष्ट्र में गणेश फेस्टिवल बहुत होता है। मेरे बचपन में भी गणेश फेस्टिवल में दस दिन कार्यक्रम चलते रहते थे उसमें एक दिन हमेशा बच्चों का वेराइटी एंटर्टेन्मेंट होता था। उसमे मैं बचपन से हिस्सा लेता रहा हूँ। लेकिन उससे ज़्यादा महत्वपूर्ण बात है सई परांजपे जो जानी-मानी निर्देशिका हैं, लेखिका हैं वो नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा से पहले अपने पति अरुण जोगलेकर के साथ पूना में बहुत ही इंटरेस्टिंग चिल्ड्रेन थिएटर चलाती थीं। जब मैं स्कूल में था पांचवी-छठी में। उसी समय ऑल इंडिया रेडियो पर वह 'बालोद्यान' नाम का कार्यक्रम हर रविवार को चलाती थीं और वो बच्चों का अत्यंत पसंदीदा कार्यक्रम था। उसी समय में मैंने पत्ते नगरी, पक्षियों का कवि सम्मेलन जिसमें मैंने काम किया है कौवे का और ऐसे ही कई नाटकों में काम किया। तो मेरा अभिनय से लगाव बचपन से जुड़ा हुआ है।

डॉक्टर लागू ने बहुत ख़ूब कहा है कि हम तो कुली हैं। लेखक और दिग्दर्शक जो बता दें वह माल पहुँचा देना दर्शकों तक, बस यही काम है हमारा। और यह काम करने के लिए जो करना पड़ता है वह कैसे करें हम? वह भाव क़िरदार के लिए हम लाएँ कहाँ से? तो जीवन मल्टिपल इमोशन से भरा हुआ है, अनुभव से भरा हुआ है। तो एक क़िरदार निभाने के लिए आपको अभिनेता के सचमुच के भाव, अनुभाव उधार लेना पड़ता है। और वह एक ऐसा कर्ज़ है जो चरित्र कभी अभिनेता को वापस नहीं कर सकता।

**क़िरदार एक अभिनेता को कई निभाने पड़ते हैं। ...तो मोहन आगाशे कई बार जब मंच पर जाते हैं, कई बार सिनेमा के क़िरदारों में ढल कर सब तक पहुँचते हैं तब यह तय करना बहुत मुश्किल है कि इसमें ख़ुद मोहन आगाशे कहाँ हैं? क्या आपको कभी लगा कि कोई चरित्र आपकी ज़िंदगी से भी टकराया होगा और आपको उसको करने में आनंद मिला होगा?**

– यह सच है कि अभिनय के बारे में बहुत सारे मिथ गढ़े गए हैं। डॉ. लागू वैचारिक अभिनेता थे, वे कहते थे– आपको हमेशा एक व्यक्ति के रूप में जिसे आप गढ़ रहे हैं, जागरूक रहना चाहिए। इसलिए आपको एक बेहतर ऑब्ज़रवर भी बनना होगा। यह बहुत ज़रुरी है। एक बात और बताना चाहता हूँ आपको, पाचुकि साहब थे, उन्होंने एक क़िरदार निभाया रंगमंच पर। प्ले पूरा होने पर अंदर आ गए और एक घंटे तक मेक–अप रूम में अकेले यूँ ही बैठे रहे। तो क़िरदार से बाहर आने के लिए एक घंटा लगता है उनको। कमाल की चीज़ है। यह बहुत ही ज़रुरी है कि आपका एक व्यक्ति के रूप में अपने चरित्र के साथ क्या संबंध है। और यह ज़रुर मैं मनोचिकित्सक का अभ्यास करते हुए समझ गया हूँ। जैसे डॉक्टर का मरीज़ के साथ में क्या रिश्ता होना चाहिए, मरीज़ को क्या अनुमति है, डॉक्टर को क्या अनुमति नहीं है। मरीज़ डॉक्टर के प्रेम में पड़ सकता है, डॉक्टर मरीज़ के प्रेम में नहीं पड़ सकता नैतिकता की दृष्टि से। वैसे आप जो भी क़िरदार निभाते हैं उसके लिए क़िरदार कि जो माँगें होती हैं भावनाओं की। वह आपकी व्यक्तिगत माँगें हैं नहीं। किसी लेखक ने क़िरदार का निर्माण किया है। और उनका अनुभव दर्शकों तक पहुँचना है इसलिए मेरा इस्तेमाल हो रहा है। तो डॉक्टर लागू ने बहुत ख़ूब कहा है कि हम तो कुली हैं। लेखक और दिग्दर्शक जो बता दें वह माल पहुँचा देना दर्शकों तक, बस यही काम है हमारा। और यह काम करने के लिए जो करना पड़ता है वह कैसे करें हम? वह भाव क़िरदार के लिए हम लाएँ कहाँ से? तो जीवन मल्टिपल इमोशन से भरा हुआ है, अनुभव से भरा हुआ है। तो एक क़िरदार निभाने के लिए आपको अभिनेता के सचमुच के भाव, अनुभाव उधार लेना पड़ता है। और वह एक ऐसा कर्ज़ है जो चरित्र कभी अभिनेता को वापस नहीं कर सकता। यह एक विरोधाभास है कि ऐसा करते–करते बहुत सारे अभिनेताओं में इमोशनल वेक्यूम होता है क्योंकि यह बहुत सारा इमोशनल लोन क़िरदार को दिया गया है जो वापस नहीं मिलता। तो इसमें इमोशनल इनबेलेंस हो सकता है।

**जिस समय आपकी रुचि रंगकर्म और अभिनय के साथ जुड़ी तभी आपके सामने कॅरियर भी था। आप मेडिकल की पढ़ाई कर रहे थे। दो ख्वाहिशें एक समय में टकराती हैं और यह तय कर पाना मुश्किल होता है कि आने वाला कल दरअसल हमें कहाँ ले जाएगा। मोहन आगाशे के साथ भी ऐसा हुआ होगा?**

– बिलकुल नहीं। क्योंकि मैं आपकी तरह सोचता ही नहीं हूँ। मैं सोचता हूँ कि हमारी दो आँखें हैं, हमारे दो कान हैं, हमारी नाक के दो हिस्से हैं। हमारी दायीं और बायीं बाँह है, पैर हैं। जीवन को सही रूप से देखने के लिए पॉसिटिव–नेगेटिव होना बहुत ज़रुरी है। और भारत जैसे देश में जहाँ इस बात की कोई प्रामाणिकता नहीं है कि आप अपना जीवन यापन उस काम के आधार पर कर लेंगे जो आपको पसंद है। आपको दो व्यवसायों की ज़रुरत है, एक जीवन–

**आप मानते हैं कि नैसर्गिक प्रतिभा आपके भीतर पहले से थी, एक अवसर आया और आपके भीतर का अभिनेता नए निखार के साथ बाहर निकला। इस संदर्भ में सई परांजपे के अलावा आपके आदर्श और कौन–कौन रहे?**

सई परांजपे के अलावा हमारी पाठशाला में गोड़बोले नाम के शिक्षक थे जो बेहतरीन नाटक करते थे स्कूल में। उन्होंने मुझे सातवीं कक्षा में बुला के कहा कि शाम को घर आ जाओ, नाटक करना है। तो दोनों जगह मैं नाटक करता था। उसके बाद मेडिकल कॉलेज में आया तो जब्बार पटेल, जो मेरे सीनियर थे, उनसे मुलाक़ात हो गयी। मैंने लगातार 15–20 साल उनके साथ जो काम किया, उसे भूल नहीं सकता। उनका निर्देशन अद्भुत होता था। उन्होंने ज़्यादा काम नहीं किया लेकिन जो काम किया है उसकी क्वालिटी ऐसी है कि शब्दों में बयाँ करना कठिन है। सतीश आरेकर जी जो बहुत ही महत्वपूर्ण लेखक हैं, वे भी हमारे ग्रुप में थे। आपने सही कहा कि यह सहज प्रवृत्ति है मेरी। और आगे चलकर मैं सच बताऊँ आपको, मुझे बहुत सारा जीवन नाटक और फ़िल्म में देखने को मिला है और बहुत नाटक ज़िंदगी में देखने को मिला है।

यापन के लिए और दूसरा उसको काबिल बनाने के लिए। आपको दिलचस्पी एक चीज़ में हो सकती है लेकिन आपके गुण ऐसे होते हैं कि जिससे आप सर्वाइव कर सकते हैं। मुझे गाना बहुत अच्छा लगता है पर मुझमें सुर नहीं है तो क्या करूँ मैं? तो मैं गाने पर एक किताब लिखना चाहूँगा।

**मेरे पास एक कविता है दादा जो प्रेमशंकर शुक्ल ने लिखी है। वे हमारे समय के चर्चित कवि हैं। कहते हैं कि- ''नाटक करते-करते/उसकी ज़िंदगी में शामिल हो गया है नाटक/उलझनों-मुश्किलों में घिरा रहता है/और ख़ुश रहने का नाटक करता रहता है सारा दिन/अपने भीतर की चोट की, गहरे आघात की/ख़बर ही नहीं लगने देता है/करते हुए सुखमय जीवन का अभिनय/आँख के भीतर आँसू दबाकर/हँस-हँस कर बात करने में/नाटक से आगे निकल जाने का/आए दिन का उसका दृश्य होता है!/उसके ऐसे नाटक में/अपने पसीने से ही भीग-भीग जाया करता है नाटक भी!''**

– यह बहुत संवेदनशील कविता है और बहुत अच्छी कविता है। एक असफल अभिनेता का अंतरंग है इसमें। वो सच्चाई जो वह एक द्वन्द्व के रूप में जी रहा है। दरअसल नाटक एक सामूहिक कला है। लेखक जो कुछ लिखता है, उसे अभिनय और दृश्य में निर्देशन के लिए रूपांतरित करना। जिस तरह से दिखाना है वह एक्टर का काम है। एक चीज़ ध्यान में रखो कि ऐरा-गैरा डायरेक्टर और बहुत अच्छा एक्टर अच्छा नाटक कर सकता है। लेकिन एक गधा एक्टर और बहुत ही गतिशील दिग्दर्शक नाटक अच्छा नहीं कर पाएगा। लेकिन एक बहुत अच्छा दिग्दर्शक और औसत अभिनेता अच्छी फिल्म बना सकते हैं।

**चलिए विषयांतर करते हैं, थोड़ी दार्शनिक मुद्रा हम लोगों की हो गयी। हम यह जानना चाहते हैं कि जिस वक्त मोहन आगाशे के भीतर अभिनय करने की इच्छा जागृत हो रही थी और जब वह अपनी नैसर्गिक प्रतिभा को पहचान रहा था तब उनके सामने बहुत सारी ऐसी नायक छवियाँ थीं जो हमारे रंगमंच और सिनेमा पर दाखिल हो चुकी थीं और उनका अपना एक नाम था, अपनी एक कीर्ति थी। पैमाना अपने अभिनय का उन्होंने गढ़ा। मोहन आगाशे के सामने यह अभिनय कहाँ ठहरता था? आपका भी अपना कोई प्रिय अभिनेता रहा होगा जिसको देखकर आपने भी अपने अभिनय को या अपने रंगमंच और सिनेमा के आने वाले भविष्य को लेकर कुछ ख़्वाब बुने होंगे।**

– कितने मुश्किल सवाल पूछते हैं आप! ...देखिए ऐसा है कि आप कई लड़कियों को पसंद कर सकते हैं लेकिन शादी तो एक से ही करनी होती है। सौभाग्य की बात यह है कि आप एक साथ कई अभिनेता और अभिनेत्रियों को पसंद कर सकते हैं और उम्र के हर तबके में, जैसे आप बढ़ते हो, आपका अनुभव बढ़ता है। तो इसका एक जवाब नहीं होता। जैसे डॉक्टर लागू के लिए पॉल मुनि थे, नसीरुद्दीन के लिए और हमारे लिए दिलीप कुमार थे क्योंकि वे सिनेमा में नई शैली लेकर आए थे। वहीं नसीर ने कितने नए लोगों के लिए एक अच्छा उदाहरण बना दिया। मेरे समकालीन और पूर्वकालीन जब्बार ख़ुद बहुत बढ़िया एक्टर थे। हालाँकि उन्होंने बंद कर दी एक्टिंग। तो मेरे साथ के नसीर, ओम पुरी, स्मिता, शबाना, अमरीश ये जो कुलभूषित लोग थे, ये बहुत अच्छे अभिनेता थे। मराठी में भी भक्ति बड़वे, दिलीप अच्छा काम करते हैं। नसीर का नया नाटक 'अभिनेता' देखिए। कमाल! मस्त!

**ज़रा तकनीकी बात आपसे करना चाहता हूँ। रंगमंच, सिनेमा और टी.वी. तीन अलग-अलग मंच हैं। इन तीनों मंचों पर जाते हुए मोहन आगाशे किस तरह अपने आप को साबित करते हैं?**

– एक तो मैं बात कहूँ बहुत प्रामाणिकता से कि मैं किसी को कुछ भी साबित नहीं करना चाहता। मुझे जो कुछ भी साबित करना है वह ख़ुद को करना है, दूसरों को नहीं करना। लेकिन एक बात सही है कि जब मैं रंगमंच पर जाता हूँ, यह बात बुजुर्गों ने भी बतायी है कि रंगमंच एक फ्रेम का सिनेमा है। सिर्फ एक बात जो दोनों में एक है वह है कि नाटक और सिनेमा दोनों ही टाईम और स्पेस के साथ खेल सकते हैं। लेकिन रंगमंच पर जब आप काम करते हैं तो आपके पास दर्शक होते हैं जो पहली पंक्ति में भी बैठे होते हैं और बालकनी में भी बैठे होते हैं। आख़री पंक्ति में भी। तो देह बोली वहाँ महत्वपूर्ण हैं। वहाँ कैमरा पास नहीं जा सकता। मन के भीतर की बात करना है। तो फ़िल्म में बहुत आसान हो जाता है। भावनाएँ दिखानी हैं तो कैमरा आपके इतने पास जा सकता है कि आप कुछ बहुत ही छोटा मूवमेंट कर सकते हैं जो आप जीवन में करते हैं जो कि लोगों को नज़र नहीं आता। लेकिन आपके बगल में जो खड़ा है उसे नज़र आता है। तो कैमरे में वह क़ाबिलियत है। लेकिन हमारा परफारमेंस स्क्रीन में टुकड़ों में होता है। रंगमंच के जैसे उसमें नियमितता नहीं होती टाईम और स्पेस की। तो वह मुश्किल है ज़्यादा। क्योंकि फ़िल्म में आख़री शॉट सबसे पहले लिया जा सकता है और सबसे पहला शॉट आख़री में। तो आपको उस तरह का अन्दाज़ बनाना पड़ता है। उसमें समय लगता है। टी.वी. बीच में कहीं होता है।

# सरहदों तक बहता संस्कृति का सैलाब

**भारत, अमेरिका, नीदरलैंड्स, यू.के., सिंगापुर, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, यूक्रेन, रशिया, कजाकिस्तान, स्वीडन, त्रिनिदाद, यू.ए.ई., उज्बेकिस्तान, श्रीलंका और बुल्गारिया में हुए विश्वरंग महोत्सव के अनूठे भव्य आयोजन**

---

उत्सव ही वो आँगन है जहाँ उम्मीद का दामन फिर से थामकर जीवन के रुके सिलसिले को रफ़्तार दी जा सकती है। 'विश्वरंग' ने अपना ताना-बाना इसी यक़ीन के आसपास बुना। साहित्य, संस्कृति और कलाओं में रचे-बसे इंसानियत के उसूलों को पुकारा। ये आवाज़ भारत के हृदय प्रदेश की राजधानी भोपाल से उठकर सारी क़ायनात में फैली। शब्द, संगीत, रंग, अभिनय, नृत्य की छवियों से लेकर बातों-मुलाकातों की रवानगी में विरासत के पन्ने खुले। हुनर और तजुरबे के दिलचस्प दौर चले। पंख पसारती संचार की नई तकनीक ने जैसे सबको आत्मीयता की डोर में बांध लिया। यूँ 'विश्वरंग' दूसरी पायदान तय करता परिकल्पना, विस्तार और संयोजन की दृष्टि से और भी व्यापक हुआ। रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय की इस भव्य गतिविधि ने संस्कृति के नए क्षितिज की तलाश की है। 'विश्वरंग' की मूल संरचना और नवाचार का सांस्कृतिक नेतृत्व किया कुलाधिपति, कवि-कथाकार तथा शिक्षाविद् संतोष चौबे ने।

# छलके जीवन के रस-रंग

मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल में गए बरस शुरु हुए इस विराट महोत्सव की मेज़बानी इस साल दुनिया के पन्द्रह से भी ज़्यादा मुल्कों ने की। यूएसए, कनाडा, यूके, नीदरलैंड, रशिया, उज्बेकिस्तान, सिंगापुर, ऑस्ट्रेलिया, श्रीलंका, फीजी, यूक्रेन, कज़ाकिस्तान, स्वीडन, त्रिनिदाद, संयुक्त अरब अमीरात (यू.ए.ई) सहित ये वे कुछ मुल्क रहे जिन्होंने हिन्दी और भारतीय भाषाओं के साथ ही हिन्दुस्तानी संस्कृति और कलाओं को अपने-अपने मंचों पर सुंदर रुपकों में ढाला। दिलचस्प यह कि इस सांस्कृतिक अनुष्ठान का सपना रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय जैसे निजी शैक्षणिक संस्थान ने देखा और उसे बड़ी ही सूझबूझ भरी रचनात्मक आपसदारी के साथ पूरा किया। यहाँ शब्द, दृश्य, रंग-लय और ध्वनियों का खूबसूरत ताना-बाना रचने साहित्य, संस्कृति, कला, शिक्षा, विज्ञान, तकनीक, पर्यावरण, मीडिया और उद्यमिता की गुणी और नामचीन शख्सियतें साथ-साथ रहीं। 20 से 29 नवंबर के दरमियान 'विश्वरंग 2020' अपने वर्चुअल मंच के ज़रिये दुनिया भर में दस्तक देता रहा। ग़ौरतलब है कि पूर्व राष्ट्रपति भारत रत्न प्रणब मुखर्जी ने पिछले वर्ष 'विश्वरंग' को परंपरा और आधुनिकता का संयोग कहकर इसकी अहमियत को रेखांकित किया था।

विश्वरंग की अवधारणा के मूल में हिन्दी और तमाम भारतीय भाषाओं तथा संस्कृतियों के बीच परस्पर सम्मान का रिश्ता है। यहाँ बोलियों की मटियारी महक है। साहित्य और कला की विभिन्न विधाओं के बीच वो संवाद है जहाँ जीवन का छलकता रस-रंग है। प्रयोग और नवाचारों की श्रृंखला में इस बार सांस्कृतिक रंगारंग और साहित्यिक विमर्श के साथ अंतर्राष्ट्रीय फ़िल्म समारोह और बच्चों के लिए चहक-महक भरी गतिविधियाँ जुड़ीं तो युवा और नौनिहाल पीढ़ी की उमंग-तरंग भी यहाँ तैरने लगी। इन गतिविधियों के सूत्र थामे- पल्लवी राव चतुर्वेदी, सिद्धार्थ चतुर्वेदी, नितिन वत्स, लीलाधर मंडलोई, अशोक भौमिक, विनय उपाध्याय, संजय सिंह राठौर तथा सुदीप सोहनी ने। रस्किन बॉन्ड जैसे नामी और मशहूर लेखक बच्चों से संवाद के लिए नमूदार हुए तो मोहन आगाशे, आबिद सुरती, शिवेन्द्र सिंह डुंगरपुर, आशुतोष राणा, रजत कपूर, रघुवीर यादव, पीयूष मिश्रा, अनिल चौबे, ज्योति कपूर, जयंत देशमुख जैसे फ़िल्मकार और सिने-समीक्षक छवियों की दुनिया से जुड़े मुद्दों पर अपनी राय जताने आगे आए। बातों-मुलाकातों के सिलसिले में चित्रा मुद्गल, ममता कालिया, नंदकिशोर आचार्य, रमेशचन्द्र शाह, धनंजय वर्मा, प्रियंवद, मनोज श्रीवास्तव, प्रभु जोशी, ज्ञान चतुर्वेदी, शीन कॉफ निज़ाम जैसी अदब की अनेक मक़बूल शख्सियतें साहित्य प्रेमियों के

आगाज़ .... विश्वरंग 2021 • रवीन्द्रनाथ टैगोर वि.वि. के मुक्ताकाश परिसर में टैगोर प्रतिमा के निकट उत्सव-परिवार

रुबरु हुई। भारत के उपराष्ट्रपति वेंकैया नायडू तथा केन्द्रीय मंत्री प्रकाश जावड़ेकर, रमेश पोखरियाल निशंक, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद (विदेश मंत्रालय) के अध्यक्ष विनय सहस्त्रबुद्धे, छत्तीसगढ़ की राज्यपाल अनसुईया उइके, मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान तथा प्रदेश के ही अन्य मंत्रियों और विभिन्न उपक्रमों के निदेशक-संचालकों से प्राप्त शुभकामना संदेशों ने भी निश्चय ही विश्वरंग के प्रति अपना गहरा विश्वास प्रकट किया है। रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के टैगोर विश्व कला एवम् संस्कृति केन्द्र के संयोजन में तैयार हुआ यह सांस्कृतिक ताना-बाना इस बात की ताईद करता है कि जीवन को सुन्दर, ख़ुशहाल और यक़ीन से हरा-भरा बनाती संगीत, नृत्य, नाटक और चित्रकला जैसी सृजन की विधाएँ प्रार्थना के पलों सी सात्विक हैं। यहाँ मन का रंजन है तो बहुलता में एकता का संदेश भी सघन है।

'विश्वरंग' का बीज मंत्र मनुष्य की महिमा का उद्घोष है जो शताब्दियों से चली आ रही महान सांस्कृतिक परंपरा के गौरव को गाना, अपने समय की नई धड़कनों को सुनना चाहता है। परिकल्पना, संयोजन और पूरे सांस्कृतिक विन्यास में 'विश्वरंग' की यह मंशा मूर्त होती दिखाई देती है। गीतकार रामवल्लभ आचार्य का 'छंद' कहता है- जिसमें सम्वेदन की सुगंध, अनुराग-राग के ललित बंध, यह विश्वरंग यह विश्वरंग।

उद्घाटन सत्र बहुत ही उल्लास और गरिमा के साथ सम्पन्न हुआ जिसमें मुख्य अतिथि के रुप में मध्य प्रदेश के उच्च शिक्षा मंत्री डॉ. मोहन यादव उपस्थित थे। इस अवसर पर रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के कुलाधिपति और विश्वरंग के निदेशक संतोष चौबे, भारतीय ज्ञानपीठ के पूर्व निदेशक, वरिष्ठ कवि, आलोचक और विश्वरंग के सह-निदेशक लीलाधर मंडलोई, आईसेक्ट के कार्यकारी उपाध्यक्ष और विश्वरंग के सह-निदेशक सिद्धार्थ चतुर्वेदी, कथादेश के सम्पादक और विश्वरंग की आयोजन समिति के सदस्य मुकेश वर्मा, रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ ब्रम्हप्रकाश पेठिया, मध्य प्रदेश के उच्च शिक्षा टास्क फ़ोर्स के सदस्य श्रीराम तिवारी और टैगोर सेंटर फ़ॉर आर्ट एंड कल्चर के निदेशक विनय उपाध्याय भी मौजूद थे। कार्यक्रम की शुरुआत दीप प्रज्वलन, माँ सरस्वती को पुष्पांजलि और रबीन्द्रनाथ टैगोर तथा वनमाली जी के स्मरण के साथ की गयी। सभी गणमान्य अतिथियों द्वारा विश्वरंग 2020 के पोस्टर, विश्वरंग केंद्रित 'रंग संवाद' पत्रिका, विश्वरंग के पहले संस्करण पर केंद्रित कॉफ़ी टेबल बुक, विश्वरंग अंतरराष्ट्रीय फ़िल्म महोत्सव का पोस्टर और विश्वरंग की गांधी विशेषांक पत्रिका का लोकार्पण किया गया।

क़ायनात में अमन-चैन के लिए एक कारवाँ

शुभारम्भ सत्र के अवसर पर विश्वविद्यालय पर केंद्रित एक फ़िल्म का प्रदर्शन किया गया। साथ ही टैगोर के सुप्रसिद्ध गीत 'एकला चलो रे' पर आधारित दृश्य-श्रव्य नृत्यनाटिका की प्रस्तुति का वीडियो भी प्रदर्शित किया गया जिसका निर्देशन-संयोजन नृत्यांगना श्वेता-देवेन्द्र और क्षमा मालवीय ने किया। रवीन्द्रनाथ

टैगोर विश्वविद्यालय के इस गरिमामय आयोजन 'विश्वरंग' के लिए केंद्रीय पर्यावरण, वन एवं जलवायु मंत्री और सूचना प्रसारण मंत्री प्रकाश जावड़ेकर और मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान के वीडियो के माध्यम से भेजे गए शुभकामना संदेश का वाचन भी किया गया। इस आयोजन की प्रशंसा करते हुए जावड़ेकर और चौहान ने विश्वरंग को भारतीय भाषाओं, कला और संस्कृति के लिए भारत ही नहीं बल्कि पूरे विश्व के लिए एक महत्वपूर्ण आयोजन बताया।

विश्वरंग के निदेशक संतोष चौबे ने उपस्थित अतिथियों, सभागार में उपस्थित दर्शकों और ऑन लाइन माध्यमों से जुड़े दर्शकों का स्वागत किया। विश्वरंग के विचार और अवधारणा का परिचय देते हुए उन्होंने बताया कि विश्वरंग भारतीय भाषाओं और बोलियों को वैश्विक स्तर पर जोड़ने का प्रयास है। विश्वरंग एक साहित्य आयोजन से कहीं बढ़कर कलाओं का उत्सव है। लीलाधर मंडलोई ने अपने काव्यात्मक उद्‌बोधन में विश्वरंग के संकल्प को बड़ा बताया। उन्होंने विश्वरंग को जीवन में आए एक ऐसे उत्सव के रुप में सम्बोधित किया जिसने 'कोरोना से बिलखते मनुष्य के आँसू पोंछे'।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि मोहन यादव ने अपने वक्तव्य में कहा कि यह विश्वरंग टैगोर और विवेकानंद के आदर्शों और विचारों को आगे बढ़ाने का काम कर रहा है। विश्वविद्यालय की प्रशंसा करते हुए डॉ यादव ने ग़ैर-सरकारी शैक्षणिक संस्थानों की महत्ता को रेखांकित किया और कहा कि टैगोर विश्वविद्यालय ऐसी शिक्षा पद्धति का उदाहरण है जहाँ कौशल विकास और सांस्कृतिक गतिविधियाँ शिक्षा का हिस्सा हैं। प्रसन्नता ज़ाहिर करते हुए उन्होंने कहा कि मैं यहाँ आकर धन्य हो गया। विश्वरंग के सह-निदेशक सिद्धार्थ चतुर्वेदी ने विश्वरंग की रूपरेखा साझा करते हुए कहा कि इस बार विश्वरंग और भी बड़ा होकर लौटा है।

## बिखरे आदिम रंग

विश्वरंग 2020 के आँगन में औपचारिक उद्‌घाटन सत्र के दौरान ढलते सूरज और ख़ुशनुमा शाम के लम्हों में जनजातीय कलाकारों के आदिम रंगों की आभा एक अनोखा मंज़र समेट लाई। ये संस्कृति के आदिम रंग थे। 'हम उराँव' के नाम से प्रस्तुत इस रुपक में श्रम और आनंद की कलात्मक बानगी थी। इस कार्यक्रम

उरांव जनजाति का खेतिहर पारंपरिक नृत्य

के पहले विश्वविद्यालय के कुलाधिपति और विश्वरंग के निदेशक संतोष चौबे, सह-निदेशक लीलाधर मंडलोई एवं सिद्धार्थ चतुर्वेदी, विश्व विद्यालय के कुलपति ब्रह्मप्रकाश पेठिया, विश्वरंग के समिति सदस्य मुकेश वर्मा और टैगोर सेंटर फ़ॉर आर्ट एंड कल्चर के निदेशक विनय उपाध्याय ने विश्वविद्यालय प्रांगण में स्थापित टैगोर की प्रतिमा के समक्ष पुष्पांजलि अर्पित की। इस अवसर पर विश्वविद्यालय परिवार के सभी शिक्षक और कर्मचारी उपस्थित थे। संतोष चौबे ने विश्वरंग के शुभारम्भ की घोषणा की और रंग बिरंगे गुब्बारों के साथ विश्वरंग के दूसरे संस्करण ने खुले आसमान में उड़ान भरी। इस मनभावन लोक प्रस्तुति के उपरांत विश्वविद्यालय परिसर में संतोष चौबे के नेतृत्व में विश्वरंग यात्रा निकाली गयी। विश्वविद्यालय परिवार और अग्नेश केरकेट्टा के संयोजन में उराँव आदिवासी कलाकारों ने इस यात्रा में अत्यंत उत्साह के साथ हिस्सा लिया।

विमोचन – 'रंग संवाद' : विश्वरंग 2020 की स्मृतियों पर केन्द्रित विशेषांक।
उच्च शिक्षा मंत्री मप्र मोहन यादव तथा कुलाधिपति संतोष चौबे

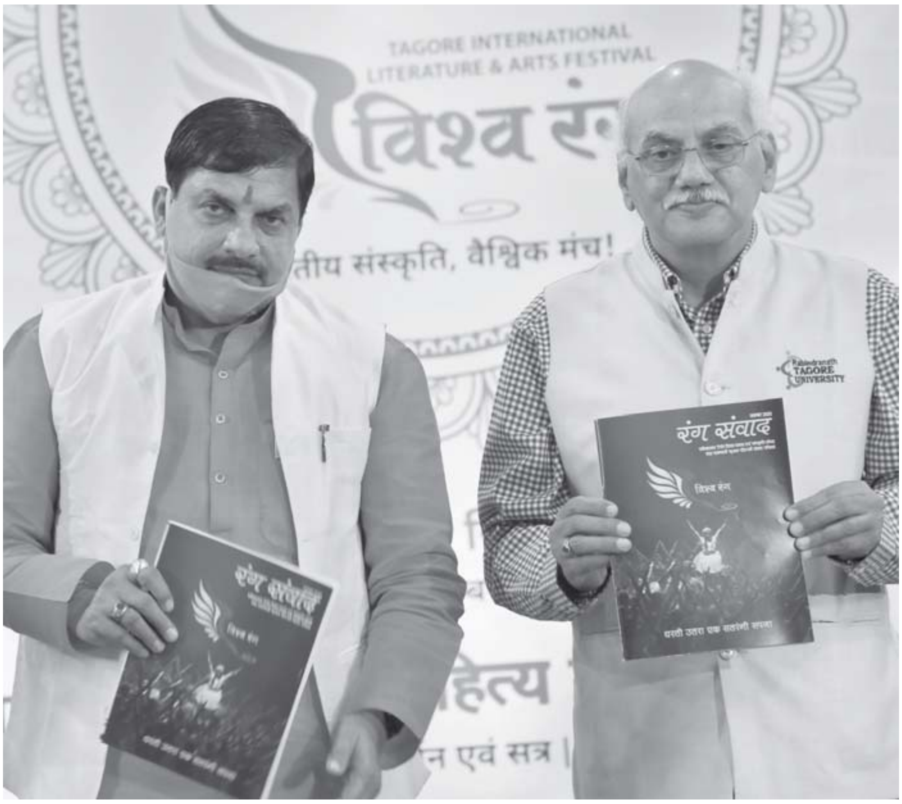


यह देश के इतिहास में पहली बार हुआ किसी शैक्षिक संस्थान रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय ने डॉ. सी. वी. रमन विश्वविद्यालय, आइसेक्ट विश्वविद्यालय, टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केंद्र, वनमाली सृजन पीठ, वनमाली सृजन केंद्रों एवं देश-विदेश की 100 से अधिक सांस्कृतिक संस्थाओं को साथ लेकर साहित्य एवं कला महोत्सव का अद्भुत संसार रचा।

देश में आयोजित होने वाले कई अन्य साहित्य उत्सव में अंग्रेजी का प्रभुत्व होता है। पश्चिमी संस्कृति की प्रधानता रहती है। वे महानगरों में एलीट क्लास तक सीमित रहते हैं। इन उत्सवों के बदले 'विश्वरंग' ने हिंदी और भारतीय भाषाओं को केंद्रीयता प्रदान करने का महत्वपूर्ण कार्य करते हुए हिंदी और भारतीय भाषाओं के बीच अपनत्व और परस्पर सम्मान का रिश्ता कायम करने का ऐतिहासिक कार्य किया। साथ ही इस बात को भी विशेष रूप से ध्यान में रखा की हमारी भाषा को समृद्ध करने के लिए हमारी बोलियों का समृद्ध होना बहुत जरूरी है। अपनी भाषा से अपनी बोलियों को जोड़ना भी बहुत आवश्यक है। 'विश्वरंग' में हिंदी के साथ उसकी बोलियों में मालवी, बुंदेली, बघेली, छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी, अवधि आदि के ज़मीनी रस भरे संवाद को वैश्विक फलक प्रदान किया।

हमारे देश में राजनीति ने सभी भारतीय भाषाओं को एक दूसरे के विरुद्ध खड़ा करने का काम किया है जबकि सभी भारतीय भाषाएँ परस्पर एक दूसरे से गहरे तक जुड़ी हुई हैं। वे सहोदर है और एक दूसरे से शक्ति अर्जित करती हैं। हमारे यहां बोलियों को भी हिंदी के विरुद्ध खड़ा करने के प्रयास किए गए जबकि स्वयं हिंदी भाषा अपना रस इन जीवन सिक्त बोलियों से ही प्राप्त करती है। भाषाओं और बोलियों पर बहुत ही महत्वपूर्ण सत्र और विमर्श 'विश्वरंग' में आयोजित हुए। उल्लेखनीय है कि इन सत्रों में दूरदराज के ग्रामीण आदिवासी अंचलों के रचनाकारों ने अपनी स्थानिकता की सौंधी महक के साथ 'विश्वरंग' में प्रतिनिधित्व करते हुए विभिन्न रसभरी बोलियों में रची कविताओं की यादगार प्रस्तुतियों से बोलियों के महत्व को प्रतिपादित किया।

## जड़ों से जुड़े रहना चाहते है प्रवासी साहित्यकार

सात समंदर पार प्रवासी भारतीय रचनाकार भी अपनी मातृशक्ति, मातृभाषा, मातृभूमि अपनी जड़ों से जुड़े रहना चाहते हैं लेकिन उनके लेखन के बेहतर प्रकाशन और रचनात्मक मूल्यांकन को लेकर कोई ठोस प्रयास देश में नहीं हुए। 'विश्वरंग' में विश्व के प्रमुख भारतीय रचनाकारों, युवा रचनाकारों को साझा मंच प्रदान कर उनके साहित्य और रचनाकर्म के रचनात्मक मूल्यांकन और बेहतर प्रकाशन की सार्थक पहलकदमी की गई है। 'विश्वरंग' में प्रवासी भारतीय रचनाकारों की उत्कृष्ट पुस्तकों के आकर्षण कलेवर के साथ प्रकाशन, भव्य लोकार्पण एवं सार्थक विमर्श को पूरी दुनिया ने सराहा।

'विश्वरंग' में भारतीय कला, साहित्य, संस्कृति, दर्शन एवं भारतीय अस्मिता को आत्मसात किया गया। भारतीयता को प्राथमिकता देना कोई जड़ राष्ट्रीयता नहीं है। यहां भारतीयता वैश्विक संदर्भ से जुड़ी और अपने अनोखेपन में प्रकाशित भारतीयता है। विश्व कविता, कथा, उपन्यास सहित साहित्य की सभी विधाओं का उतना ही स्थान है जितना भारतीय साहित्य का।

'विश्वरंग' का मूल आधार टैगोर की वैश्विकता रहा है। यह महोत्सव टैगोर की रचनात्मकता से शुरू होकर पूरे विश्व तक फैलता है। हिंदी भाषी क्षेत्र में टैगोर की विराट रचनात्मकता विशेषकर उनकी चित्र शैली एवं नाटकों को लेकर कोई बहुत चेतना नहीं है और इसका पुनरावलोकन बहुत आवश्यक है। विश्वरंग की गतिविधियाँ इसकी साक्षी है।

'विश्वरंग' के शिल्पी, कवि-कथाकार और रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के कुलाधिपति संतोष चौबे का मानना है कि जीवन के नए उपकरणों को तलाशने के साधन विज्ञान के पास उतने नहीं है जितने कला, साहित्य, संस्कृति और संगीत के पास हैं। विश्व के तमाम रचनाकारों, कलाकारों और संगीतज्ञों को इस संबंध में बातचीत शुरू करना चाहिए और एक प्रभावी हस्तक्षेप करना चाहिए। 'विश्वरंग' साहित्य, शिक्षा, संस्कृति और भाषा में काम करने वाले समूचे विश्व के रचनाकारों के बीच इसी दिशा में वैश्विक विमर्श की एक सार्थक रचनात्मक शुरुआत है।

'विश्वरंग 2020' की शुरुआती अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों के दौरान संतोष चौबे ने बहुत ही स्पष्ट रूप में कहा कि कोरोना काल से उपजे हालातों ने साफ संकेत दिए हैं कि हमें विकास का रास्ता बदलने की ज़रूरत है। इस दिशा में साहित्य, कला, संस्कृति के रचनात्मक हस्तक्षेप के द्वारा हम उच्चतर शक्ति को जागृत कर सकते हैं। हम प्रेम और घृणा में से किसे चुने इसे साहित्य, कला और संस्कृति ही हमें सिखाती है। हम अपने इन सार्थक प्रयासों से संभावनाओं की नई ज़मीन और फलक तैयार कर सकते हैं।

### टेक्नालॉजी बने ताक़त!

इस समय हिंदी और भारतीय भाषाओं के पास बहुत बड़ा अवसर है टेक्नोलॉजी ने यह संभव किया है कि पूरे विश्व में हम इनको फैला सके। हमने 'विश्वरंग' टैगोर अंतर्राष्ट्रीय साहित्य एवं कला महोत्सव के माध्यम से वैश्विक स्तर पर यह कर दिखाया है। इसी संकल्पना के साथ 'विश्वरंग 2020' का आगाज विश्व के 16 देशों में वर्चुअल प्लेटफार्म पर विश्व के सबसे बड़े ऑनलाइन फेस्टिवल के रुप में किया गया।

रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल (मध्य प्रदेश), डॉ. सी.वी. रमन विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छत्तीसगढ़), खंडवा (मध्य प्रदेश), वैशाली (बिहार), आईसेक्ट विश्वविद्यालय, हजारीबाग (झारखंड), टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केंद्र, वनमाली सृजन पीठ, भोपाल, बिलासपुर, खंडवा, दिल्ली, वैशाली, हजारीबाग,

विश्वरंग की साझा खुशियाँ

वनमाली सृजन केंद्रों, टैगोर विश्वकला एवं संस्कृति केन्द्र एवं आईसेक्ट समूह के हजारों केंद्रों ने 'विश्वरंग' के भव्य आयोजन के लिए भी महत्वपूर्ण प्रतिमान और अनुशासन स्थापित किए हैं। 'विश्वरंग' के बेनर पर पूर्व कोरोना काल में लॉकडाउन के दौरान 'विश्वरंग 2020' की पूर्व पीठिका के रूप में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर देश-विदेश में ऑनलाइन गोष्ठियों के आयोजन अप्रैल से अक्टूबर 2020 के मध्य किए गए। 'विश्वरंग', साझा संसार, होलैंड, भारतीय ज्ञानपीठ, वनमाली सृजन पीठ द्वारा संयुक्त रूप से वर्चुअल प्लेटफार्म पर आयोजित इन अंतर्राष्ट्रीय गोष्ठियों में विश्व के कई देशों के सैकड़ों प्रवासी भारतीय रचनाकारों ने रचनात्मक भागीदारी की। उल्लेखनीय है कि इन अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों में हिंदी साहित्य की सभी विधाओं को शामिल किया गया। प्रवासी भारतीय रचनाकारों ने कविताएं, कहानियां, गीत, ग़ज़ल, संस्मरण, पत्र-लेखन, लघुकथा, व्यंग, यात्रा संस्मरण आदि पर केंद्रित महत्वपूर्ण रचनाओं को प्रस्तुत किया।

## बच्चन की 'मधुशाला', पारंपरिक खेलों की धमा-चौकड़ी

इंसानी उसूलों का पैगाम लिए अपनी पुरअसर आवाज़ों और बेमिसाल अदाकारी के साथ जब शहर के रंगकर्मियों ने रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय की वादियों में दस्तक दी तो 'विश्वरंग' अपनी रौनक में खिल उठा। एक सिरे पर पारंपरिक खेलों की याद दिलाता त्रिकर्षि रंग समूह का नुक्कड़ नाटक तो दूसरे सिरे पर 'मधुशाला' की रुबाइयों और अपने लोकप्रिय नाटकों के गीत-संगीत का कोरस गाते शेडो ग्रुप के फनकार।

साहित्य और संस्कृति के अंतर्राष्ट्रीय महोत्सव विश्वरंग-2020 के पूर्वरंग की गतिविधियाँ इसी चहक-महक के बीच चार नवंबर को शुरु हुईं। टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र द्वारा इफ्तेख़ार क्रिकेट अकादेमी के सहयोग से आयोजित तीन दिनी नुक्कड़ नाट्य समारोह का शुभारंभ टैगोर वि.वि. के कुलाधिपति संतोष चौबे ने किया। इस अवसर पर कुलपति प्रो. ब्रह्मप्रकाश पेठिया, आईसेक्ट के निदेशक सिद्धार्थ चतुर्वेदी, कुलसचिव विजय सिंह, साहित्यकार मुकेश वर्मा, बलराम गुमास्ता, महेन्द्र गगन तथा टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र के निदेशक विनय उपाध्याय, आईक्यूएसी के निदेशक नितिन वत्स ने मिलकर महोत्सव की अंतर्राष्ट्रीय सहभागी संस्थाओं को चिन्हित करता बहुरंगी पोस्टर जारी किया।

समारोह की शुरुआत रंगकर्मी मनोज नायर द्वारा संयोजित रंग संगीत की प्रस्तुति से हुई। शेडो ग्रुप के कलाकारों ने कवि हरिवंशराय बच्चन की बहुचर्चित रचना 'मधुशाला' की रुबाइयों को लय-ताल के अनूठे आरोह-अवरोह के साथ गुनगुनाया तो श्रोता भी ताल पर ताल देते रहे। इस श्रृंखला में नाटकों सुकरात, लास्ट एंगल और नेपथ्य में शकुंतला के गीत भी सराहे गये। मनोज नायर के लिखे गीतों को स्वर दिया अमरसिंह, आदर्श ठस्सू, सोनू चतुर्वेदी, अभि श्रीवास्तव, अनुश्री जैन, मिलिन्द और आयुष ने। वरिष्ठ रंगकर्मी के.जी. त्रिवेदी के निर्देशन में त्रिकर्षि रंगसमूह के कलाकारों ने नुक्कड़ शैली में 'आओ खेलें खेल' का मंचन किया। न तो भारी-भरकम सेट, न लाइट-साउंड की तकनीकी ज़रुरत, लेकिन अपने संवादों और अदाकारी के अनूठे

आओ खेलें खेल : त्रिकर्षि, भोपाल की नाट्य प्रस्तुति। निर्देशक- के.जी. त्रिवेदी

अंदाज़ लिए जब युवा कलाकारों ने हिन्दुस्तानी परंपरा के खेलों की चहल–कदमी की तो दर्शक पुरानी यादों में खो गये। सेहत, मनोरंजन और बुद्धि तथा समता और एकता के मानवीय मूल्यों का सबक सिखाते इन खेलों में पोसम्पा, सितौलिया, पिट्‌ठू और गदामार से लेकर धप्पा–धप्पी की वो धमा–चौकड़ी थी जिसे सजीव होते देख अनूठा आनंद मिला। यह प्रस्तुति एक बार फिर याद दिलाती है कि भारत का कोई भी खेल ऐसा नहीं है जो अकेले खेला जा सके। ये खेल न केवल हमारा मनोरंजन करते हैं, बल्कि हमारे शारीरिक सौष्ठव, स्फूर्ति को बनाये रखते हैं। भारतीय पारंपरिक खेल हमें सिखाते हैं, कैसे एकता में शक्ति होती है, कैसे हम अपने मनोबल से अपनी टीम को जीत दिला सकते हैं, कैसे हम मन, बुद्धि और शरीर का सामंजस्य बैठा सकते हैं।

बेहद कल्पनाशील ढंग से बुनी गयी इस नुक्कड़ नाटक की प्रस्तुति के निर्देशक के.जी. त्रिवेदी के अनुसार हमारी देश की संपदा, संस्कृति और पुरातन ज्ञान अपने आप में विज्ञान को समाहित किये हुए हैं, जिन्हें हम दकियानूसी की संज्ञा देते हैं या फिर उन क्रिया–कलापों को सामान्य दिनचर्या का व्यवहार मानकर बहुत तवज्जो नहीं देते हैं, उन्हीं क्रिया कलापों का महत्व आज बढ़ गया है। कोविड–19 के विश्वव्यापी भयावह और निराशा के वातावरण में भारत का पुरातन ज्ञान और आयुर्वेद को दुनिया ने माना और स्वीकार किया। तो फिर क्यों न हम अपने पुरातन खेलों को भी अपनायें!

## सूफ़ियाना मौसिक़ी की महक

एक ओर अमन, एकता और आपसदारी का रोमांच जगाता संगीत तो दूसरी ओर नई चुनौतियों के बीच उम्मीद और हौसले को थामकर रंगमंच पर लौटने के सबक। रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के सांस्कृतिक परिसर में 'विश्वरंग 2020' के तहत चल रही गतिविधियों ने (5 नवंबर) को कुछ इस तरह करवट ली। आकर्षण आलोक चटर्जी के निर्देशन में म.प्र. नाट्य विद्यालय की प्रस्तुति 'कल का रंगमंच', मो. साज़िद के रंग बैंड का सूफी संगीत, श्रुति अधिकारी का संतूर वादन और चैताली शेवलीकर का वायोलीन वादन रहा।

महफिल का आगाज़ प्रतिभाशाली युवा संगीतकार चैताली ने वायोलीन पर सद्‌भाव की प्रेरणादायी धुनें बजाकर किया। सुरों के इस गुलदस्ते में टैगोर का कालजयी गीत 'एकला चलो रे' से लेकर बनारसी धुन, तराना और मीरा का भजन 'राम रतन धन पायो' अपनी रंग–ओ–महक लिए शामिल थे। वायोलीन के तारों पर बहते इस सुरीले अहसास में नया पहलू जोड़ा श्रुति अधिकारी ने। संतूर जैसे मीठे–कोमल साज़ पर जैसे ही उन्होंने राजस्थानी मांड 'पधारो म्हारे देस' की बंदिश बजायी माहौल प्रेम और आत्मीयता के राग–रंग में डूब गया। यह सिलसिला बापू के प्रिय भजन 'वैष्णव जन तो तेने कहिए' से गुजरता पहाड़ी धुन पर जाकर थमा। इन दोनों कलाकारों के साथ रामेन्द्रसिंह सोलंकी की सधी हुई संगत ने लय–ताल का करिश्माई अंदाज़ दिखाया। साज़ों की सुरीली दस्तक के बाद मौसिकी की इस महफिल में चार चांद लगाने युवा फ़नकार मो. साज़िद और आमिर हाफ़िज़ अपने साथी–संगतकारों के साथ मंच पर नमूदार हुए। अपनी गायिकी में सूफ़ियाना असर लिए इस जोड़ी ने हज़रत अमीर खुसरो के मशहूर कलाम चुने। 'दमादम मस्त कलंदर' और 'आज रंग है' जैसी मशहूर बंदिशों का सुरीला परचम फ़िज़ाओं में लहराया तो संगीत के कद्रदान भी थिरक उठे।

नुक्कड़ शैली में 'कल का रंगमंच' प्रस्तुत करने म.प्र. नाट्य विद्यालय के विद्यार्थी शरीक हुए। वरिष्ठ रंगकर्मी आलोक चटर्जी द्वारा निर्देशित इस लघु नाटक में कोविड–19 के दौरान उभरी नई चुनौती के बीच रंगमंच की लौटती उम्मीदों की आहट थी। सशक्त संवाद, अदाकारी और सामूहिक रंग उर्जा से तैयार इस नए प्रयोग में तनवीर अहमद, सुशीलकांत मिश्र, रविराव, सुरेन्द्र वानखेड़े और रहिमुद्दीन ने मंच परे अपना रचनात्मक सहयोग बनाए रखा।

## गूँजा देशराग

अपनी सरज़मीं के मान और गौरव का गान करती कालजयी कविताओं का गुलदस्ता भी 'विश्वरंग' के आँगन में महकता रहा। यहाँ वतनपरस्ती के तरानों का संगीत था तो दूसरी ओर रंगमंच के दायरों में समाज और दुनिया के उभरते अक्स को देखने का मौक़ा भी। संगीतकार सुरेन्द्र वानखेड़े और रंगकर्मी गोदान तथा तानाजी ने अपने समूहों के साथ इसी कलात्मक उर्जा को समेटे रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के सभागार में दस्तक दी। इस मौके पर टैगोर चित्रकला प्रदर्शनी एवं प्रतियोगिता के बहुरंगीय पोस्टर का लोकार्पण भी किया गया।

सभा की शुरुआत सुरेन्द्र वानखेड़े के संयोजन में तैयार वृन्दगान से हुई। धर्मवीर भारती के लोकप्रिय नाटक 'अंधायुग' के सामूहिक नंदी पाठ ने सभा का मांगलिक उद्घोष किया। परंपरा की इस सुरीली दस्तक के बाद वतन परस्ती के नग्मों ने माहौल को शौर्य, पराक्रम और वीरता के ओजस्वी रंगों से सराबोर कर दिया। सुभद्रा कुमारी चौहान की यादगार कविता 'वीरों का कैसा हो वसंत' और शिवमंगलसिंह सुमन की रचना 'तूफ़ानों की ओर घुमा दो नाविक निज पतवार' का कोरस जैसे ही ताल वाद्यों के साथ बढ़त लेता गूँजा, सभागार में मौजूद दर्शक-श्रोताओं के जेहन में हिन्दुस्तान की आज़ादी का जंग और देशभक्ति के जज़्बात कौंध उठे। वृन्दगान की समापन प्रस्तुति थी- ध्वज गान- 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा झंडा ऊँचा रहे हमारा'। द राइज़िंग सोसाईटी ऑफ आर्ट एण्ड कल्चर ने 'विश्वरंग' के निमित्त नाट्य रुपक 'अभ्यास' का प्रयोग परिकल्पित किया। प्रतिभाशाली रंगकर्मियों गोदान और तानाजी ने इस बेहद अनूठी प्रस्तुति को राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित अभिनेत्री प्रीति झा तिवारी के मार्गदर्शन में तैयार किया है। 'अभ्यास' दरअसल, नाटक के क़िरदारों के रचनात्मक अंतर्द्वन्द्व और बेचैनी को अभिव्यक्त करती कहानी है। किसी चरित्र और कहानी तथा संवाद में ढलने के पहले अपने समाज और आसपास की दुनिया को देखने की अलहदा कोशिश है 'अभ्यास'। विषयवस्तु, संवाद, अभिनय और आपसी सूझ-बूझ के बीच यह नाटक एक बेहतर अनुभव की बानगी पेश करता है।

कलाकारों का स्वागत सीआरजी के संयोजक प्रो. वी. के. वर्मा, आईसेक्ट की रजिस्ट्रार पुष्पा असिवाल और कला संकाय की डीन ऊषा वैद्य ने किया। प्रस्तुति के समापन पर इफ़्तेख़ार क्रिकेट अकादमी के सचिव तथा रंगकर्मी हमीदुल्लाह खां 'मामू' ने भोपाल के रंगकर्मियों की ओर से विश्वरंग के निदेशक संतोष चौबे का सारस्वत अभिनंदन किया।

विश्वरंग के अंतर्गत टैगोर राष्ट्रीय चित्रकला प्रदर्शनी का पोस्टर जारी... वी.के. वर्मा, संतोष चौबे, पुष्पा असिवाल, उषा वैद्य और विनय उपाध्याय

## 'कथादेश' पर केन्द्रित 'कथायात्रा'

विश्वरंग की पूर्वरंग गतिविधियों के अंतर्गत 'कथादेश' के 18 खंडों पर केन्द्रित 'कथायात्रा' का आयोजन 2 अक्टूबर से 8 नवम्बर तक किया गया। वर्चुअल प्लेटफार्म पर प्रसारित इस कथायात्रा में प्रेमचन्द्र, वनमाली, यशपाल, रेणु, मोहन राजेश, ज्ञान रंजन, रवीन्द्र कालिया, ओम प्रकाश वाल्मीकि, नवीन सागर, ज्ञान चतुर्वेदी, ध्रुव शुक्ल, मुकेश वर्मा, रमेश चन्द्र शाह, संतोष चौबे, स्वयं प्रकाश, आशुतोष, चन्दन पाण्डेय, राकेश मिश्र, श्रद्धा थवाईत की कहानियों के पाठ के साथ-साथ कथादेश के खंड एवं उस काल खंड की रचना प्रक्रिया व कथा प्रवृत्तियों पर रचनात्मक विमर्श किया गया।

उल्लेखनीय है कि कथा यात्रा का शुभारंभ वरिष्ठ कवि-कथाकार विश्वरंग के निदेशक संतोष चौबे द्वारा किया गया। कथा यात्रा की परिकल्पना वरिष्ठ कथाकार एवं वनमाली सृजन पीठ, भोपाल के अध्यक्ष मुकेश वर्मा द्वारा की गई है। शुभारंभ कड़ी का संचालन टैगोर कला केन्द्र के निदेशक विनय उपाध्याय ने किया। कथा यात्रा में संतोष चौबे, शम्पा शाह, रमाकांत श्रीवास्तव, बलराम गुमास्ता, नवल शुक्ल, रेखा कस्तवार, सुधीर रंजन सिंह, ज्ञान चतुर्वेदी, मुकेश वर्मा, ध्रुव शुक्ल, आनंद कुमारी सिंह, विनय उपाध्याय, आशुतोष, अजित हर्षे, गीत चतुर्वेदी, अरूणेश शुक्ल, कुणाल सिंह का सानिध्य प्राप्त हुआ।

युवा रचनाकारों बद्र वास्ती, प्रशांत सोनी, संतोष कौशिक ने कहानियों का पाठ किया। इस अनूठी श्रृंखला का समन्वय युवा कथाकार कुणाल सिंह, संजय सिंह राठौर एवं तकनीकी संयोजन वैंकट रमन अय्यर, संजीव शर्मा, देवन देवनानी, सौरभ अग्रवाल, रोहित श्रीवास्तव, उपेन्द्र पटने एवं आशीष पोद्दार ने किया।

उल्लेखनीय है कि हिन्दी साहित्य की 200 वर्षों की हिन्दी कथा परंपरा को कथादेश के 18 खंडों में आईसेक्ट पब्लिकेशन द्वारा प्रकाशित किया गया है। इसमें 650 से अधिक कहानियों को धरोहर, प्रेमचन्दोत्तरी, नई कहानी, समकालीन, युवा कहानी के स्वरूप में समाहित किया गया है। प्रत्येक कहानी पर वरिष्ठ एवं युवा आलोचक की टिप्पणियाँ एवं कथा साहित्य पर केन्द्रित महत्वपूर्ण आलेख भी शामिल किए गए हैं। कथायात्रा का आयोजन पाठ की उस परंपरा को जारी रखने की पहल भी थी जिसमें कहानी, क़िस्सागोई या कथावार्ता के ज़रिए सुनने और सुनाने की परस्पर रचनात्मक आपसदारी की जीवंतता निहित रही है। यह उन रचनाकारों के रचना संसार में विचरण करने का भी अवसर था जिन्होंने कहानी की बरसों पुरानी विरासत से संस्कारित होकर कथा लेखन का सशक्त उत्तराधिकार साबित किया है। कथायात्रा में प्रेमचंद से लेकर नवीन सागर तक कहानी की समृद्ध दुनिया से साक्षात्कार होता है। विश्वरंग में कहानी के इन सुनहरे अध्यायों को बाँचना लेखक और पाठक-श्रोता दोनों के लिए अनूठा अनुभव रहा।

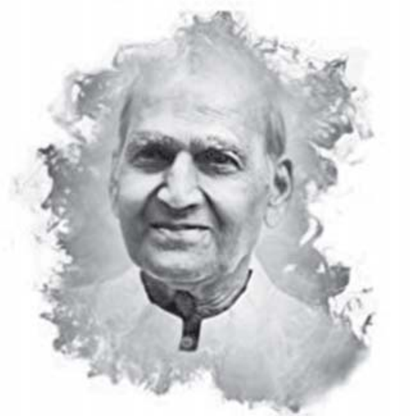
स्वयंप्रकाश

ज्ञानरंजन

शशांक

## दस्तावेज़ी पुस्तकों का लोकार्पण

'विश्वरंग 2020' के अवसर पर साहित्य, संस्कृति, कला और विज्ञान पर केन्द्रित महत्वपूर्ण ग्रंथों तथा दस्तावेज़ी विशेषांकों का प्रकाशन किया गया। इस श्रृंखला में विश्वरंग की स्मृतियों पर केन्द्रित कॉफी टेबल बुक, सांस्कृतिक पत्रिका 'रंग संवाद' का विशेषांक, गांधी विशेषांक, विज्ञान कथा कोश, प्रवासी साहित्यकारों पर केन्द्रित पत्रिका 'गर्भनाल' तथा विदेशी रचनाकारों की कृतियों का लोकार्पण किया गया।

# सिनेमाई दस्तक VIFF2020

सिनेमाई सौगातों को समेटे विश्वरंग ने दूसरी पायदान चढ़ते हुए अपने समय की कलात्मक धड़कनों से एक नया नाता जोड़ा। विश्वरंग अन्तर्राष्ट्रीय फ़िल्म समारोह की बेमिसाल शक्ल तैयार हुई। फ़िल्मी संसार इस तरह पूरी समग्रता में रौशन हुआ। चुनिंदा फ़िल्मों के प्रदर्शन के साथ ही उसके पहलुओं पर बातचीत हुई। प्रतिस्पर्धा के बीच सिनेकर्मियों की इस माध्यम के प्रति नई निगाह और सरोकारों को लेकर गंभीरता भी दिखाई दी।

इस अनूठे महोत्सव का शुभारम्भ किसी जश्न से कम नहीं था। भारतीय फ़िल्म जगत की महत्वपूर्ण हस्तियों ने यहाँ शिरकत की। VIFF 2020 के उद्घाटन सत्र के पहले मंगलाचरण में देश के उभरते युवा कलाकार संतूर वादक सत्येंद्र सोलंकी, बांसुरी वादक भास्कर दास और तबला वादक रमेंद्र सोलंकी ने प्रस्तुति दी। इसके बाद साहित्य अकादमी के सौजन्य से प्राप्त कला और साहित्य की नामचीन हस्तियों पर केंद्रित डॉक्युमेंटरी फ़िल्मों 'गिरीश करनाड' (कन्नड़) और 'इंदिरा गोस्वामी' (असमिया) का प्रदर्शन किया गया। इसी कड़ी में विज्ञान प्रसार, भारत सरकार के सौजन्य से प्राप्त विज्ञान फ़िल्म 'नौला' भी प्रदर्शित की गयी। इन तीनों फ़िल्मों का प्रदर्शन 4 बजे से 5:30 बजे तक चला। फ़िल्म प्रदर्शन की श्रृंखला में शाम 7 बजे से 7:45 बजे तक लघु फ़िल्म प्रतियोगिता से चयनित फ़िल्म 'सोंधायनी', 'डस्की ब्यूटी' और 'द सेल्यूलॉइड वूमन' का प्रदर्शन किया गया। VIFF 2020 के पहले दिन फ़िल्म प्रदर्शन के अंतर्गत मुख्य आकर्षण का केंद्र रही तुर्की और कुर्दिश फ़िल्म 'ज़ेर' जिसका निर्देशन किया प्रख्यात फ़िल्म मेकर काज़िम ओज़ ने।

'विश्वरंग' अंतरराष्ट्रीय फ़िल्म समारोह के औपचारिक उद्घाटन सत्र के अवसर पर जाने-माने अभिनेता डॉ मोहन आगाशे, फ़िल्म निर्देशक और निर्माता शिवेंद्र सिंह डूंगरपुर, विश्वरंग के निदेशक संतोष चौबे, विश्वरंग के सह-निदेशक लीलाधर मंडलोई तथा सिद्धार्थ चतुर्वेदी, VIFF 2020 के निदेशक सुदीप सोहनी और टैगोर विश्व कला और संस्कृति केंद्र के निदेशक विनय उपाध्याय मौजूद थे। लीलाधर मंडलोई ने अपने वक्तव्य में फ़िल्मोत्सव को मनोरंजन ही नहीं, मनोचिंतन की भी जगह बताया।

कुलाधिपति और विश्वरंग के निदेशक संतोष चौबे ने गणमान्य आतिथियों और वर्चुअल माध्यमों से जुड़े दर्शकों का स्वागत किया। उन्होंने बताया कि फ़िल्मोत्सव की परिकल्पना गत वर्ष हुए 'विश्वरंग' में ही तैयार हो गई थी। उन्होंने ख़ुशी ज़ाहिर करते हुए कहा कि विश्वरंग में लगभग पचास हज़ार दर्शक रोज़ाना जुड़ रहे हैं। उन्होंने बताया कि इस महोत्सव के लिए आमंत्रण पर 600 से भी अधिक फ़िल्में प्राप्त हुईं। यह इस बात का साक्षी है कि आज का युवा बहुत ही कलात्मक है और उसके पास अलग दृष्टि है जिसे कि प्राप्त फ़िल्में देखते हुए महसूस किया गया।

## सिनेमा : जीवन और मनोरंजन

कार्यक्रम के मुख्य वक्ता जाने-माने फ़िल्मकार और फ़िल्म निर्माण के माध्यम से संस्कृति के संरक्षण कार्य में सक्रिय शिवेंद्र सिंह डूंगरपुर ने इस फ़िल्मोत्सव के प्रति अपना उत्साह व्यक्त किया। समाज में फ़िल्मों की ज़रुरत, ख़ास तौर पर कोविड-काल में सांस्कृतिक फ़िल्मों की महत्वपूर्ण भूमिका को इंगित करते हुए उन्होंने कहा कि नेचर और कल्चर ही मानवता को बचाने में सम्भव होगा। डूंगरपुर ने कहा कि फ़िल्मों की विरासत खो रही है लेकिन आज का फ़िल्मकार बहुत जागरूक है और इसलिए उन्हें इस बात का एहसास होना ज़रूरी है आज के समय के लिए सबसे ज़्यादा ज़रूरी क्या है। उद्घाटन सत्र के दूसरे मुख्य वक्ता वरिष्ठ अभिनेता और मनोचिकित्सक डॉ. मोहन आगाशे ने फ़िल्मों की महत्ता पर बात करते हुए कहा कि यह मनोरंजन और जीवन को सीखने की प्रक्रिया का सबसे अच्छा माध्यम है। सिनेमाई भाषा के बारे में बात करते हुए आगाशे ने कहा कि उसे लगातार सीखने की ज़रूरत है जिसके लिए यह फ़िल्मोत्सव अच्छा मौक़ा हो सकता है। फ़िल्मोत्सव के निदेशक सुदीप सोहनी ने आयोजन की रुपरेखा स्पष्ट करते हुए इसे नए फ़िल्मकारों के पक्ष में एक महत्वपूर्ण मंच बताया। कार्यक्रम के अंत में विश्वरंग के सह-निदेशक सिद्धार्थ चतुर्वेदी ने सभी अतिथियों और दर्शकों का स्वागत किया और बताया कि VIFF 2020 मुख्य रूप से युवा प्रतिभा को मंच देने और फ़िल्म जैसे वैश्विक माध्यम का जश्न मनाने के उद्देश्य से आयोजित किया जा रहा है। कार्यक्रम का संचालन और संयोजन टैगोर विश्व कला और संस्कृति केंद्र के निदेशक विनय उपाध्याय ने किया।

## 'शहरयार' और 'पद्मा सचदेव'

विश्वरंग फ़िल्म महोत्सव का दूसरा दिन अमित मलिक के वायोलिन वादन से शुरु हुआ। वायोलिन वादन के बाद उमा वासुदेव द्वारा निर्देशित फ़िल्म 'पद्मा सचदेव' का प्रदर्शन हुआ। यह फ़िल्म आधुनिक डोगरी कविताओं पर आधारित है। इसके बाद आबिद सिद्दिकी के निर्देशन में बनी 'शहरयार' फ़िल्म का प्रदर्शन हुआ। यह फ़िल्म उर्दू अदब के नामचीन हस्ताक्षर ए.के.एम. शहरयार के जीवन पर आधारित है। फ़िल्म फेस्टिवल में दूसरे दिन साइंस फ़िल्म 'नागालैंड इज़ चेंजिंग' का प्रदर्शन भी किया गया। फ़िल्म का निर्देशन गुरमीत सपाल ने किया है, जिसमें नागालैंड के स्थानीय लोगों और जंगलों के बीच के रिश्ते को समझाने की कोशिश की गई है। इस दौरान कई शॉर्ट फ़िल्मों का प्रदर्शन भी किया गया। फ़िल्म 'जरी वाला आसमान' का निर्देशन आसिफ मोयल ने किया था। यह फ़िल्म एक गरीब मुस्लिम मजदूर के जीवन पर आधारित है। इसके बाद 'एंटी हीरो' फ़िल्म की प्रस्तुति हुई। इस शॉर्ट फ़िल्म में एक चींटी और एंटीलियन लार्वा की कहानी दिखाई गई है। फ़िल्म का निर्देशन सिद्धू दास ने किया है। आखिरी शॉर्ट फ़िल्म 'रुखसाना' रही, जिसका निर्देशन मोहम्मद जॉर्जिस ने किया है। फ़िल्म में रुखसाना नाम की एक लड़की की कहानी दिखाई गई है, जो अपने कॉलेज की परीक्षा देकर जीवन में आगे बढ़ना चाहती है। कार्यक्रम के अंत में विशेष रूप से आमंत्रित फ़िल्म 'पेंटिंग लाइफ' का प्रदर्शन हुआ। 2018 में बनी इस फ़िल्म का निर्देशन डॉ. बीजू ने किया है। अंत में कुर्दिश फ़िल्म 'जेर' के निर्देशक काजिम ओज के साथ सुदीप सोहनी ने मुलाकात की। 'जेर' एक गाने की कहानी है, जिसमें फ़िल्म के नायक की दादी की यादें और पहचान छिपी हुई है। फ़िल्म के नायक जेन को उसकी दादी मरने से पहले एक गीत सुनाती हैं। गीत में नरसंहार से जुड़ी यादें और दादी का अतीत छिपा हुआ है।

## यादें-बातें : बीजू कुमार और आशुतोष राणा

दिन के अंत में मास्टर क्लास कार्यक्रम में युवा लेखक और फ़िल्म निर्देशक मोहित प्रियदर्शी ने जाने माने मलयालम फ़िल्म निर्देशक डॉ. बीजूकुमार दामोदरन के साथ बातचीत की। इस दौरान उन्होंने बताया कि कैसे एक स्वतंत्र फ़िल्म निर्देशक ज़्यादा खुलकर बेहतर तरीके से फ़िल्म का निर्माण कर सकता है। अभिनेता आशुतोष राणा भी संवाद में शामिल हुए। उन्होंने अपनी पहली व्यंग्य कृति 'मौन मुस्कान की मार' की रचना प्रक्रिया पर अपने विचार व्यक्त किए।

तीसरे दिन की शुरुआत लिटिल बैलेट ट्रूप की नृत्य-नाटिका 'रामायण' से हुई। साहित्यिक अंग्रेजी फ़िल्म 'रस्किन बॉन्ड' का प्रदर्शन हुआ। रस्किन बॉन्ड डॉक्यूमेंट्री प्रसिद्ध अंग्रेज़ी लेखक रस्किन बॉन्ड पर आधारित है। रस्किन बॉन्ड बच्चों को लेकर अपनी कहानियों के लिए जाने जाते हैं। उन्होंने महज 13 साल की उम्र में लेखन शुरू कर दिया था। इस फ़िल्म का निर्देशन ऑबिद सिद्दिकी ने किया है। अगली फ़िल्म शीन काफ़ निज़ाम रही, जिसका निर्देशन लीलाधर मंडलोई ने किया है। यह फ़िल्म उर्दू शायर शीन काफ़ निज़ाम और उनके जीवन पर आधारित है। इसके बाद साइंस फ़िल्म का प्रदर्शन किया गया। भारत की पहली डॉक्यू ड्रामा फ़िल्म 'द इंगिमा ऑफ श्रीरामानुजन' इस कार्यक्रम का हिस्सा बनी। फ़िल्म का निर्देशन राष्ट्रीय पुरस्कार विजेता डायरेक्टर नंदन कुदयादी ने किया है। टॉम आल्टर और रघुवीर यादव ने इस फ़िल्म में अभिनय किया है। अगले सत्र में फ़िल्म लेखक रशीद अंजुम से बद्र वास्ती ने बातचीत की। कार्यक्रम में आगे शॉर्ट फ़िल्मों का प्रदर्शन किया गया। पहली शॉर्ट फ़िल्म 'विनसेट बिफोर नून' का निर्देशन फ्रेंच फ़िल्ममेकर गुलाम मैंगट ने किया। इस फ़िल्म में एक पिता और उसके पुत्र के बीच के उलझे हुए रिश्ते को समझाया गया है। दूसरी शॉर्ट फ़िल्म थी गोंड आर्ट। इस फ़िल्म का निर्देशन प्रांजल जोशी और अनुष्का अग्रवाल ने किया है।

## 'विनसेट बिफोर नून'

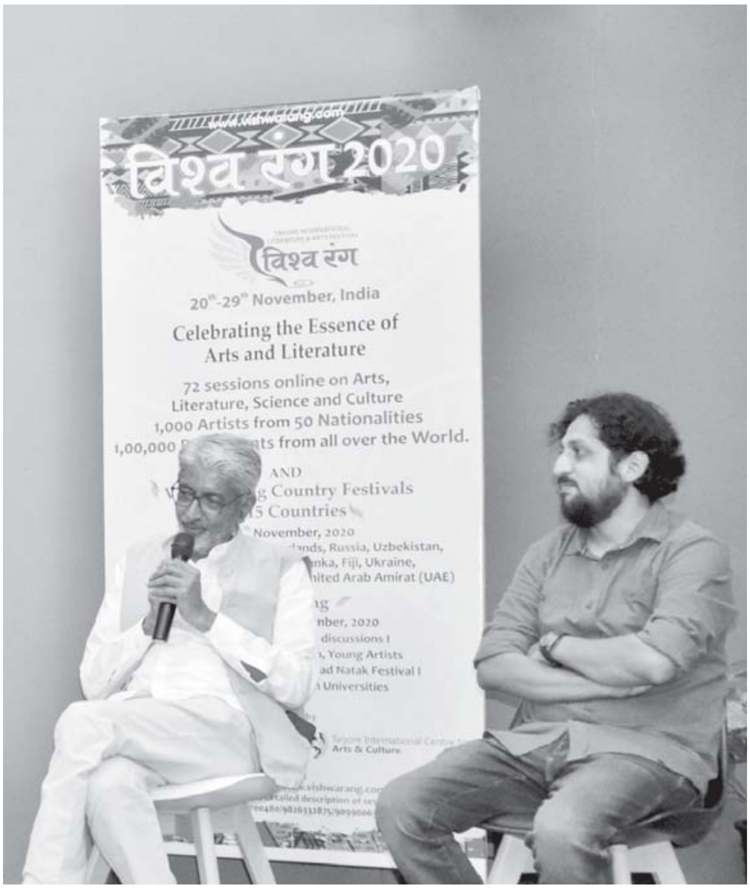


पुरस्कृत फिल्मकार राजेन्द्र जांगले और फ़िल्म समारोह के निदेशक सुदीप सोहनी

शॉर्ट फ़िल्म 'पिराना' कबाड़ और कचरे से बेज़ार हमारी दुनिया की हक़ीक़त को सामने रखती है। मास्टर क्लास कार्यक्रम में पूबाली चौधरी और अतिका चौहान के साथ गौरव पतकी ने बातचीत की। इस दौरान रॉक ऑन और काय पो चे जैसी फ़िल्मों में काम करने वाली पूबाली चौधरी और वेटिंग तथा छपाक जैसी फ़िल्मों में काम करने वाली अतिका चौहान ने युवा स्क्रिप्ट लेखक गौरव पतकी को बताया कि ड्रामा और ग्लैमर फ़िल्मों की बजाय वास्तविक सिनेमा के प्रति लोग जागरुक हो रहे हैं। अचल मिश्रा द्वारा निर्देशित मैथिली फ़िल्म 'गमक घर' दिन की आखिरी फ़िल्म रही। इस फ़िल्म में जिंदगी के अलग-अलग पड़ावों को दिखाया गया है।

## साहित्य और सिनेमा पर संवाद

प्रतिबंब कार्यक्रम में साहित्य व सिनेमा पर बातचीत हुई। आबिद सुरती, ज्योति कपूर, अनिल चौबे और जयंत देशमुख इस कार्यक्रम का हिस्सा बने। कार्यक्रम के दौरान जयंत देशमुख ने साहित्य सिनेमा और कला के संबंध को समझाया। उन्होंने कहा कि साहित्य नहीं होगा तो हम कुछ नहीं कर सकते हैं। साहित्य के बाद कला के जरिए हम सिनेमा का निर्माण करते हैं। इसके बाद ज्योति कपूर ने भी जयंत का समर्थन करते हुए कहा कि कला का सबसे मूल रूप साहित्य ही होता है। इसके बाद आबिद सूरती ने कहा कि कहानी के रूप में कुछ भी लिखा जा सकता है, पर उसे पर्दे में उतारना अलग कला होती है। कला समीक्षक विनय उपाध्याय ने विषय से जुड़े महत्वपूर्ण सवाल उठाते हुए सिनेमा के व्यावसायिक आग्रह की ओर इशारा किया। युवा सिनेकर्मी सुदीप सोहनी ने संचालन किया।

## विश्वरंग में 'गुलज़ार'

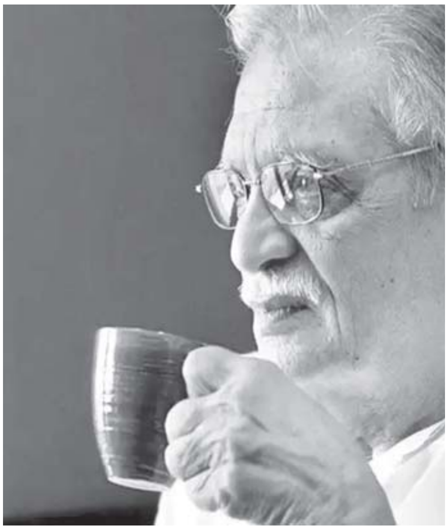

विश्वरंग अंतरराष्ट्रीय फ़िल्म महोत्सव में शामिल फ़िल्मों की श्रृँखला में हमारे समय के मक़बूल शायर, पटकथाकार और निर्देशक गुलज़ार पर बनें चलचित्र को देखना बेशक दर्शकों के लिए दिलचस्प तजुरबा रहा। इस फ़िल्म का निर्माण उनकी बेटी मेघना गुलज़ार ने साहित्य अकादमी दिल्ली के प्रस्ताव पर किया है। छोटे से अंतराल में गुलज़ार के समंदर जैसे दूर तक फैले रचनात्मक संसार और उनकी शख़्सियत के जाने-अनजाने नायाब पहलूओं को देखना एक रोमांचक यात्रा बन जाता है। फ़िल्म के नज़रिए से यह मालूम होता है कि कैसे गुलज़ार ने अकेले अपनी प्रतिभा और पुरूषार्थ के बल पर बॉलीवुड, भारतीय कविता और सिनेमा लेखन की पूरी दुनिया को नए रंगों में ढाल दिया। गुलज़ार को मिले देश और दुनिया के अनेक सम्मान हासिल है, लेकिन कलम और केमरे के साथ उनका सफ़र आज भी बदस्तूर जारी है। फ़िल्म प्रदर्शन से पहले श्रुति अधिकारी का संदूर वादन हुआ।

## विजेता फ़िल्मकारों की शिरकत

VIFF 2020 का हिस्सा बने विजेता फ़िल्मकारों से उनके सिनेमाई अनुभवों पर बातचीत के भी सत्र हुए। इस दौरान उनकी चुनिंदा फ़िल्मों के प्रदर्शन भी किए गए। साइंस फ़िल्म 'सेमकॉल, द स्कूल ऑफ नॉरफेल' में भारत के लद्दाख में शैक्षिक क्रांति लाने वाले सोनम वांगचुके के जीवन और उनकी यात्रा के बारे में बताया गया है। फ़िल्म का निर्देशन डॉ. शाहिद रसूल और शफकत हबीब ने किया है। समापन समारोह में जीतने वाली फ़िल्मों के निर्देशकों का सम्मान हुआ और उनसे बातचीत की गई। वरिष्ठ कवि-कथाकार, रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के कुलाधिपति एवं विश्वरंग के निदेशक संतोष चौबे और सहनिदेशक सिद्धार्थ चतुर्वेदी आईसेक्ट के निदेशक नितिन वत्स ने विजेता फ़िल्मों के निर्देशकों का सम्मान किया और फ़िल्म के बारे में उनसे बातचीत की। नैनिशा डेढिया द्वारा निर्देशित भारतीय फ़िल्म 'पिराना' ने सम्मान समारोह में पहला पुरस्कार जीता, जबकि पंडेली चेचो की 'द व्हाइट शीट्स' को दूसरा और सेराल मुर्मू की 'सोंधायनी' फ़िल्म को तीसरा पुरस्कार मिला। जाने माने सिनेमैटोग्राफर, डायरेक्टर और पाँच बार राष्ट्रीय फ़िल्म पुरस्कार जीतने वाले फ़िल्ममेकर राजेन्द्र जांगले ज्यूरी के चेयरमैन थे। उनके अलावा फ़िल्म फेस्टिवल के क्यूरेटर, फ़िल्म प्रोग्रामर और इंडी सिनेमा के प्रमोटर मौली सिंह, धर्मा प्रोडक्शन की क्रिएटिव एग्जक्यूटिव श्रेया भट्टाचार्य, वरिष्ठ कला समीक्षक और टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र के निदेशक विनय उपाध्याय, विश्वरंग अंतर्राष्ट्रीय फ़िल्मोत्सव के निदेशक सुदीप सोहनी, नेशनल अवॉर्ड जीतने वाले डायरेक्टर दिनेश यादव और फ़िल्ममेकर अशोक कुमार मीणा भी जूरी का हिस्सा थे।

शॉर्ट फ़िल्म 'प्रश्न' एक प्रवासी मजदूर परिवार की कहानी है, जिसका निर्देशन संतोष राम ने किया है। फ़िल्म 'द व्हाइस शीट्स' पेंटर आर्किटेक्ट और लेखक मास्क वेलो के उपन्यास पर आधारित है। यह फ़िल्म वेलो के समय में सामाजिक और राजनीतिक बदलावों के बीच उनके जीवन की परेशानियों को दर्शाती है। फ़िल्म का निर्देशन पंडेली चेचो ने किया है।

तीसरी और आखिरी शॉर्ट फ़िल्म 'बाय द विंडो' का निर्देशन मधुरा डालिंबकर ने किया है। यह फ़िल्म समाज में महिलाओं के सुरक्षित और सौहार्दपूर्ण माहौल बनाने पर ज़ोर देती है। मास्टर क्लास कार्यक्रम में फ़िल्ममेकर और संग्रहकर्ता शिवेन्द्र सिंह डूंगरपुर शामिल हुए। फ़िल्म निर्माता, लेखक और डायरेक्टर सुदीप सोहनी ने 'सिनेमा की विरासत के संरक्षण की आवश्यकता' विषय पर उनके साथ बातचीत की। विशेष रूप से आमंत्रित फ़िल्म 'द इम्मोर्टल्स' का प्रदर्शन हुआ। जिससे हमें यह एहसास होता है कि इतने सालों में भारतीय सिनेमा क्या कु छ हासिल करके खो चुका है। फ़िल्म उन सभी चीज़ों और घटनाओं की यादें फिर से ताज़ा कर देती है।

फ़िल्मोत्सव के विभिन्न सत्रों का संचालन विनय उपाध्याय, शरबानी बॅनर्जी, सुदीप सोहनी, ज्योति दुबे और मौलश्री सक्सेना ने किया। तकनीकी समन्वय अशोक, रमेश विश्वकर्मा, प्रशांत सोनी, रोहित श्रीवास्तव, अमीन उद्दीन शेख, विभोर उपाध्याय, विशाखा राजुरकर, केतन श्रोत्रिय आदि का रहा।

# ... और चहक उठा बचपन!

## विश्वरंग 2020 में नौनिहालों का बहुरंगी पिटारा

देश के प्रसिद्ध पैरेंटिंग यू-ट्यूब चैनल गेट सेट पैरेंट विद पल्लवी द्वारा पहला बाल साहित्य, कला और संगीत महोत्सव 22 से 29 नवंबर के दरमियाँ किया गया। कोविड-19 महामारी के कारण यह आयोजन गेट सेट पैरेंट विद पल्लवी यू-ट्यूब चैनल पर प्रतिदिन 2 घंटे ऑनलाईन किया गया। इस निःशुल्क आयोजन में स्कूल के बच्चों को भागीदारी करने का मौका मिला।

### रस्किन बॉन्ड ने सुनाई लाइफ स्टोरी

शुभारंभ बाल साहित्य जगत के उत्कृष्ट अंग्रेजी लेखक रस्किन बॉन्ड के साथ संवाद से शुरु हुआ। उनके साथ पल्लवी राव चतुर्वेदी (संस्थापक गेट सेट पैरेंट विद पल्लवी) ने बातचीत की। उन्होंने बताया कि मैने वयस्कों के लिये लिखते हुए अपने करियर की शुरुआत की। 40 के पड़ाव पर पहुँचने के बाद उन्होंने बच्चों के लिये लिखना शुरु किया। उनकी किताब 'हाउ टू बी ए राईटर' बच्चों के लिये काफी उपयोगी है। बच्चों के लिए अमेरिका के कैलिफोर्निया के पपेट आर्ट्स थिएटर कंपनी द्वारा पपेट शो का आयोजन किया गया। इस पपेट शो में रोचक अंदाज़ में ड्रैगन की पूँछ की अनूठी कहानियों को प्रस्तुत किया गया जिन्होंने बच्चों को मोहा।

### पपेट वर्कशॉप

महोत्सव के दूसरे दिन की शुरुआत फ्रेंच पेंटिंग वर्कशॉप के साथ हुई। यह वर्कशॉप क्लॉड मोनेट की चित्रकारी पर आधारित थी। वर्कशाप की शुरुआत में डॉ. पल्लवी और आकांक्षा गोयनका ने क्लॉड मोनेट की तकनीक, काम, स्टाईल और उनके जीवन पर बात की। वर्कशॉप के दौरान आकांक्षा ने बताया कि मोनेट को बच्चों से खास लगाव था और वो बच्चों के ऊपर पेंटिंग करना पसंद करते थे। उन्हें प्रकृति से लगाव था। मौसम के साथ आने वाले प्राकृतिक बदलाव उनको आकर्षित करते थे। इस दौरान उन्होंने बच्चों को पेंटिंग करने के कई आसान तरीके भी बताये। वहीं स्टोरी टेलिंग कार्यक्रम में जानकी सबेश और प्रिया नारायण शामिल हुई। प्रिया नारायण ने भारत के महान गणितज्ञ रामानुजन के ऊपर लिखी पुस्तक ''द फ्रेंड ऑफ नंबर्स'' किताब से जुड़ी यादें साझा कीं।

तीसरे दिन की शुरुआत आर्ट्स वर्कशॉप के साथ हुई। पल्लवी ने इस सत्र में सलोमी पारिख के साथ बातचीत की। वर्कशॉप की शुरुआत में सलोमी पारिख ने वर्ली आर्ट के बारे में बताया। वर्ली आर्ट एक ट्राईबल आर्ट है जिसका उदय मुख्य रुप से महाराष्ट्र में हुआ। इस पेंटिंग को बनाने के लिये पहले कई गोले,

'हाउ टू बी ए राईटर' के लेखक रस्किन बॉण्ड से पल्लवी राव चतुर्वेदी की वार्ता

आयत और वर्गाकार आकृतियां बनाई जाती हैं जिनके माध्यम से आदिवासियों के आम जीवन को दर्शाया जाता है। वहीं स्टोरी टेलिंग सेशन अमर चित्र कथा स्टोरी एकेडमी के मुखिया प्रतीक धुर्वे ने कई रोचक कहानियां सुनाई। इस सत्र में उन्होंने दो कहानियां सुनाई, पहली कहानी में बंदर और जंगल के जीवों की कहानी थी। दूसरी कहानी कृष्णा व कालिया नाग के बारे में थी। उन्होंने कहानी के बाद उससे जुड़े सवाल भी पूछे। चौथे दिन गीता रामानुजम ने एक दुष्ट राक्षस की कहानी के साथ अपनी स्टोरी टेलिंग शुरु की। उन्होंने इंगा नामक आलसी लड़की की कहानी सुनाई। उन्होंने एक पेंटर की कहानी भी सुनाई। जिसने अपने नज़रिये से सभी के जीवन में रंग भर दिये। केरल के जाने माने कठपुतली कलाकार राजीव पुलवर का कठपुतली शो देखकर बच्चे रोमांचित हुए। उन्होंने बच्चों को भी सिखाया कि कैसे आसानी से हम पपेट बना सकते हैं।

## जापानी लोक कथाएँ

पाँचवे दिन गीता रामानुजम ने बच्चों को जापानी लोककथाएँ सुनाई। इसके बाद डॉ. पल्लवीराव ने अमर चित्रकथा पत्रिका की सी.ई.ओ. प्रीति व्यास से बातचीत की। रामचंद पुलावर ने अपने शैडो पपेट शो के जरिये रामायण की कहानी सुनाई। उन्होंने अपनी कहानियों से बच्चों का मनोरंजन किया और उन्हें जीवन में काम आने वाली सीख भी दी। आखिरी सत्र में थिएटर वर्कशॉप में शिक्षा के महत्व पर चर्चा हुई। यह सत्र बच्चों से ज्यादा उनके माता-पिता के लिये ज़रुरी था, जिसमें उन्हें कई रोचक बातें जानने को मिलीं। छठवाँ दिन सलोनी पारिख की आर्ट वर्कशाप के साथ शुरु हुआ। आर्ट वर्कशॉप पर आधारित इस कार्यक्रम में मधुबनी आर्ट के बारे में बताया। टिंकल कॉमिक वर्कशाप का भी आयोजन किया गया। अमर चित्रकथा पत्रिका के आर्ट डायरेक्टर सैवियो मस्करनेहस ने इस कार्यक्रम में बच्चों को टिंकल टून सुपांडी बनाने का तरीका सिखाया। सातवाँ दिन अकांक्षा गोयनका की आर्ट वर्कशाप के साथ शुरु हुआ। उन्होंने इस सत्र में गोंड आर्ट पर चर्चा की और बच्चों को गोंड आर्ट बनाना भी सिखाया। पल्लवीराव ने जानी मानी पुस्तक गजपति कुलपति के लेखक अशोक राजगोपालन से बातचीत की। आखिरी सत्र में डॉ. पल्लवीराव चतुर्वेदी ने नंदिनी नायर के साथ बातचीत की।

समापन अवसर पर रोहनी नीलकणी ने बच्चों को कहानी सुनाई। बाहुबली सीरिज और असुर कहानियों के लेखक आनंद नीलकांतन के साथ पल्लवीराव का संवाद हुआ। उन्होंने बहुत मजेदार अंदाज़ में ख़ुद को असुर कहते हुए वार्तालाप की शुरुआत की। कार्यक्रम में उन्होंने अपनी असुर कहानी सुनाकर मनोरंजन किया। बाल साहित्य, कला और संगीत के आखिरी सत्र में शिलांग चैंबर कॉयर बैंड ने बालीवुड और क्षेत्रीय गानों का अनोखा मेल प्रस्तुत किया। इसी के साथ बाल साहित्य, कला और संगीत महोत्सव का समापन हुआ।

**रिपोर्ताज : विनय उपाध्याय, संजय सिंह राठौर, समीर चौधरी, सुदीप सोहनी, विशाखा राजुरकर**

उद्गार

# अनूठी उत्सवी यात्रा

**जवाहर कर्नावट**

विश्वरंग 2019 को यादें मन में बसी हुई थीं और फिर से ऐसे विलक्षण वैश्विक आयोजन के साक्षी बनने की बेसब्री से प्रतीक्षा थी। आखिर क्यों भुलाए नहीं भुलाया जा रहा था ऐसा अदभुत आयोजन। कारण बहुत साफ़ था– पिछले दो दशकों में देश–विदेश में अनेक वैश्विक सम्मेलनों में भागीदारी का मुझे अवसर मिला किन्तु मानसिक तृप्ति नहीं। ये सम्मेलन या तो सरकारी आयोजन के रुप में थे या फिर स्वैच्छिक सेवा–संस्थाओं द्वारा इनका आयोजन आधे–अधूरे मन से हुआ था। वैश्विक आयोजनों में साधनों से अधिक महत्वपूर्ण होती है दिव्य दृष्टि। विश्वरंग 2019 के आयोजन में इस दिव्य दृष्टि से ही ऐसी इबारत लिखी गई जो इतिहास के पन्नों पर अमिट रुप से दर्ज़ हो गई।

वर्ष 2019 में मुम्बई में निवास करते हुए यह कल्पना भी नहीं थी कि विश्वरंग के आयोजन में शामिल हो सकूँगा। जुलाई 2019 में हिन्दी भवन में आयोजित पावस व्याख्यानमाला में हिस्सेदारी के लिए भोपाल पहुँचा था। इस व्याख्यानमाला का एक आकर्षण संतोष चौबे का उद्बोधन भी था। चौबे जी जब भी मिलते हैं तो उनकी सहजता, सरलता और आत्मीयता प्रफुल्लित कर देती है। उनका व्याख्यान पूरा होते ही विश्वरंग के बारे में चर्चा हुई और उन्होंने विदेशों से प्रकाशित हिन्दी पत्रिकाओं और समाचार पत्रों के मेरे संग्रह की प्रदर्शनी विश्वरंग में आयोजित करने का निमंत्रण दे डाला।

विश्वरंग का भव्य उद्घाटन 4 नवम्बर 2019 को राज्यपाल महोदय के उद्बोधन के साथ रवीन्द्र भवन में हुआ तो अगला पड़ाव 5–6 नवम्बर को भारत भवन में रहा और 7 नवम्बर को मिंटो हाल में विश्वरंग का चमत्कारिक रंग दिखाई दिया। हिन्दी और भारतीय भाषाओं के आयोजन की इतनी शालीन और सुसंस्कृत भव्यता चकित कर देने वाली थी। एक विश्वविद्यालय द्वारा भाषा, साहित्य, कला, संगीत, लोककला, रुपंकर कलाओं, बोलियों और भाषा–प्रौद्योगिकी पर व्यापक स्तर पर गंभीर विमर्श का आयोजन मेरे लिए कल्पना से परे था। प्राचीन और अर्वाचीन वाद्यों की संगीत लहरियों ने और लोक नृत्य की प्रस्तुतियां ने भी श्रोताओं को भाव विभोर कर दिया। इस आयोजन में शामिल हुए मेरे अनेक विदेश मित्र भी अभिभूत थे। इससे पूर्व 2015 में भोपाल में विश्व हिन्दी सम्मेलन में भारत और अन्य देशों के प्रतिनिधि शामिल हुए थे किन्तु उनका कहना था– ''विश्वरंग ने तो हमें ऐसा सम्मोहित कर लिया है कि भोपाल से वापसी का मन नहीं हो रहा।'' इस आयोजन की व्यवस्थाओं से हर प्रतिनिधि विस्मित था।

वैश्विक स्तर पर आयोजित इस वृहत् साहित्यिक एवं सांस्कृतिक आयोजन की अकादमिक श्रेष्ठता के साथ सुव्यवस्था, कार्यकर्ताओं की शालीनता, सौम्यता और सद्व्यवहार ने देश-विदेश के प्रतिनिधियों पर अमिट मधुर छाप छोड़ी। मैं पुन: देश-विदेश के कई अन्तरराष्ट्रीय आयोजनों में अपनी भागीदारी को याद करता हूँ, जहां श्रोताओं की संख्या सैकड़ा भी पार नहीं कर पाती। किन्तु विश्वरंग का रिकॉर्ड दर्शाता है कि करीब 15 हजार लोगों ने इस महोत्सव में शामिल होने के लिए ऑनलाइन रजिस्ट्रेशन करवाया और प्रतिदिन लगभग 5 हजार लोग विभिन्न अकादमिक सत्रों, मंचीय कार्यक्रमों तथा प्रदर्शनियों में आते रहे। भारत सहित 25 से अधिक देशों के 500 से अधिक ख्यातनाम रचनाकारों और कलाकारों ने इस महोत्सव में अत्यन्त उत्साह के साथ भागीदारी की।

विश्वरंग की अत्यन्त महत्वपूर्ण उपलब्धि रही- देश के 200 वर्षों के कथा-साहित्य को समाविष्ट करते हुए 18 खंडों में 'कथादेश' का लोकार्पण। साथ ही हिन्दी के 40 चयनित कथाकारों की कथाओं का अंग्रेज़ी अनुवाद ''अ जर्नी इन टाईम, गोल्डन ट्रेज़री'' भी दो खण्डों में लोकार्पित हुआ। थर्ड जेंडर कविताओं के सत्र ने तो नया कीर्तिमान रच दिया। गांधी, टैगोर, फैज़ और इक़बाल पर महत्वपूर्ण व्याख्यानों ने विश्वरंग को यादगार बना दिया। ऐसे विश्वस्तरीय आयोजनों में सामान्यत: स्थानीय संस्थाओं और विद्यार्थियों को भुला दिया जाता है परन्तु विश्वरंग इसका अपवाद रहा। भोपाल की 50 से अधिक साहित्यिक संस्थाओं और लगभग 3 हज़ार छात्र-छात्राओं ने भी इस महोत्सव की गतिविधियों को देखा। चीन के 20 छात्रों का विशेष अध्ययन दल भी विश्वरंग का विशेष आकर्षण रहा। इस दल ने सभी लेखकों-कलाकारों से मिलकर उनसे सार्थक संवाद भी किया।

सम्पूर्ण आयोजन के संयोजन-संचालन की कसावट ने भी नए उच्च मानक स्थापित किए। विनय उपाध्याय के अति प्रभावी, सधे हुए, कर्णप्रिय संचालन ने श्रोताओं को लगातार बांधे रखा। इस प्रकार 2019 के विश्वरंग के माध्यम से टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल को वैश्विक साहित्यिक एवं सांस्कृतिक नेटवर्क तैयार करने का श्रेय प्राप्त हुआ।

वर्ष 2020 का तीसरा माह समाप्त होते-होते कोरोना महामारी ने सम्पूर्ण विश्व को अपनी चपेट में ले लिया था। छह माह बीतने के बाद भी इस महामारी के बादल छंटने का नाम नहीं ले रहे थे। मन में यह प्रश्न लगातार कौंध रहा था कि क्या विश्वरंग का आयोजन सम्भव हो पाएगा? यदि हुआ भी तो इस विश्वव्यापी विपदा में 2019 के विश्वरंग के प्रतिमान पुन: स्थापित हो पाएंगे? परिस्थिति तो ऐसी ही बनी हुई थी कि विश्वरंग 2020 का आयोजन खटाई में पड़ जाए, किन्तु इसी बीच सितम्बर 20 के पहले सप्ताह में विश्वरंग के निदेशक और दिव्य दृष्टा संतोष चौबे से चर्चा हुई कि 2020 का विश्वरंग वर्चुअल प्लेटफार्म पर होगा और पहले से ज्यादा व्यापक स्तर पर। तब लगा था कि 2020 का विश्वरंग देश विदेश के 100-200 लोगों के साथ ऑनलाइन कार्यक्रम तक सिमट जाएगा। किन्तु 2020 के विश्वरंग ने कोरोना को मात देकर ऐसी छलांग लगाई कि 16 देश इसके आयोजक बने और 50 से अधिक देशों में इसे देखा गया। वर्चुअल माध्यम से विश्वरंग का रंग 2019 से भी अधिक चटकदार रहा। पूर्व रंग में लगातार एक माह से अधिक अवधि तक तीन वर्ष की मेहनत

वैश्विक स्तर पर आयोजित इस वृहत् साहित्यिक एवं सांस्कृतिक आयोजन की अकादमिक श्रेष्ठता के साथ सुव्यवस्था, कार्यकर्ताओं की शालीनता, सौम्यता और सद्व्यवहार ने देश-विदेश के प्रतिनिधियों पर अमिट मधुर छाप छोड़ी। मैं पुन: देश-विदेश के कई अन्तरराष्ट्रीय आयोजनों में अपनी भागीदारी को याद करता हूँ, जहां श्रोताओं की संख्या सैकड़ा भी पार नहीं कर पाती। भारत सहित 25 से अधिक देशों के 500 से अधिक ख्यातनाम रचनाकारों और कलाकारों तथा लाखों रसिकों ने इस महोत्सव में अत्यन्त उत्साह के साथ भागीदारी की।

से तैयार किए गए कथादेश के 18 खण्डों पर चर्चाओं का आयोजन, युवा कलाकारों की राष्ट्रीय प्रदर्शनी, लघुफ़िल्म प्रतियोगिता, नुक्कड़ नाटकों का प्रदर्शन आदि द्वारा 15 देशों की कला और संस्कृतियों की झलक ने विश्वरंग में एक नया अध्याय जोड़ा।

छह से आठ नवम्बर तक विश्वरंग के मुख्यालय भोपाल से अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन, नीदरलैण्ड, रुस, उजबेकिस्तान सिंगापुर, आस्ट्रेलिया, श्रीलंका, फीजी युक्रेन, कजाकिस्तान स्वीडन, त्रिनिनाद एवं टोबगो और यूएई के साहित्यकारों एवं कलाकारों को जोड़ पाना अत्यन्त चुनौतीपूर्ण था किन्तु 2019 के विश्वरंग में प्रतिनिधित्व करने वाले इन देशों के प्रतिनिधियों ने आयोजक का दायित्व बखूबी संभाला। सिंगापुर, अमेरिका, नीदरलैंड, आस्ट्रेलिया, कनाडा, ब्रिटेन की प्रस्तुतियों ने तो इन देशों में भारतीय संस्कृति और भाषा की जीवंतता को मंच पर साकार कर दिया। सोशल मीडिया के माध्यम से इन देशों की प्रस्तुतियों को अन्य देशों के प्रेक्षक भी मिले और सराहना भी। हर देश के आयोजन में भारतीय संस्कृति के विविध पक्षों की मनोहारी झांकी के साथ ही उस देश के बारे में जानना भी अत्यन्त रुचिकर था। सभी प्रस्तुतियाँ अत्यंत प्रभावी और गुणवत्तापूर्ण थी।

विश्वरंग के मुख्य आयोजन (20 से 29 नवम्बर 2020) ने यह सिद्ध कर दिया कि विश्वरंग की यात्रा वास्तव में वैश्विक है। पचास से अधिक देशों के 1000 से अधिक लेखकों और रचनाकारों के विविध विषयों पर वैचारिक आदान–प्रदान ने इस महोत्सव को लाखों लोगों के दिलों तक पहुँचा दिया। लगातार 10 दिन तक 70 से अधिक लेखक एवं रचनाकारों की विविध विषयों पर भागीदारी अविस्मरणीय रही। लघु फ़िल्म उत्सव और बाल साहित्य उत्सव ने 2020 के विश्वरंग में सभी का ध्यान आकर्षित किया। विश्व कविता कोश एवं विज्ञान कविता कोश के विमोचन से भी इस विश्वरंग की विशेष छवि बनी। इसके अलावा चित्र प्रदर्शनी, पुस्तक विमोचन, अन्तरराष्ट्रीय मुशायरा, नाट्य समारोह देश के शीर्ष लेखकों से मुलाकात ने भी विश्वरंग को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया। प्रवासी भारतीय साहित्य तथा संगीत के लोकप्रिय बैंड्स भी आकर्षण के केन्द्र बने। विश्वरंग 2020 में 50 से अधिक पुस्तकों का विमोचन किया गया। चित्रकला प्रदर्शनी हेतु 1000 से अधिक पेंटिंग प्राप्त होना इसकी भारी लोकप्रियता को दर्शाता है। इस वैश्विक आयोजन की एक सौगात मुझे भी मिली– विदेश की हिंदी पत्रकारिता पर मेरे शोध कार्य पर डाक्यूमेंट्री फ़िल्म का निर्माण।

एक छोटे से शहर (भोपाल) में आयोजित कार्यक्रम (विश्वरंग) का एक ही वर्ष में 50 से अधिक देशों तक पहुँच जाना एक चमत्कार जैसा लगता है किन्तु इस चमत्कार के पीछे रही एक दिव्य दृष्टि और सोची–समझी रणनीति संतोष चौबे और उनकी सम्पूर्ण टीम की। कोरोना की चुनौतियों के बीच वैश्विक स्तर पर हिन्दी और भारतीय भाषाओं के इतने व्यापक वैचारिक और सुव्यवस्थित आयोजन ने एक नया इतिहास रच दिया है। विश्वरंग 2020 के आयोजन से हिन्दी और भारतीय भाषाओं का वैश्विक नेटवर्क अत्यन्त समृद्ध हुआ है और भविष्य में इसके विस्तार की अनन्त संभावनाएँ है। विश्वरंग की यह यात्रा अविराम गति से बढती रहे यह मंगलकामना केवल मेरी नहीं, अपितु आयोजन को दिल में बसाए लाखों प्रशंसकों की भी है।

साक्षात्कार

# बहुआयामी होना ही मेरी ताक़त

''कुछ बीज जाने कैसे होते हैं कि एक बार जमीं में रोप दिए जाएँ तो चाहे कैसी भी आंधियाँ आएँ, सूखा पड़े, पत्ते झड़ जाएँ, टहनियाँ टूट जाएँ पर बीज अपनी जड़ से नहीं उखड़ते। शब्दों के बीज भी ऐसे ही होते हैं। बचपन में ज़मीन पकड़ ले, तो कभी नष्ट नहीं होते।''

अमृता प्रीतम का 'रसीदी टिकिट' में कहा ज़िंदगी का यह सच कई क़िरदारों की ज़िंदगियों में बोलता है। मिसाल अतुल तिवारी की लें तो रंगमंच और कविता से लेकर कला के मुख़्तलिफ़ पहलुओं को उनकी शख़्सियत रोशन करती रही है।

यूँ अतुल का नाम और चेहरा बहुत जाना पहचाना है। इस काबिलियत के पीछे घर-परिवार से मिले संस्कारों के अलावा निजी संघर्ष और साधना का तप भी है। ''बस, चलते चले जाना है'' की कसक पर अतुल का कारवाँ बदस्तूर जारी रहा। ...नाम, ईनाम, शोहरत सब अपनी तरह वक़्त के साथ हासिल बनते गये। 'रंग संवाद' के इन पृष्ठों पर आइये सुनते हैं एक फ़नकार के कुछ दिलचस्प अफ़साने।

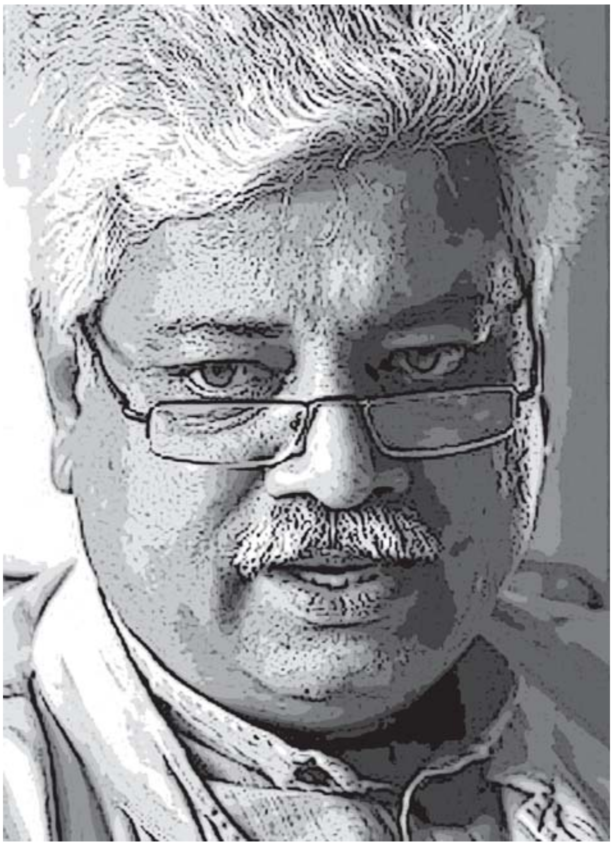

**रंगकर्मी-लेखक अतुल तिवारी से निर्मला डोसी की लंबी बातचीत**

**बात जन्म और परिवार से ही शुरू करें अतुल जी!**

– मेरा जन्म लखनऊ के डॉक्टर के परिवार में हुआ। दादा होम्योपैथी के डॉक्टर थे। पिताजी ने भी होम्योपैथी पढ़ी थी पर प्रैक्टिस नहीं की। माँ डॉक्टर थी और माँ की दो बहनें भी डॉक्टर। मेरे बहन–बहनोई भी डॉक्टर हैं।

**आपने कहा पिताजी ने प्रेक्टिस नहीं की। इसकी वजह?**

– पिताजी कम्युनिस्ट विचारधारा के क्रांतिकारी व्यक्ति थे। वे कम्युनिस्ट पार्टी के लखनऊ के उप सचिव रहे और अपनी पार्टी के लिए पूर्ण समर्पित हो गए।

**आपकी माताजी जानी–मानी डॉक्टर थी लखनऊ की?**

– हां माँ ने शादी से पूर्व ही अपनी डॉक्टरी की पढ़ाई पूरी कर ली थी। शादी के वक्त वे 23 वर्ष की थीं जबकि पिताजी 37 वर्ष के थे। कम्युनिस्ट पार्टी में होने के कारण पिताजी की शादी में देर हुई। हमारी माँ भी तिवारी परिवार से थीं इसलिए सगोत्र में उनकी शादी का भी बहुत विरोध हुआ। उनके तथा पिताजी के परिवार में वैसे दूर–दूर तक कोई संबंध नहीं रहा था कभी। नाना शादी के पक्ष में थे लेकिन उसी वक्त अस्वस्थता की वजह से उन्हें आगरा के मनोचिकित्सा केन्द्र में भर्ती कराना पड़ा। अंततः पिताजी के साथी तथा माँ की दोनों बहनों ने, यह शादी करवाई, जबकि पिता जी का पूरा परिवार इस शादी के विरोध में था।

**काफ़ी कठिन समय रहा होगा वह उनके लिए?**

– बिल्कुल, शादी करके हमारी माँ को पिताजी कम्यून में लाए। कम्यून वह जगह होती है, जहां पार्टी के सभी कार्यकर्ता एक साथ रहते हैं। खर्च व समय की बचत के लिए यह अवधारणा की गई थी, ताकि पार्टी के कार्यों को ज्यादा समय दिया जा सके। प्रत्येक व्यक्ति को चालीस रुपये दैनिक भत्ता मिलता था।

कुछ दिनों बाद चुनाव में कम्युनिस्ट पार्टी को सत्तरह–अट्ठारह सीट मिल गईं और सभी एमएलए सदस्यों को सरकार की तरफ से घर दिया जाता था। उसमें भी एक पेच था कि सबको अपना घर सरेंडर करना होता था फिर सदस्यों व ज़रूरत के हिसाब से पार्टी तय करती थी कि किसे कौन सा घर दिया जाएगा।

**बड़े कठिन नियम थे भाई! घर मिला?**

– हां, हमें एक बड़ा सा घर मिल गया। उसके कमरे की खिड़की से, एक तरफ विधानसभा दिखती थी तो दूसरी तरफ से रेडियो स्टेशन। माँ बताती थी कि मैं उस वक्त बहुत छोटा ही था कि कम्युनिस्ट पार्टी के दो फाड़ हो गए। सीपीएम वाले नेहरु जी के विरोधी थे और सीपीआई वाले नेहरु भक्त। जाहिर है सीपीएम वालों को जेल में डाल दिया गया। पिताजी उस वक्त विजयवाड़ा में थे। वहाँ से मद्रास जेल भेज दिए गए। घरवाले तो इतनी दूर मिलने भी नहीं जा सके। तब तक माँ ने प्रैक्टिस शुरु कर दी थी। मैं जब 1 महीने का था तभी से घर का खाना माँ की प्रैक्टिस से ही चलता था। अब एक नई परेशानी और खड़ी हो गई थी।

**वह क्या?**

– पिताजी जेल में थे और हमें उस घर से सामान सहित सड़क पर फेंक दिया गया, क्योंकि अब पार्टी का विभाजन हो चुका था। उस वक्त माँ गर्भवती भी थीं। उन्होंने घर ढूंढना शुरु किया। जेल गए व्यक्ति के घर वालों को घर मिलना आसान नहीं था। कुछ दिन हम सड़क पर ही रहे। राजनैतिक कैदी के परिवार को आश्रय देने से सब डरते हैं। हालांकि वह देश के लिए जेल गए थे पर इस तथ्य से किसी को कोई मतलब नहीं था। हमारे पास वाले घर में संजीवनलालजी का निवास था जो अब सीपीआई में थे। उन्होंने माँ से आग्रह किया कि वे उनके साथ रहें। माँ नहीं मानी, किंतु वे भी घर के बाहर बैठ गए। कहा कि स्वयं बाहर बैठे रहेंगे जब तक वह बच्चे को लेकर के अंदर नहीं आएंगी। यद्यपि विरोधी पार्टी में चले गए थे पर उन्हें राजनीति में लाने वाले मेरे पिताजी ही थे और इस बात को भूले नहीं थे। तो कुछ लोग ऐसे भी थे। बहरहाल हम कुछ दिन उनके परिवार के साथ रहे लेकिन जल्दी ही माँ ने उसी इलाके में मात्र नौ हजार रूपए में एक छोटी सी जगह ख़रीद ली घर बनवाने के लिए। इस तरह हमारा घर बना।

**तब तक पिताजी भी आ गए होंगे?**

– हां, आ तो गए थे पर उनका जेल जाना–आना लगा रहता था। हम नए घर में चले गए। मेरी बहन का जन्म हो चुका था और मैं चार–पांच वर्ष का हो गया था। माँ का क्लीनिक घर के पास ही था। उनका

ज़्यादा वक्त वही गुज़रता क्योंकि वह ख़ासी लोकप्रिय डॉक्टर थीं। माँ दो रुपए फीस लिया करती और वह भी एक बार एक बीमारी के लिए। उनके सामने 'मुझे कहां छोड़े' यह समस्या थी। उन्होंने मालूम किया कि पास के रेडियो स्टेशन में बच्चों का एक क्रेश चल रहा है और वे उन्हें गाना-वाना भी सिखाते हैं। इस तरह उस छोटी सी उम्र में ही माँ मुझे रेडियो स्टेशन छोड़कर अपने क्लीनिक चली जाया करती थीं।

**तो यह बात है। आपका रेडियो स्टेशन में बिताया गया बचपन का समय जहां संगीत-साहित्य-रंगकर्म, दुनिया भर की खबरें सब कुछ आँख के सामने होता रहा और आपके बाल मन में धीरे-धीरे पैठ बनाता रहा।**

– चार-पांच वर्ष का बच्चा इतना तो क्या समझता होगा उस वक़्त। गाना-वाना जैसा कुछ सिखाते थे। पहला ऑडिशन हुआ तो मुझे बी ग्रेड मिला। तब मैं नौ वर्ष का हो चुका था। कोरस में लिया जाता था। सन् उनसठ में पहली बार मुझे गाने के ढाई रुपए मिले तो समझ ही नहीं आया कि उन्हें कैसे खर्च करूँ। माँ को लाकर दे दिए। आज के बच्चों की तरह हम चंट-चालाक नहीं थे कि कुछ खा-पी कर उड़ा देते। अच्छा तो बहुत लगा था। बाद में मालमू हुआ कि ड्रामे के ऑडिशन भी हो रहे हैं। दस वर्ष की उम्र में वह भी पास कर लिया। जब ग्यारह-बारह का हुआ उस वक्त रेडियो नाटकों की बहुत अच्छी लेखिका चंद्रकांता सौनरिक्शा जी ने एक रेडियो धारावाहिक लिखा। लखनऊ रेडियो के बाल-संघ का पैंतालिस मिनट का वह सबसे बड़ा कार्यक्रम लाइव हुआ। पहला धारावाहिक था वो 'लाल हवेली' चार बच्चों की कथा, फीयरलेस फाइव जैसा रहस्यमय, मनोरंजक रेडियो नाटक था। उस टीम का मैं लीडर था। चार सप्ताह में नाटक पूरा हुआ। सन् सत्तर के शुरूआत का समय रहा होगा।

**उस वक़्त रेडियो लोकप्रियता के शिखर पर था मनोरंजन व ज्ञानरंजन का अकेला साधन?**

– हाँ बिल्कुल अकेला। उसमें भाग लेने के बाद मैं जरा सा प्रसिद्ध हो गया क्योंकि नाटक के अंत में सबके नाम लिए जाते थे। अब प्रशंसकों के पत्र आने शुरू हो गए। उस उम्र में यह सब खुश होने के लिए कुछ कम तो नहीं था। दूसरा धारावाहिक चंद्रकांता जी का ही लिखा किया 'दरियाए फूल की वापसी' इसमें भी मुख्य किरदार में मैं था। इस तरह नाटक से मेरी मोहब्बत बढ़ने लगी।

**गायन और नाटक के प्रति बहुत छोटी उम्र में आपका रुझान हुआ। संचालन भी तो वहीं से शुरू कर दिया था आपने?**

– देखिए! उस वक़्त रेडियो के कार्यक्रम का संचालन दो लोग किया करते थे। एक दीदी थी शगुफ़्ता राय और दूसरे भैया थे रंजन लाल। किसी वजह से रंजन लाल जी को वहां से काम छोड़ कर जाना पड़ गया और उनका काम मुझे मिल गया। आज जब रेडियो जॉकी की चटपटी बातें सुनता हूं तो मुझे अपना ज़माना याद आ जाता है। पैंतालिस मिनट का कार्यक्रम, जिसकी पूरी तैयारी करनी होती थी। स्क्रिप्टिंग तो दीदी ही करती थीं। उनके साथ बैठकर कड़ी रिहर्सल किया करता था मैं। उससे मुझे बहुत आत्मविश्वास मिला। यह काम कोई साल भर किया। स्कूल के नाटक में तो हमेशा भाग लेता ही था।

पिताजी जेल में थे और हमें उस घर से सामान सहित सड़क पर फेंक दिया गया, क्योंकि अब पार्टी का विभाजन हो चुका था। उस वक्त माँ गर्भवती भी थीं। उन्होंने घर ढूंढना शुरु किया। जेल गए व्यक्ति के घर वालों को घर मिलना आसान नहीं था। कुछ दिन हम सड़क पर ही रहे। राजनैतिक कैदी के परिवार को आश्रय देने से सब डरते हैं।

---

**इतना समय रेडियो को देते तो अपनी पढ़ाई कब होती थी, घर वाले ऐतराज़ नहीं करते?**

– पढ़ाई में ठीक-ठाक था इसलिए उसे लेकर घरवाले कुछ नहीं कहते थे। फिर अच्छी जगह समय बिताता हूँ यह आश्वस्ति थी उन्हें। उसी वक्त रेडियो में एकांकी नाटक प्रतियोगिता हुई। भारत भर के सभी रेडियो केन्द्रों से नाटक आए तथा पहली बार रेडियो पर नाटक का मंचन हुआ। मुझे भी दिल्ली बुलाया गया।

**वाह, क्या बात है अतुल जी! उस उम्र में ऐसी उपलब्धि से तो कोई भी उड़ने लगेगा?**

– हां, मैं भी तो लगा था उड़नें। दूसरों से सुनता 'कहां से कहां पहुँच गया' तो बड़ा अच्छा लगता था। तब नाटक के बीस रुपए मिलने लगे थे। रेडियो में नियम था कि उन्नीस रुपए तक नगदी दिए जाते, उससे ऊपर हो तो चेक से। बाकायदा चेक मिलता। कॉन्ट्रेक्ट पर साइन करना पड़ता। जिसमें नीचे लिखा होता Artist In Contract President Of India. अपनी ही नज़र में ख़ुद की कीमत बहुत बढ़ गई। अब मैं राष्ट्रपति के साथ कॉन्ट्रैक्ट साइन कर रहा हूं। पता नहीं क्या हो गया हूं! तेरह-चौदह वर्ष का हो रहा था। शरीर में उम्र के परिवर्तन आने लगे थे। प्रशंसकों में बहुत सी लड़कियां भी थी जिनके पत्र आते। जो मिलना चाहते। बड़ा भला सा एहसास होता था।

**रंगकर्म आप को लुभाने लगा था तब तो लखनऊ में होने वाले नाटक को भी देखते होंगे?**

– हां बी.वी. कारंत, राज बिसारिया जैसे कद्दावर नाटककार के नाटक लखनऊ में होते और मैं देखने जाता था। उस वक्त मंचीय नाटक का स्तर बहुत ऊँचा था।

**बारह-तेरह वर्ष के बच्चे को ऐसे नाटक की गहनता क्या समझ आती होगी? आपका मामला ज़रा दूसरा ही था। नहीं?**

– हां कह तो ठीक रही हैं आप। उस वक्त मेरी उम्र पूरी तरह उन नाटकों को समझ लेने जैसी नहीं थी, फिर भी देखता जरुर था और समझने का प्रयास भी किया करता। विषय गंभीर होते। अब 'हयवदन' या 'सुनो जनमेजय' को समझने की उम्र नहीं थी। कुछ दिन बाद उर्मिल कुमार थपलियाल जी ने 'दर्पण' नाम की संस्था का गठन किया। मैं उसमें जाने लगा। उसमें मेरे लिए कोई रोल नहीं होता पर एक नाटक को बनते हुए शुरु से आखिर तक बड़े मनोयोग से देखा करता।

**कदाचित वह सिर्फ़ देखना भर नहीं था अतुल जी! आपके भविष्य के कार्यों की ज़मीन तैयार होने का उपक्रम था?**

– जी हां, बिल्कुल ठीक कहा आपने। कोई छोटा सा काम, भले झाड़ू लगाने का हो या लाइट पकड़ने का, मिल जाता तो इतनी खुशी होती कि मैं बयान नहीं कर सकता। 'आषाढ़ का एक दिन' में बैकस्टेज पर छोटा सा काम किया। इस तरह मंच के हर पहलू से धीरे-धीरे जुड़ता चला गया। जगधारी जी, थपलियाल जी, राज बसारिया जी की मुझ पर बड़ी मेहर रही। उन्हें मैं अपना गुरु तब भी मानता था आज भी मानता हूँ।

**एनएसडी में जाने से पहले आपको ग्रेजुएशन हो गया था?**

– हाँ, मेरा बीए पूरा हो गया था। लखनऊ से मैं दूसरा लड़का था जो एनएसडी में दिल्ली पढ़ने जा रहा था। मुझसे पहले अलोपी वर्मा गए थे। जब पहली बार सुना कि इस तरह दिल्ली में अल्काज़ी राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में ड्रामा सिखाते हैं तो यकीन मानें आप! सुनते ही मेरे बदन में सिहरन सी दौड़ गई थी और तभी सोच लिया था वहां तो मुझे जाना ही है। उस समय मेरी उम्र मात्र पंद्रह वर्ष थी।

**कोई छोटा सा काम, भले झाड़ू लगाने का हो या लाइट पकड़ने का, मिल जाता तो इतनी खुशी होती कि मैं बयान नहीं कर सकता। 'आषाढ़ का एक दिन' में बेकस्टेज पर छोटा सा काम किया। इस तरह मंच के हर पहलू से धीरे-धीरे जुड़ता चला गया।**

ठीक उन्हीं दिनों पहली बार लखनऊ में उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी तथा एनएसडी ने मिलकर नाटकों की कार्यशाला का आयोजन किया। राज बिसारिया उसके निदेशक थे। उसमें भाग लेने के लिए अठारह वर्ष की आयु अपेक्षित थी। मैंने ज़रा सी होशयारी दिखाई तथा फॉर्म में उम्र वाला खाना खाली छोड़ दिया। इंटरव्यू के वक़्त बिसारिया जी की तेज़ नज़रों से बच पाना संभव नहीं था, लिहाज़ा खूब डाँट कर बाहर कर दिया।

**ओहो! आपका तो सपना ही टूट गया होगा?**

– टूटा तो, पर उस कार्यशाला को करने की मेरी तीव्र इच्छा ने हार नहीं मानी और पहले ही दिन मैं क्लास के दूसरे बंद दरवाज़े के बाहर खड़े होकर अंदर का लेक्चर सुनने लगा। साथ में नोट बुक पेंसिल थी और मैं चार-पांच घंटे खड़े रहकर भी अंदर की बात सुनना चाहता था। यकायक धड़ाक से दरवाज़ा खुला और बिसारिया सर सामने थे। कड़क कर डांटा पर मैं भी कहाँ हार मानने वाला था। पलट कर कहा- सर क्लास से आप मुझे बाहर कर सकते हैं किंतु बाहर खड़े होकर मैं सुनना चाहूँ तो आप नहीं रोक सकते। उन्होंने मेरी सीखने की ललक को पहचाना, फिर भी कड़क कर बोले- आप बड़े जिद्दी हैं, ठीक है अंदर बैठ सकते हैं, पर आपको कोई सर्टिफिकेट वगैरा नहीं मिलेगा। मैंने कहा- नहीं चाहिए सर। आपको हार्ड वर्क करना पड़ेगा क्योंकि आप सबसे यंगेस्ट हैं। मैंने कहा -करुँगा सर।

**ग़ज़ब! उस उम्र में इतना साहस?**

– हाँ, वह तो था। अगले ही वर्ष भारतेंदु नाट्य अकादमी भी शुरु हो गई पर कम उम्र वाली बाधा यहाँ भी थी। मैं तब तक बिसारिया जी से जुड़ गया था। उनकी संस्था के पचास वर्ष पूरे होने वाले थे और वे हर काम में मुझे सहायता के लिए बुलाने लगे। मेरी भूमिका दरअसल 'इंतज़ामअली' वाली हो गई। रंगकर्म के ए से जेड तक के सारे काम मैं बतौर सहायक करने चला जाता था। उनके साथ बड़े-बड़े नाटक के हर काम में उनका असिस्टेंट बना रहा। यह अनुभव मेरी पूँजी है।

**यह सिर्फ बाल-सुलभ कौतूहल नहीं था, जुनून था जिसने समय से पहले ही नाटक के हर क्षेत्र में आपको दीक्षित कर दिया?**

– 'खेल-खेल में सीखना' कहा जा सकता है। एक घटना याद आ रही है मॉरीशस से हिंदी के विद्वान अभिमन्यु अनत आते हैं। उनके नाटक 'विरोध' की हमारे यहाँ एनएसडी में रीडिंग शुरु होती है। मैं रीडिंग सुनते-सुनते ही सेट की डिज़ाइनिंग पर काम करने लगता हूँ, स्केच बनाता हूँ। इसकी ट्रेनिंग वो जबरदस्ती की गयी वर्कशॉप से मिली हुयी थी। स्केच को बिसारिया जी के सामने रख देता हूँ। वे उसे पसंद करते हैं। इस तरह पहला सेट डिजाइनिंग का काम मिलता है।

**बिसारिया जी को आप पहला गुरु मानते हैं?**

– बिल्कुल, उन्होंने मुझे बहुत सिखाया, बहुत सम्भाला। आज भी उनसे मिलता हूँ तो उन्हें वही सम्मान देता हूँ।

**कॉलेज की पढ़ाई अब तक पूरी हो गई थी?**

– हाँ, बीए हो गया था। शौक तो कई थे। खगोलशास्त्र गणित वगैरा, पर मुझे करना रंगकर्म ही था। उम्र बढ़ने के बाद भारतेंदु नाट्य अकादमी में दाखिला ले लिया। बीए में अंग्रेज़ी फिलासफी तथा साइकोलॉजी मेरे विषय थे और अंग्रेजी में एमए मैंने आगरा से किया। बाद में एनएसडी में चला गया और वह वक्त जीवन का सर्वश्रेष्ठ वक़्त रहा।

**वहाँ से लेखन ज़्यादा होने लगा?**

– 'लिखना' मैंने अपने पिताजी तथा दादा जी से सीखा। बचपन से ही कुछ-कुछ लिखने की आदत थी। एनएसडी गया तो डायरेक्शन सीखने था, सौभाग्य यह रहा की रंगकर्म से वाबस्ता हर काम को करने के सुयोग जुटते रहे। अनेक विदेशी नाटकों का अनुवाद किया। नए नाटक भी लिखे। यहाँ तक कि वहाँ जब सेकंड ईयर में था तो फोर्थ ईयर वाले जिस नाटक का प्रदर्शन करने वाले थे वह भी मेरा ही अनुवाद किया हुआ था।

**एनएसडी के बाद आप रंगकर्म की ट्रेनिंग लेने जर्मनी भी गए?**

हाँ, हुआ यह, कि एन.एस.डी. में हर वर्ष एक जर्मन डायरेक्टर आया करते थे 'फ्रीट्स बेनिविट्स' नाम था उनका। वह जिस वक्त आए 'मिडसमर नाइट ड्रीम' कर रहे थे। जिसकी कुछ लाइनें उन्हें पसंद नहीं आ रही थी। शेक्सपियर का नाटक था। दरअसल अच्छी थ्येरिटीकल लाइनें वह होती हैं जो एक्शन ओरिएंटेड हो। अब शेक्सपियर की भाषा तो ग़लत हो नहीं सकती थी। इसका अर्थ था कि अनुवाद में कहीं कमी है, उसे ठीक करना मुश्किल हो रहा था। ये नाटक फोर्थ ईयर वालों का था। मैं सेकंड ईयर में था। मुझे बुलाया गया और मैंने उन लाइन को ठीक करने की कोशिश की, जो उन्हें काफी पसंद आ गई तथा बड़े प्रभावित भी हुए। मुझे जर्मनी आकर वहां कोर्स करने की पेशकश की, साथ ही यह भी कहा कि जब भी वे एन.एस.डी. आएं मैं ही उन्हें असिस्ट करुँ।

**इस घटना से तो एनएसडी में आपकी धाक जम गई होगी विद्यार्थियों में?**

– हाँ, थोड़ा असर तो हुआ। अच्छी बात यह जरूर हुयी कि मेरे अंदर बहुत आत्मविश्वास आ गया। इस घटना के बाद मुझसे पूरे-पूरे विदेशी नाटक का अनुवाद करवाया जाने लगा। लेखक-अनुवादक तथा अच्छे विद्यार्थी के रुप में मुझे पहचान मिली।

**इसी पहचान ने आगे के मार्ग को प्रशस्त किया?**

– बिल्कुल किया, मेरे गुरुओं का विश्वास तथा आशीर्वाद हमेशा साथ रहा और मुझे बनाने में उनका बड़ा हाथ रहा।

**एनएसडी पास करके आप जर्मनी गए?**

– कुछ समय बाद गया था जर्मनी। वहाँ दो जगह से शिक्षा ली तथा पूरा यूरोप भी घूमा। बहुत नाटक देखे, म्यूज़ियम देखे, अब तक तो मेरे अंदर की शिक्षा हुई थी बाहर की दुनिया तो अब ही देखी। छात्र के बतौर बहुत कुछ जानना था। देखना और सीखना भी था। उन तमाम इलाकों में गया जिनका नाता कला से होता है।

**इप्टा के साथ भी आपने काम किया है?**

– हाँ, किया था ना। एनएसडी से निकलते ही पहला काम इप्टा ने ही दिया। जब एनएसडी के थर्ड ईयर में था, तभी वहाँ नरेश सक्सेना जैसे वरिष्ठ साहित्यकार आए और अगला नाटक अपने साथ करने का कहा तथा पाँच सौ रुपए एडवांस भी देकर गए। यह चौरासी की बात है। उस वक़्त यह खासी रकम थी और तीन हज़ार नाटक करने के बाद मिले। यह पहला काम था मेरा। उस वक़्त एनएसडी से हम अढाई सौ रुपए स्कॉलरशिप मिलती थी। खाना-पीना-रहना करके भी सत्तर रूपए हाथ में खर्च कर बच जाते थे।

**अभिनय मेरी प्राथमिकता कभी नहीं रहा। सबसे पहले राजकुमार हीरानी की एक कॉरपोरेट्स फिल्म जो सिर्फबीस मिनट की थी उसमें मैंने अभिनय किया था क्योंकि हिरानी मेरे पुराने दोस्त हैं। उसी तरह 'थ्री ईडियट्स' 'मुल्क' 'हज़ार चौरासी की माँ' 'आक्रोश' 'पीके' इत्यादि कई फिल्मों में छोटे-छोटे रोल किए।**

**आपने कन्नड़ नाटक का हिंदी में अनुवाद किया तथा कर्नाटक में रहे। यह कैसे हुआ?**

– कन्नड़ भाषा मुझे बहुत प्रिय है तथा मैंने बड़ी कोशिश करके सीखी थी। के.वी. सुपर्णा साहब के कन्नड नाटक का अनुवाद मैंने एनएसडी के समय किया था। वे एनएसडी में आए तो मैं उनसे बहुत प्रभावित हुआ। उन्होंने अपने गाँव को 'कला का तीर्थ' बना रखा है। सुपर्णा द्वारा स्थापित 'नीनासम संस्था' कर्नाटक की सांस्कृतिक गतिविधियों का मरकस है। यह सिमोगा ज़िले के सागर तालुके के हिगडू नाम के गांव में है। बीस वर्षों से ज़्यादा हो गए, वहाँ होने वाले कलाकार्यों का कोई जवाब नहीं है। मेरा कर्नाटक में काफी वर्ष रहना हुआ। वहाँ बेहतरीन थिएटर होता है। सुपर्णा साहब का बेटा मेरा क्लासमेट था। उन्होंने 'लोकशाकुंतलम्' नाटक किया। कालिदास के 'शाकुंतलम्' का अलग रुपांतरण जो वे कन्नड़ में लिख कर लाए थे। मैंने उसका हिंदी अनुवाद किया था। दरअसल कन्नड़ मैंने उन्ही से सीखी तथा अनुवाद भी उस के सहयोग से ही किया। मेरा कन्नड़ प्रेम तभी से शुरु हुआ उन्होंने मुझे अपने गाँव आने का निमंत्रण दिया और मैं गया भी।

**आपने अपना कोई नाट्य समूह नहीं बनाया जबकि सब बनाते हैं?**

– नहीं बनाया मैंने नाट्य समूह। मुझे तो आगे से आगे काम मिलता गया। वैसे भी मुझे बड़े शहर से ज्यादा छोटे-छोटे शहर में जाकर काम करना अधिक अच्छा लगता है। वैसे इक्कानवे में, मैं थिएटर करने अमेरिका गया। बाद में फ्रेंच राइटर का प्रसिद्ध नाटक 'मोलियर' का कालजयी नाटक 'तारतूफ' लेकर आस्ट्रेलिया गया। वहां के दर्शकों ने इसे बहुत पसंद किया।

**'तारतूफ' का मतलब क्या हुआ?**

– 'तारतूफ' अर्थात ढ़ोंगी पाखंडी। मैंने उसका नाम रखा 'श्री 420'। सिडनी में रहने वाले हिंदुस्तानी परिवार में एक ढोंगी के आ जाने का बड़ा मज़ेदार घटनाक्रम है। इस नाटक को बहुत पसंद किया वहाँ।

**विदेशी नाटककारों में आपको ज़्यादा किसका काम पसंद है?**

– शेस्सपियर के कई नाटक के अनुवाद किए हैं। खेले भी हैं। कहना ज़रा मुश्किल लगता है। मैकबेथ तीन बार खेला अलग-अलग तरह से और अलग-अलग माध्यमों के साथ। पहली बार शायद छयासी में लखनऊ में 'मकबूल' प्रोडक्शन बना। दूसरी बार दूरदर्शन से छः एपिसोड में दिखाया गया। इक्कानवे में अमेरिका में शेक्सपियर उत्सव होता है। उसमें भी 'मैकबेथ' ही किया। देखा जाए तो शेक्सपियर हमारे लिए पराए कभी नहीं रहे। जिस तरह हमारे कालिदास भी किसी के लिए पराए नहीं है। जहांगीर के समय में थामस राय भारत आते हैं उनके साथ सोलह सौ तेईस में शेक्सपियर के अनुवादों की कुछ कॉपियां भी भारत आती हैं। तब से परिचय है हमारा। 'मक़बूल' बहुत अच्छा रहा। 'मृच्छकटिकम्' ने बहुत संतोष दिया। उसका अनुवाद मैंने कन्नड़ में किया और सौ से ज़्यादा शो हुए। बर्नाड शॉ का अनुवादित नाटक 'अज़हर का ख़्वाब' भी कर्नाटक में किया। 'हू लालीयर' (फूल वाली लड़की) म्यूज़िकल नाटक था। वह काफी सराहा गया फिर 'ताऊस चमन की मैना' अलग तरह का फुट प्रिंट है जिसे बच्चे व बड़े दोनों चाव से देखते हैं, जबकि इसका विषय ख़ासा गहरा भी है।

**अतुल जी! वामन केन्द्रे कहते हैं कि मराठी-बंगाली नाट्यकर्म ने करीब पौने दो सौ वर्षों का सफ़र तय किया है। हिंदी रंगमंच ने अभी पचास साठ वर्ष का रास्ता ही नापा है इसलिए हिंदी नाटकों की लोकप्रियता में वक़्त लगेगा। आप क्या कहते हैं?**

– देखिए कोलकाता अंग्रेज़ों की राजधानी थी। वहाँ भारतीय रंगमंच की यात्रा पुरानी रही। और तभी से उसमें यूरोपियन प्रभाव भी आने लगा था। बहुत सारे रंगकर्मी वहाँ आकर थिएटर करने लगे थे। यह मूल कारण है वहाँ की रंगकर्म की परंपरा का। वहाँ कलकते में अर्बन थिएटर मूवमेंट भी आने लगा था। अठारह सौ तीस में रविबाबू ने शेक्सपियर को सबसे पहले जोड़ासाँको में किया। उनके जैसा परिवार जब यह करता है तो उस काम में अभिजात्य तथा संभ्रांतता खुद-ब-खुद जुड़ जाती है, फिर अपमान वाली बात नहीं रहती।

**अपमान वाली बात तो रंगकर्म के साथ नहीं रही होगी?**

– अपमान वाली बात हमेशा रही। भारतेंदु काल में स्थिति क्या थी, यह तो मैं नहीं जानता पर उत्तर प्रदेश में थिएटर वालों को 'नचैया'-'गवैया' का दर्जा दिया जाता था। मैं एक क्रांतिकारी परिवार से हूँ पर मेरी डॉक्टर माँ भी चाहती थी कि मैं नाटक का चक्कर छोड़ कर डॉक्टर ही बनूँ। नाटक में पैसा कहाँ था। भविष्य क्या था, कुछ भी नहीं। गानेवालियों को 'बाई जी' का अपमानजनक दर्जा देते थे। जबकि हमारा सारा

पारंपरिक लोक संगीत उन्हीं की बदौलत संरक्षित रहा। नहीं तो कब का खो चुका होता। बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश समूचे हिन्दी बेल्ट की बिमारु सोच थी यह। तब हिंदी रंगमंच का उपकार कौन करता?

**आज तो रंगमंच एक ग्लैमरस क्षेत्र हो गया है?**

– हाँ अब ज़रुर हो गया है पर उसके भी कारण दूसरे हैं।

**आपने यह राह चुनी तब किसी तरह की उपेक्षा का सामना करना पड़ा?**

– हाँ, वह तो करना ही था। जब एनएसडी मैं जा रहा था तो घर में मुर्दनी सी छाई हुई थी। 'इतना अच्छा लड़का यह कर क्या रहा है'? सब हमारे घर वालों को यह कहकर कर दुखी कर रहे थे। एक सज्जन ने सलाह दी कि मुझे इससे तो अच्छा कोई दवाई की दुकान खोल लेनी चाहिए थी क्योंकि मेरी माँ की डॉक्टरी अच्छी चल रही थी तो दूसरे शुभचिंतक बोले कि मुसलमान लड़की से भले ही शादी कर लेना पर थिएटर वाली से कभी मत कर बैठना। यह इज़्ज़त थी हमारे यहां थिएटर की। ख़ैर यह सब सामान्य बात हैं सभी के जीवन में घटती है। वैसे भी लखनऊ से अलोक वर्मा के बाद, मैं दूसरा लड़का था जो एनएसडी जा रहा था। 'ऐसे संभ्रात घर का लड़का एनएसडी जा रहा है' इस बात की लहर पूरे शहर में थी।

**आपने फिल्मों में भी हाथ आजमाया। लेखन किया, अभिनय किया, पटकथा लिखी तो कहीं डायलॉग लिखे?**

– सुधीर मिश्रा और उनकी पत्नी सुष्मिता मुखर्जी अपनी पहली फिल्म बना रहे थे' 'यह वह मंज़िल तो नहीं।' वह मुझे पहले से जानते थे क्योंकि वह भी लखनऊ के हैं और सुष्मिता मेरी क्लासमेट थी एनएसडी में। उनकी फिल्म में मैंने संवाद लिखे और उसके लिए पहली बार मुंबई आया सन् सतासी में। तब से यहाँ आना-जाना बराबर होता रहा। लखनऊ में लगातार नाटक चल रहे थे। इक्कानवे के बाद मुंबई आना बढ़ गया। तब तक मेरा विवाह भी हो गया था। सुपर्णा साहब छियानवे में किसी सेमिनार में मुंबई आए तो मिले। यहाँ पहला नाटक सुष्मिता मुखर्जी के साथ 'एक अकेली एक सुधा' किया। यह दारियोंफोरव और उनकी पत्नी के लिखे नाटक का हिंदी रुपांतरण था। अनेक फिल्मों में लेखन किया। 'द्रोहकाल' की पूरी पटकथा लिखी फिर 'नेताजी सुभाष बोस', 'मिशन कश्मीर' वगैरह।

**जिस तरह चंद्रधर शर्मा गुलेरी एक कहानी 'उसने कहा था' लिखकर अमर हो गए। भारती जी सिर्फ 'अंधायुग' ही लिखते तो भी उन्हें कोई नहीं भूल सकता था। अतुल तिवारी भी 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' तथा 'संविधान' लिख कर विश्राम ले सकते थे......!**

– देखिए डिस्कवरी का पूरा श्रेय तो मुझे नहीं लेना चाहिए क्योंकि मैं जब उससे जुड़ा तब तक बेनेगल साहब काफी लिख चुके थे। हाँ बाद के एपिसोड मैंने लिखे, क्योंकि मुंबई आया ही बाद में था। इससे जुड़ने की बड़ी परिणति यह हुई कि सन् दो हज़ार में 'द्रोहकाल', 'नेताजी सुभाष बोस' तथा 'संविधान' की पूरी पटकथा लिख पाया।

**अभिनय की तरफ कब मुड़े?**

– अभिनय मेरी प्राथमिकता कभी नहीं रहा। सबसे पहले राजकुमार हीरानी की एक कॉरपोरेट्स फिल्म जो सिर्फ बीस मिनट की थी उसमें मैंने अभिनय किया था क्योंकि हिरानी मेरे पुराने दोस्त हैं। उसी तरह 'थ्री ईडियस' 'मुल्क' 'हज़ार चौरासी की माँ' 'आक्रोश' 'पीके' इत्यादि कई फिल्मों में छोटे-छोटे रोल किए।

**भारतेंदु काल में स्थिति क्या थी, यह तो मैं नहीं जानता पर उत्तर प्रदेश में थिएटर वालों को 'नचैया'-'गवैया' का दर्जा दिया जाता था। मैं एक क्रांतिकारी परिवार से हूँ पर मेरी डॉक्टर माँ भी चाहती थी कि मैं नाटक का चक्कर छोड़ कर डॉक्टर ही बनूँ। नाटक में पैसा कहाँ था। भविष्य क्या था, कुछ भी नहीं।**

**जब एनएसडी मैं जा रहा था तो घर में मुर्दनी सी छाई हुई थी। 'इतना अच्छा लड़का यह कर क्या रहा है?' सब हमारे घर वालों को यह कहकर कर दुखी कर रहे थे। एक सज्जन ने सलाह दी कि मुझे इससे तो अच्छा कोई दवाई की दुकान खोल लेनी चाहिए थी क्योंकि मेरी माँ की डॉक्टरी अच्छी चल रही थी तो दूसरे शुभचिंतक बोले कि दीगर जाति की लड़की से भले ही शादी कर लेना पर थिएटर वाली से कभी मत कर बैठना। यह इज़्ज़त थी हमारे यहाँ थिएटर की।**

**आप गाते भी है?**

– नहीं, मैं सिर्फ बाथरुम सिंगर हूँ। गाना तो मैंने रेडियो से चार-पांच वर्ष की उम्र में ही सीखा था पर हां अपने नाटकों के गीतों का गीतकार जरुर हूँ, वह सब मैं खुद लिखता हूँ, गुनगुनाता भी हूँ।

**कविताएँ भी तो लिखते हैं अतुल जी!**

– कविताएँ तो बस कभी-कभार हो जाती हैं। कवि और गीतकार में छोटा सा फ़र्क होता है। गीतकार के सामने सिचुएशन रहती है उसके अनुरुप गीत रचना होता है तो मुझे लिरिसिस्ट तो कह सकते हैं कवि नहीं। गीतकार को स्थिति के हिसाब से लिखना होता है इसे डायलॉग का एक्सटेंशन भी कहा जा सकता है और वह मैं खूब कर लेता हूँ।

**आपके चहेते शायर 'नज़ीर अकबराबादी' हैं क्योंकि चौपाल में अक्सर आप उनकी बात करते हैं, उनके शेर, नज़्में, कलाम आपके होठों पर ही रहते हैं?**

– यह बिल्कुल सही कहा आपने! 'नज़ीर' मेरे फेवरेट शायर है क्योंकि वह जनता की भाषा में जनता की बात करते हैं। 'नज़ीर' के यहाँ बेशुमार विषयों पर कविताएं मिलती हैं। वे आम लोगों के कवि हैं। ईश्वर स्तुति तो उस पाँच वक्त के नमाज़ी ने इतनी उम्दा लिखी है कि दूसरा कोई उदाहरण खोजने पर भी नहीं मिलेगा। ऐसी सौहार्दपूर्ण चीज़ें लिखने वाला कवि अढ़ाई सौ वर्ष पूर्व हुआ। आज होता, तो मार डाला जाता। लोग हिंदी उर्दू के झगड़े में मरे जा रहे हैं। वैसे मैं उनकी सहजता, सादगी का जबरदस्त शैदाई हूँ।

**आपने रंगकर्म की राह चुनी उसके लिए घरवालों की अप्रसन्नता झेलनी पड़ी पर आज आप जहाँ हैं उसे देख कर वे क्या सोचते हैं?**

– आप जब सफल हो जाते हैं तो सारी अप्रसन्नता खत्म हो जाती है। अभी सब खुश हैं।

**सुना है, आप किसी म्यूज़ियम की परिकल्पना कर रहे है। विस्तार से बताएंगे तो जानने में सुविधा होगी।**

– अब तक चार-पाँच म्यूज़ियम बने हैं जहाँ जाकर आप एक विशेष कालखंड में पहुँच जाते हैं। जैसे गुजरात के गांधीनगर में 'दांडी कुटीर' नाम का संसार का सबसे बड़ा म्यूज़िम बना है। आठ जनवरी दो हज़ार पन्द्रह में इसका उद्घाटन हुआ था। जो सिर्फ किसी एक व्यक्ति के काम पर फोकस करता है। इसे देखने में ढाई-तीन घंटे लगते हैं और यकीन मानें दर्शक को लगेगा कि वह स्वयं सफर में है। जितने भी माध्यम उपलब्ध हैं उन सब को काम में लेकर यह परिकल्पना साकार हुई है। जिनमें पुराने व नए सब जैसे ऑडियो विजुअल प्रोजेक्सन मैपिंग होलोग्राम और भी बहुत कुछ हैं। सभी जानते हैं अठारह सौ अठासी में गांधीजी पढ़ने बाहर जाते हैं और वकालत पढ़ कर लौटते हैं अठारह सौ इक्कानवे में। भारत में उनकी प्रेक्टिस चलती नहीं है, तभी साउथ अफ्रीका में किसी को गुजराती जानने वाले वकील की ज़रुरत होती है और उन्हें वहाँ बुलाते हैं। वहाँ जाकर उन्होंने जीवन में अनेक प्रयोग किए, सत्याग्रह किया, नाम भी कमाया। भारत एक नाकाम वकील को भेजता है लेकिन साउथ अफ्रीका उन्हें महात्मा बना देता है।

वापस भारत आते हैं 'गोखले' उन्हें घूम-घूम कर भारत देखने-समझने की सलाह देते हैं। रेलगाड़ी में सवार होकर भारत भर में घूमते हैं। बोलपुर जाते हैं, टैगोर से मिलते हैं। मद्रास आते हैं, महाजन सभा में उनका भाषण होता है। बिहार आते हैं, और चंपारण की गरीबी तथा नील उपजाने वाले किसान का दुख दर्द उन्हें अपनी तरफ खींचता है। इस म्यूजियम में हमने वैसी ही विंटेज रेलगाड़ी के कूपे बनाए हैं जिसमें दर्शनार्थी सवार होकर घूमता है। वैसे ही स्टेशन और वैसे ही पोशाक पहने लोग तथा ट्रेन की खिड़कियों से दिखने वाले पेड़-पौधे, फूल-पत्ते तक वैसे ही करने की कोशिश की है कि दर्शक उस समय में पहुँच जाता है।

**क्या बात कर रहे है आप?**

– मैं कितना भी बताऊँ, आपको दिखा तो नहीं सकता ना? उसके लिए तो जाना ही पड़ेगा। ऐसा लगेगा कि हम महात्मा जी के साथ चल रहे हैं। उनके जीवन को स्पष्ट अनभुव करेंगे बल्कि मैं तो कहूंगा कि अनुभव ही नहीं करेंगे सोखते की तरह हर बात को सोखते चले जाएंगे। पर्यटक को बताना कुछ नहीं पड़ेगा। ना कोई उपदेश देना होगा। दर्शक स्वयं उस कालखंड में यात्रा करेगा।

दिल्ली में 'एक भारत-श्रेष्ठ भारत' नाम से पटेल पर म्यूजियम बना है जिसका उद्घाटन दो हज़ार सोलह में हुआ। पटेल के बारे में भारत में कम जानकारी है। देश को आज़ाद कराने में, राजाओं नवाबों को मनाने में, शरणार्थियों को स्थापित करने में, तंत्र को खड़ा करने में, और प्रजातंत्र की नींव धरने में, उनकी बड़ी अहम भूमिका रही है। पटेल भी गांधी नेहरु, जिन्ना की तरह विदेश से बैरिस्टर बनकर आए थे और स्कॉलरशिप सिर्फ उन्हें ही मिली थी। इस म्यूजियम में भी बड़े दिलचस्प तरीके से सारी जानकारी दर्शकों को मिलती चली जाएगी। एक म्यूज़ियम पंजाब में तथा एक बनारस में भी बन चुका है। देश-विदेश से आने वाले पर्यटकों के लिए श्रद्धालुओं के लिए इन संग्रहालयों को देखकर कभी ना भूलने वाला अनुभव होगा। इस तरह की परिकल्पना कई क्षेत्रों के लिए है कितना हो पाता है यह तो भविष्य के गर्भ में है।

**इसके अतिरिक्त नया क्या काम हो रहा है?**

– कई सारी चीज़ों पर काम चल रहे हैं अलग-अलग तरह के काम हैं। जैसे व्यक्तियों पर, शहर पर, विचार धाराओं पर, संग्रहालय बने। जिस तरह गेटवे ऑफइंडिया पर मुंबई की कहानी की थी वैसे ही केवड़िया में सरदार पटेल की विशाल मूर्ति पर शाम को रोशनी के साथ कुछ क्रिएट करना है। उसका लेखन डायरेक्शन आदि। एक और नया प्रोजेक्ट है 'गीता'। हरियाणा में ज्योतिसर एक जगह है। कुरुक्षेत्र में जहाँ श्री कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया था। यह बहुत बड़ा काम है देखें कब आकार लेता है। उलझनें भी होती है कई बार, फिर सब सध भी जाता है। मल्टीटास्किंग का स्वभाव बचपन से था वह अब काम आ रहा है।

# नृत्यमय जगत

## स्वरांगी साने की कविता

कभी देखा है
किसी को सौरंगी (सारंगी) बजाते हुए
लगता ही नहीं
सौरंगी बज रही है
देह से सटी होती है सौरंगी
और लगता है देह बज रही है।

सौ रंगों को एक साथ गूँथ लिया है उसने
पूछते हैं -कोई अच्छा सौरंगी बजाने वाला है
नाम आता है उसका
जिसने मांझ लिया है गज[1] को देह के साथ
सेतु बन गया है गज
जिससे
उसकी देह के पार की यात्रा शुरू हो गई है।

●●●

तबले पर थिरक रही हैं
अंगुलियाँ
चेहरे पर मुस्कान
यह 'स्व' का आनंद है
जो उसे बना रहा है 'तबलची' से 'तबला नवा?'
'झपताल' के
'धी ना धी धी ना'
का लड़कपन है
तो 'धमार' का
'क धि ट धि ट धाऽ'
का संयत भाव भी।
इस 'धा' पर सम[2] आई है
गर्दन हिला कर बता रहा है वह
और इस 'तिरकिट' पर
घूमी हैं अंगुलियाँ
उसकी गर्दन और चेहरे का स्मित हास्य भी
क्या है ऐसा
जो तबला बजाते हुए
उसे आनंदित कर रहा है
नाच रहा है उसका
ऊर्ध्व शरीर
ऊर्ध्व की ओर हो रही है उसकी गति
उसके लिए यह मोक्ष का सोपान है।

●●●

'मुख मोर-मोर मुस्कात जात'
गा रही है गायिका मालकौंस[3] में
अर्धनिमिलित हैं उसकी आँखें
शब्दों से नहीं
तान के उतार-चढ़ाव से
बदल रही हैं उसके चेहरे की
भाव-भंगिमाएँ
यदि इसकी जगह वह गाती
'ठुमक चलत रामचंद्र'
उसके चेहरे पर वही शांत भाव होता, जो
'भोर भई अब आए हो, रैन कहाँ बिताई'
गाते हुए होता।

गायिका को न शब्दों का उपालंभ चाहिए
न उनके अर्थों की व्यंजना
उसके लिए शब्द से भी ज़्यादा ज़रूरी है
स्वर, आरोह-अवरोह
वह स्वरों में खो रही है
वही है उसका परमानंद, उसका मोक्ष।

●●●

सितार के मिज़राब[5]
अँगुलियों में अँगूठियों की तरह पहने हैं
खींच-खींच कर बजाई जाती है सितार
एक विशिष्ट आसन में बैठकर
और खुद ही मुँह से निकलता है 'क्या बाऽत'
यह उस तार के खींचने का उन्माद नहीं होता
न ही यह होता है उस तुंबे[5] का स्पंदन
उस झाले[6] पर भी नहीं कही गई होती है यह बात

यह उस क्षण को जी लेने का आनंद होता है
जिसे जिया होता है
उसने अभी
खुद को खोते हुए।

●●●

... और
और देखा है मुरली बजाते हुए उसे
शरीर पर कितने वक्र पड़ते हैं
पर कितने प्यार से बजाता है वह बंसी
नीरव शांति का रहस्य
क्या केवल कृष्ण जानता है?
नहीं, वह भी जानता है
जो बैठकर बजाता है बाँसुरी
और खो जाता है निराकार में।

●●●

इन सबके साथ
तो कभी अकेले ही
नाचती है नर्तकी
उसकी आँखें बंद नहीं होतीं
हर क्षण की सजगता उसके साथ होती है।
आमद[7] का 'धात कथुं गाऽ'
करते हुए वह अभिनय करती है

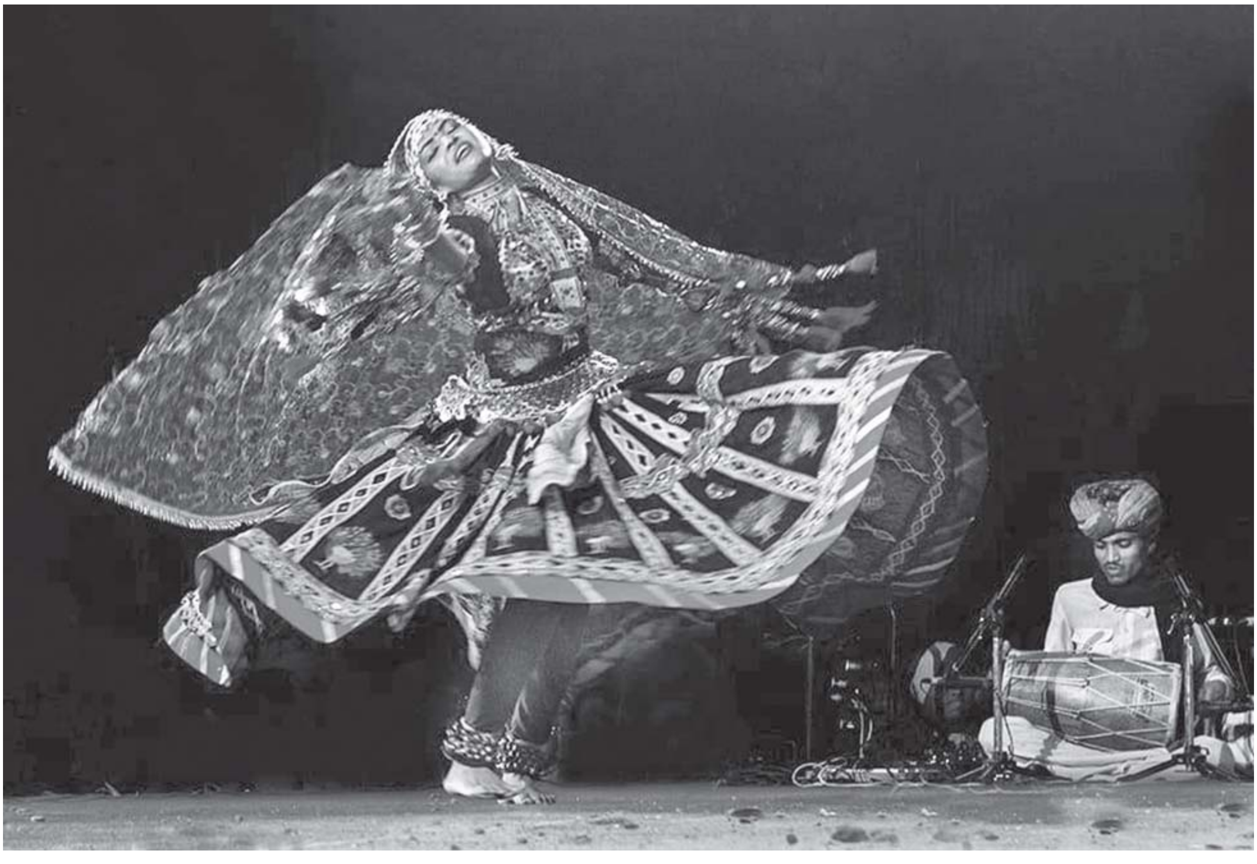

छाया : तनवीर फारुखी

साकार कर देती है शिव–पार्वती।
हर शब्द के भाव को पकड़ती है ऐसे
जैसे कि उस शब्द का वही अर्थ हो
'लाली मेरे लाल की' कहते हुए
अपने लाल–गोपाल को दिखाती है
तो सूर्य की और होठों की भी
लालिमा दिखा देती है
उन छोटे–छोटे बोल–टुकड़ों को
वह इतने प्यार से बरतती है
जैसे पैरों से निकाल रही हो मक्खन
दूसरे ही क्षण किसी कवित्त[8] में
वह राधा बन छीन ले जाती है बाँसुरी

एक ही बार में वह
क्या–क्या करती है
उलाहना देती है
तो कभी बिनती करने लगती है
'मोहे छेड़ो न कन्हाई'

वह नृत्य करती है
देखती है तबले की ओर
होती है तबले और घुंघरुओं की जुगलबंदी
पखावज के नाद में रमण करती है
स्तब्ध हो जाता है वह क्षण
तभी वह देखती है सौरंगी को
और एक टीस सीधे
उसके दिल को चीर जाती है
तानपूरे से भरती है
वह पूरा व्योम
तानपूरे पर चलती चार अँगुलियों से
चार चरणों को पार कर जाती है

बाँसुरी की तान में
वह करती है एक पल को आँखें बंद
शुरू होती है भैरवी[9]
खोल देती है आँखें तुरंत।

अहीर भैरव[10] के साथ
सुबह की उजास
उसके चेहरे पर होती है
दमकती है वह
दमकता है नृत्य
ताल–लय स्वर
और सारे साज़–साज़िंदे
वह पूर्ण परिक्रमा करती है
परिधि पर एक ओर
खड़ी हो जाती है पृथ्वी
पृथ्वी के कक्ष में घूमने लगती है नर्तकी
नर्तन हो जाता विश्व
कीर्तन हो जाता है संसार
जहाँ कुछ विषम नहीं होता
सब सम हो जाता है
'सम' पर विराम पाता है।

शिल्प : संजय महाजन

**शब्द संकेत :** 1– बो, जिससे सौरंगी को बजाया जाता है 2– प्रत्येक ताल की पहली मात्रा। इसी से प्रारंभ होता है, इसी पर अंत 3– रात्रि के अंतिम पहर का एक राग 4– जिसे पहनकर सितार बजाई जाती है 5– पीछे गोलाकार गुबंद 6– द्रुत गति से बजाना, आमतौर पर इससे समापन किया जाता है 7– प्रारंभ 8– काव्यमय रचना जिसे ताल–लय में पिरोया गया हो 9– सर्वकालिक राग पर आम तौर पर अंत में गाया जाता है 10–दिन के प्रथम पहर का राग

# मन भीगे मौसम के मनछूते रूपक

**मौसम फिर बादल, बयार और बौछारों का है। भीगने का है। यादों की झरती बूंदों की जुगलबंदी में ख़ुद को गुनगुनाने का है। मेहंदी के रंग, झूलों की कहानी और गीतों की रवानी में यूँ एक मौसम फिर रुहानी दस्तक दे रहा है।**

शब्द की परंपरा कहती है कि वर्षा सृजन है, दर्शन है, जीवन की पूर्णता का घना और गाढ़ा अहसास है। तभी तो महाप्राण निराला की कविता में भी बह निकला बादल राग– ''झूम–झूम मृदु गरज–गरज घन घोर, राग अमर अंबर में भर निज रोर''। याद आता है, आचार्य विष्णुकांत शास्त्री ने कभी कहा था– ''जिस तरह पावस के बादल धरती का मैल धोकर उसे उजला कर देते हैं, हमारे मन की परतों पर ठहरा आपाधापी, अशांति और बेचैनी का गुबार भी झरते बादलों की बौछार से धुल कर सुकून का पैगाम बन जाये''! लेकिन दौड़ और होड़ से भरे आज के जीवन पर निगाह जाती है तो सवाल कौंधते हैं। प्रकृति से हमारा प्रेम क्या अब भी उतना ही प्रगाढ़ और पवित्र रह गया है? क्या बारिश की रंगत हमारी आपाधापी भरी फितरत पर कोई असर डालती है? क्या कोई कागज़ की कश्ती और बारिश का पानी आज के नौनिहालों की याददाश्त में हरे पन्ने की तरह पैबस्त होगा?

इन्हीं कसकों के बीच जब शब्दों के आसमान से कुछ कविताएँ झरती हैं तो जीवन, प्रकृति और संस्कृति की आपसदारी के अर्थ उजले होने लगते हैं। हम अपने को जैसे क्षण भर में तर–बतर महसूस करने लगते हैं। कवि ठाकुर, पद्माकर, माखनलाल चतुर्वेदी, निराला, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', नागार्जुन जैसे हिन्दी के अग्रणी कवियों के पद अलौकिक अनुभव बन जाते हैं। ललित निबंधकार श्रीराम परिहार पावस को सुमिरते हुए अपनी एक रचना में कहते है– ''मनुष्य की अनुभूतियाँ तो माटीगंधी होती हैं। अवस्था और परिस्थितियों के ज़रिए वह हर मौसम को अपने भीतर महसूसता है।'' मौसम के साथ कुलांचें भरता उसका मन स्वयं को प्रकृति और उसके परिवेश में खो देता है। कविता में जीवन की तमाम धड़कनों की हिफ़ाज़त करने वाले कवि का भावाकुल मन हो तो फिर वर्षा जैसी सतरंगी छटाओं का मौसम रुपकों और उपमाओं की आलंकारिक भाषा में अपना अक्स निहारने लगता है।

कवि ठाकुर की आंखों में आषाढ़ के बादलों का चित्र और अलबेली बुंदनियों की प्रकृति कितनी सुहानी हो उठी हैं! उनकी कविता में एक बावरी सखि के भीतर बैठा मन का मयूर नाच उठा है। धरती और आकाश की रंगत उसे किसी उत्सव की तरह जान पड़ती है। उधर एक सखि और है जिसके प्राण वन–वन गरज रहे

बादलों की ध्वनि से उतावले हो रहे हैं। उसका उदास मन मगन हो रहा है। इस तरुणी को आभास हो रहा है– 'परम अगम प्रियतमा गगन की शंखध्वनि आई...' यह हिन्दी कविता के यशस्वी हस्ताक्षर बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की रचना है। और एक भारतीय आत्मा माखनलाल चतुर्वेदी के मन आँगन में पावसिया बूंदे कुछ ऐसे छंद बना रही हैं– 'नभ की छवियाँ तारों वाली...... बिंदु–बिंदुके वृत्त........ अनदेखा सूरज...... और अपने उर में छिपा सलोना श्याम...... कैसा छंद बना देती हैं, बरसातें बौछारों वाली.....'।

बूंदों का यह छंद जब गति पाता है तो पर्वतों और सागरों में बहकर एक नई हलचल मचाता है। इसी बीच संवेदना में डूबा एक मन पावस की सुंदरता को समेट लेना चाहता है। उसके कानों में बादलों का बजना 'धिं–धिं धा धमक–धमक' है। दादुर के कंठ खुलने और धरती के हृदय धुलने की पवित्रता को उसका मन एक साथ महसूसता है। कीचड़ से लथपथ धरती की माटी को उसकी आत्मा हरिचंदन मान रही है। यह जन–कवि नागार्जुन का उद्गार है जहाँ मेघबजे, तो जैसे एक पवित्र अवतार प्रकट हुआ! लगता है, जैसे आत्मा की धरती पर बादलों से झरती बूंदे कविताएं रच रही हों।

कविता ही क्यों, कलाओं के रुप–रंग भी ऋतुओं के साथ जुड़े जीवन–अनुभव से आच्छादित रहे हैं। हर्ष की हिलोरें और आंसुओं का सैलाब कभी राग के सप्तक में, साज़ों से उठती गमक में, घुंघरूओं की झंकार और नृत्य की देहगतियों में, चित्रों की चौखट में तो कभी मूर्तियों को तराशती भावमय लगन में समाकर ज़िंदगी के असल स्वाद को हमारी संवेदना में बार–बार लौटाने का जतन करते रहे हैं।

याद आता है, प्रख्यात कथक नृत्यांगना कुमुदिनी लाखिया का रुपक 'सीज़न्स', जिसमें ऋतुचक्र के साथ गतिमान जीवन की उत्सवधर्मिता का दिलकश कलात्मक ताना–बाना था। ख़ास पहलू यह कि कथक जैसे शास्त्र सम्मत नृत्य में इस्तेमाल होने वाले कवित्त और रागबद्ध संगीत से हटकर यहाँ लंगा और मांगणिहार गायकों की उँची–मीठी तानों में घुला राजस्थान का लोक संगीत था। यानी शास्त्र और लोक के संयोग से तैयार हुआ रसायन। वर्षा के मंगल को अभिव्यक्त करने के लिए कुमुदिनीजी ने भावाभिनय के साथ ही रंग–बिरंगी छतरियों का प्रयोग किया था। दिल्ली, भोपाल और उज्जैन में इस 'सीज़न्स' के भव्य प्रदर्शन हुए थे। इस पारंपरिक फ्यूज़न का आलेख कुमुदिनीजी के प्रस्ताव पर मैंने (इस लेखक ने) तैयार किया था। नृत्य विदूषी रोहिणी भाटे का 'वर्षा मंगल' भी धरती और आसमान के उस रिश्ते को उद्घाटित करता है जहाँ बरखा एक सेतु की भूमिका का निर्वाह करती है। वह शुभ और मंगल का संदेश लिए इंसानी जीवन में ही नहीं, समूची सृष्टि के रोम–रोम में उतर जाती है। भावनाओं का ज्वार उमड़ता है

एक भारतीय आत्मा माखनलाल चतुर्वेदी के मन आँगन में पावसिया बूँदें कुछ ऐसे रुपक रच रही हैं– 'नभ की छवियाँ तारों वाली...... बिंदु–बिंदु के वृत्त........ कैसा छंद बना देती हैं, बरसातें बौछारों वाली.....'। वहीं माटी गंधी अनुभूतियाँ 'कजरी' में सजीव हो उठती हैं– ''रिमझिम–रिमझिम मेहुओ बरसे, सावन महीनो आयो जी''। शबनम शाह सूने केनवास पर रंगों के छींटे कुछ इस तरह लगाती हैं कि 'मूड्स ऑफ मानसून' उभर आते हैं।

तो संयोग और वियोग की मीठी–कसैली यादें चहक उठती हैं। पंडित छन्नूलाल मिश्र का कंठ राग मेघ में गा उठता है... ''सखि, बदरवा आए, कंत नहीं आए''। वहीं माटी गंधी अनुभूतियाँ 'कजरी' में सजीव हो उठती हैं– ''रिमझिम–रिमझिम मेहुओ बरसे, सावन महीनो आयो''। शबनम शाह सूने केनवास पर रंगों के छींटे कुछ इस तरह लगाती हैं कि 'मूड्स ऑफ मानसून' के रूपहले चित्र उभर आते हैं।

'बरसात का बादल तो दीवाना है, क्या जानें/ किस राह से बचना है, किस छत को भिगोना'। उर्दू अदब के मक़बूल शायर मरहूम निदा फाज़ली के शेर में अंगड़ाई लेता यह बादल बिलाशक इन दिनों हम सबकी आँखों से होकर गुज़र रहा है। – **विनय**

विमर्श

# जनजातीय देवलोक में प्रवेश

विजय मनोहर तिवारी

सबसे पहले तो मैं 'आदिवासी' शब्द पर ठिठका हूँ। किस आधार पर कौन आदिवासी है? हम सब आदिकाल से धरती के वासी हैं। हम सब आदिवासी हैं। लेकिन आम भारतीयों की दृष्टि में एक तो 'आदिवासी' हैं और वो 'पिछड़े' भी हैं, जिन्हें विकास की किसी मुख्यधारा में लाना है। ये दिव्यदृष्टि आई कहां से है कि जो यह देखती है कि वनों और पहाड़ों में रहने वाले ही आदिवासी हैं। लगे हाथ पिछड़े होने का प्रमाणपत्र भी इन्हें दीजिए और अब हम आपको विकास की मुख्यधारा का निमंत्रण देते हैं।

भोपाल के जनजातीय संग्रहालय में एक उम्दा विषय पर तीन दिन के लिए देश के विभिन्न वनवासी अंचलों के प्रतिनिधि पधारे हैं और विषय ध्यान देने योग्य है–'जनजातीय धार्मिक परंपरा और देवलोक।' तीन वक्ताओं को सुनकर लगा कि जनजातीय लोक में खड़े कर दिए गए हों, जहां से उनके देवलोक की झांकी ठीक से दिखाई देती है और तब नजर उन दुष्टों को ढूंढती है, जिन्होंने पिछड़ों की तरह इस समृद्ध समाज को देखने की 'ज्योतिहीन दृष्टि' प्रदान की है।

भारतीय संस्कृति के अध्येता डॉ. कपिल तिवारी को सुनना सनातन संस्कृति के झरने में शाही स्नान करने जैसा है। वे कहते हैं कि आरण्यक, लोक और नगर समाज भारत में सदियों से एक दूसरे की धार्मिक स्वतंत्रता का सम्मान करते हुए साथ बना रहा है। किसी ने एक दूसरे पर कुछ भी आरोपित नहीं किया। लेकिन एक आदिदेव की परिकल्पना तीनों समाजों में बनी रही। एक ऐसा देव, जो सृष्टि के पहले भी था, आज भी है और बाद में भी रहेगा। यह ऐसी सांस्कृतिक धारा है, जिसमें केवल पुरुष देव नहीं हैं। मातृशक्ति भी देवरूप में है। तीनों की पूजा प्रणालियों में हैं। जनजातीय समाज ने धर्म के तंत्र और व्यवस्थाएं खड़ी नहीं कीं। वे सच्ची धार्मिकता में सदा ही बने रहे। उनके जीवन में न्यूनतम राज्य की गुंजाइश है। सामुदायिक स्वशासन ही राज्य का काम करता है। भारत का जनजातीय समाज एक तरह की नकद आध्यात्मिकता में रहा, जिसका कोई तंत्र बनाया ही नहीं जा सकता। वे अपने ही रचे हुए अनुशासन में थे और हमने उन्हें पिछड़ा कहा।

कपिलजी प्रश्न करते हैं कि जिन धर्मों में मातृशक्ति की अवधारणा ही नहीं है, वे कैसे हैं और उनके लोग कैसे हैं? दरअसल मातृशक्ति का ऋणी होकर हम अपनी आस्था में प्रवेश करने से दूसरे ही तरह के मनुष्य बनते हैं। जिन धर्मों ने अपने तंत्र और व्यवस्थाएं विकसित कीं, उनकी धार्मिकता कम होती गई। पश्चिम की दृष्टि धर्म के संगठन की दृष्टि है। धार्मिकता को उन्होंने कभी अपने अध्ययन का विषय ही नहीं बनाया। भारत के जनजातीय समाज में सब कुछ वाचिक परंपरा में रहा। वह शास्त्रों में नहीं आया। वह पीढ़ियों से शुद्ध और

सुरक्षित हस्तांतरित हुआ रसपूर्ण ज्ञान है। ज्ञान को आख्यानों में रचकर रस बना दिया। रामायण और महाभारत भी जनजातीय लोक में रस की तरह बहते रहे हैं। यह समाज अपने हर कर्म में सच्चा है–कला, साधना, अनुष्ठान, संस्कृति और परंपरा। भगवत्ता जब चेतना में खो जाती है तो भगवान की जरूरत नहीं रह जाती। जनजातीय समाज में प्रकृति ही भगवत्ता में ढली है।

दूसरे विद्वान वक्ता मनोज श्रीवास्तव थे, जिनकी पहचान नौकरशाहों की प्रचलित पहचान की परिधि से बहुत अलग है। उनका परिचय विविध विषयों पर उनकी शोधपूर्ण रचनाओं में है। मनोजजी ने कहा कि जनजातीय देवलोक में बड़ा देव है, बूढ़ा देव है, महादेव है, कालिका है, सीतलामाता है, पावागढ़ माता है, भुवानी माता है, हनुमान बाबा हैं। वे बहुदेववादी हैं। वह उनकी सनातन आस्था है। नगर का संस्कृत में एक अर्थ वन भी है। इसलिए काशी को आनंदवन, अवंतिका को महाकाल वन के संबोधन भी साहित्य में मिलते हैं। तुर्क मुसलमानों के हमलों के समय वनों और पहाड़ों में सुरक्षित शरण के लिए पलायन इतिहास में दर्ज हैं। महाराणा प्रताप के साथ निकले कुछ जातीय समूह आज भी घूमंतू जातियों में मौजूद हैं। वे कैसे भारतीय विश्वास पद्धति से भिन्न माने जा सकते हैं? पोप के आदेश थे कि दुनिया को सभ्य बनाओ। मिशनरियाँ जहाँ गईं यह मानकर ही गईं कि वे सभ्यता को उपलब्ध हैं। अब दूसरों को बनाना है। जिन देशों में वे गए, जिन धर्मों और उनके देवलोक पर उनकी निगाह गई, उसकी निंदा की। हिंदू धर्म उन्हें 'रीअरेंज' किया हुआ आदिवासी धर्म नजर आया। औपनिवेशिक ताकतों को जनजातीय समाज हिंदू नजर नहीं आता। उन पर पृथक धर्म की पहचान चिपकाने की कोशिशें आज तक जारी हैं। इस्लाम का नाम लिए बगैर मनोज श्रीवास्तव ने कहा कि एक मजहब को तलवार के जोर पर फैला हुआ बताकर हम उनके साथ नाइंसाफी कर रहे हैं। सन् 785 में इसाइयत ने यह फैसला कर दिया था कि जो कैथोलिक न बने उसे मार डालो। 1676 में ब्रिटेन में एक फैसला हुआ कि ईसाइत के खिलाफ  बोलना गुनाह है। कैथोलिक एकमात्र वैध धर्म और बाकी सब बंद।

प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. सुरेश मिश्र ने दूसरी ही खिड़की खोली। वे बोले कि जनजातीय समाज की चर्चा में अक्सर जनजातीय राज्य सत्ताओं का कोई जिक्र नहीं होता। जबकि भारत में तीन बड़े साम्राज्य इनके रहे हैं, जो डेढ़ सौ साल से लेकर पांच सौ सालों तक चले–गढ़ा, चांदा और देवगढ़। वे गोंड थे। रानी दुर्गावती के ससुर संग्राम शाह ने अकबर के समय मिथिला के विद्वानों को अपने राज्य में आमंत्रित किया था। दुर्गावती के पति राजा दलपत शाह ने भी संस्कृत के विद्वान बुलाए थे। 1558 में विट्ठलनाथ आए थे तब दुर्गावती ने सौ गांव दान किए थे और उनके बेटों को मथुरा में सात भवन बनाकर दिए थे। ह्दयशाह की रानी सुंदरीदेवी ने रामनगर में भव्य मंदिर बनवाया था, जिसका जिक्र 1667 के संस्कृत के शिलालेख में है। मंदिर में प्रतिष्ठित सारे देवता वही थे जो सनातन धर्म के हैं। मंडला के पास वो तीन गांव आज भी हैं, जो ज्योतिषियों और वाजपेयी ब्राह्मणों को इन गोंड राजाओं ने दिए थे।

**पोप के आदेश थे कि दुनिया को सभ्य बनाओ। मिशनरियाँ जहाँ गईं यह मानकर ही गईं कि वे सभ्यता को उपलब्ध हैं। अब दूसरों को बनाना है। जिन देशों में वे गए, जिन धर्मों और उनके देवलोक पर उनकी निगाह गई, उसकी निंदा की। हिंदू धर्म उन्हें 'रीअरेंज' किया हुआ आदिवासी धर्म नजर आया। औपनिवेशिक ताकतों को जनजातीय समाज हिंदू नजर नहीं आता। उन पर पृथक धर्म की पहचान चिपकाने की कोशिशें आज तक जारी हैं।**

अब जरा इस कोने से खड़े होकर जनजातीय समाज, उनके राजवंशों और उनके देवलोक पर एक दृष्टि डालिए। वे कहाँ से अलग और पिछड़े नजर आते हैं, जिनके हमारे कोट-पेंट-टाई छाप तथाकथित विकास की मुख्यधारा में घसीटकर लाना जरूरी है। वे एक ऐसा समाज हैं, जिन्होंने अपनी परंपरा और विचार के सारे खिड़की-दरवाजे खोलकर रखे हैं। वे बंद दिमाग रोबोट नहीं हैं, जो एक किताब और एक पैगंबर के दायरे में घुट रहे हों और दुनिया का गला घोंटने का गला घोंटने के मिशन में लगे हों। मिशनरियों को कौन यह बताए कि सलीब गले में टांगने की चीज नहीं है। उस पर खुद टंगा जाता है। कौन उन तोप-तलवार वालों को समझाए जो सातवीं सदी के कैलेंडर अपने दिमाग की दीवारों पर टांगे हुए गजवा-ए-हिंद में खुद को खपा रहे हैं।

इस वैचारिक अनुष्ठान के मुख्य पुरोहित दत्तोपंत ठेंगड़ी शोध संस्थान और उनके निदेशक डॉ. मुकेश मिश्र बधाई के पात्र हैं। इन विषयों के माध्यम से हमें यह अवसर है कि हम सांस्कृतिक रूप से समृद्ध अपने जनजातीय समाज को ठीक से समझ सकें, जो आदिवासी नहीं हैं और न ही पिछड़ेपन का पर्याय।

मध्यप्रदेश के पश्चिमी छोर पर सघन जंगलों और पहाड़ियों से घिरा वो इलाका जहाँ भील आदिवासियों के पुरखों ने कभी अपने बसेरे की तलाश की थी। कुदरत को ही अपना आराध्य माना और उसमें लय होते पुरुषार्थ में ही पूजा के अर्थ तलाशे। भूरी इसी महान विरासत का सुनहरा भविष्य संजोये अपने समय की किंवदंति बन जाएगी, यह सोचते हुए ज़रा आश्चर्य ही होता है। बहरहाल, भूरी बाई की कहानी, क़िस्मत की कहानी नहीं है। वह कर्म के पसीने की कहानी है।

# महक उठे आदिम रंग

**विनय उपाध्याय**

स्त्री के नाम पर अपने शिविरों में आधुनिक विमर्श की आँच सेक रही बुद्धिजीवियों की बिरादरी के लिए यह कितना कौतूहल, जिज्ञासा और गर्वोचित प्रसन्नता का विषय है, नहीं मालूम लेकिन बहत्तरवें गणतंत्र दिवस पर अचानक सुर्खी में आयी देश की पहली भील चित्रकार भूरी बाई के नाम पद्मश्री की घोषणा ने आदिम रंग और रेखाओं को फिर महका दिया है। यह अलंकरण सृजन की उस सनातन कामना से परवान चढ़ती परंपरा का है जो एक जनजातीय समुदाय की स्त्री के भीतर हिलोरें भरती आस्थाओं का इन्द्रधनुष रचती हैं। और इस तरह जनजातीय कला में नई चित्र भाषा-विचार को नए पंख देती है। भूरी बाई के हाथों आकार ले रहे बेशुमार चित्र इसी सच की गवाही हैं।

झाबुआ यानि मध्यप्रदेश के पश्चिमी छोर पर सघन जंगलों और पहाड़ियों से घिरा वो इलाका जहाँ भील आदिवासियों के पुरखों ने कभी अपने बसेरे की तलाश की थी। कुदरत को ही अपना आराध्य माना और उसमें लय होते पुरुषार्थ में ही पूजा के अर्थ तलाशे। भूरी इसी महान विरासत का सुनहरा भविष्य संजोये अपने समय की किंवदंति बन जाएगी, यह सोचते हुए ज़रा आश्चर्य ही होता है। बहरहाल, भूरी बाई की कहानी, क़िस्मत की कहानी नहीं है। वह कर्म के पसीने की कहानी है।

......यह अस्सी का दशक था। रोज़ी की तलाश में भटकते-भटकते अपने पति के संग वे भोपाल आयीं। घर-गाँव-देहरी सब पीछे छूट गये लेकिन स्मृतियों की रंग-रुपहली छवियाँ साथ चली आयीं। मजदूरी के लिए हाथ आगे बढ़ते तभी भूरी को बीमारी ने घेर लिया। देह पर फफोले उग आये। तभी हाथों ने कूची थामी

चित्र : भूरी बाई

और रंगों की सोहबत में सृजन का एक नया अध्याय रचना शुरु हुआ। एक स्त्री के भीतर मौजूद लालित्य और सौन्दर्यबोध का नैसर्गिक प्रवाह फूट पड़ा। जैसे यह एक नई यात्रा पर चल पड़ने की भीतरी पुकार थी। डगर भी नई, रफ्तार भी नई और मंज़िल भी नई। इस नए आग्रह की ज़मीन उस बेचैनी और कसौटी से तैयार हुई जहाँ भीली चित्रांकन की परंपरा में स्त्रियों का प्रवेश निषेध था। वहाँ अपने लोक देवता पिथौरा को रचने की अनुमति पुरुषों को ही थी। अपने लिए वर्जित इस भूमि को हासिल करने के लिए भूरी ने पिथौरा कला के आसपास सिमट आए रंगों, मिथकों, प्रतीकों, बिंबों और आशयों को मन की आँखों से देखा और एक दिन सूने फलक पर वे सब नई शक्ल में ढलकर एक स्त्री की महान सर्जना में बदल गये। यूँ पिथौरा ही भूरी की प्रेरणा बना। निश्चय ही यह एक जनजातीय स्त्री की स्वाधीन चेतना, उसकी मौलिक सूझ–बूझ, उसके कौशल और रचनात्मक ज़िद की विजय थी। भूरी के केनवास पर खिलखिलाते रंग उन स्मृतियों, गाथाओं और आध्यात्मिक प्रसंगों को उकेरते हैं जो उसने पूर्वजों से सुने और धरती–दीवार पर आकार लेते चित्रों में देखे थे। देशज गंध की गमक भरे भूरी के इस अद्भुत काम पर मूर्धन्य चित्रकार जे. स्वामीनाथन की निगाह गयी जो बीती सदी के अस्सी के दशक में कलाओं के मरकज़ भारत भवन में आदिवासी कला दीर्घा का आकल्पन कर रहे थे। भूरी बाई के रंगों ने यशगामी यात्रा के शुभ चरण नापना शुरु किया। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मानव संग्रहालय ने उन्हें आग्रहपूर्वक बुलाया। उन्हीं दिनों जनजातीय और लोक कलाओं के संरक्षण और दस्तावेज़ीकरण के लिए म.प्र. की सरकार ने 'सुपर न्यू मेरेरी' श्रेणी के तहत नए पद का सृजन किया। भूरी बाई चयनित हुई। राष्ट्रीय अहिल्याबाई और राज्य स्तरीय शिखर सम्मानों से भी वे विभूषित की गईं।

भूरी बाई को भोपाल स्थित जनजातीय संग्रहालय के परकोटे में तल्लीनता से सृजनरत देखना आगन्तुकों के लिए सदा एक सुखद अनुभव होता है। देस–परदेस के अनेक संग्रहालयों की दीवारों पर भूरी के चित्र चस्पा हैं। उनका सृजन एक स्त्री के हाथों प्रकृति की महान प्रार्थना है। लोक देवता पिथौरा का आशीर्वाद बरसा है भूरी पर।

# ज्ञान परंपरा के **सांस्कृतिक प्रवक्ता**

भारतीय ज्ञान परंपरा में लोक विमर्श की नई उद्भावनाओं के प्रतीक कपिल तिवारी को पद्मश्री अलंकरण के लिए चुने जाने की सर्वत्र प्रसन्नता है। भारत के सांस्कृतिक मूलाधारों के प्रति गहरी जिज्ञासा से भरकर वे अपनी बौद्धिक क्षमता से जिस शिखर पर प्रतिष्ठित हैं वहाँ उनके ज्ञान, स्मृति, तर्क और निष्कर्षों को एक नवोन्मेषी विचार-परंपरा में उद्घाटित होता देखा जा सकता है।

1952 मध्यप्रदेश के सागर शहर में जन्में तिवारी ने साहित्य की ज़मीन से सृजन के संस्कार अर्जित किये। आधुनिक कथा साहित्य में उन्होंने शोध किया। 1982 में मध्यप्रदेश शासन के संस्कृति विभाग की आदिवासी लोक कला अकादेमी में प्रकाशन अधिकारी के पद पर उनकी नियुक्ति हुई। लोक संदर्भ की पत्रिका 'चौमासा' का उन्होंने संपादन किया और अनेक दस्तावेज़ी अंकों के प्रकाशन का कीर्तिमान अर्जित किया। इसी दौरान वे इस अकादेमी के प्रभारी निदेशक भी हुए। इस कार्यकाल में भारतीय लोक और जनजातीय जीवन तथा संस्कृति के विभिन्न पक्षों को उन्होंने न केवल गहराई से देखा-समझा और गुना बल्कि इस दिशा में शोध और अध्ययन के लिए नए रचनात्मक प्रकल्पों का सृजन भी किया।

आदिवासी और लोक संस्कृति के क्षेत्र में सुविचारित, कल्पनाशील और नवाचार के लोकस्पर्शी उन्मेष का आग्रह कपिल तिवारी के मन मस्तिष्क में सदैव रहा है। लोक और जनजाति संस्कृति के उन्नयन के प्रयास उनके स्वप्न और स्मृति के हिस्सा हो गये है। उनके अवचेतन में संस्कृति के सारतत्वों के प्रकाश बिन्दु अवतरित होते हैं और वे उनके कार्यों के मूलाधार बन जाते हैं।

उनके समस्त निकष परिणाम मूलक हो उठते हैं। संयोग से मध्यप्रदेश की आदिवासी और लोककलाओं से उनका साक्षात्कार हुआ और उनके साथ अकादेमिक और सृजनात्मक कार्यों में उन्होंने अपनी असाधारण क्षमताओं का परिचय दिया। वे सृजनात्मक योजनाओं और लोकोन्मुखी समारोहों के अद्भुत शिल्पी और कुशल संचालक रहे हैं।

मध्यप्रदेश की लोक और जनजाति की वाचिक परंपरा के संकलन और संरक्षण का कार्य उन्होंने रचनात्मक स्तर पर किया है। पारम्परिक शिल्पों-चित्रों के बहुमूल्य संकलन और प्रलेखन का कार्य कपिल तिवारी के निर्देशन में हुआ है। मध्यप्रदेश की लोक और जनजाति कला की कई विधाओं की प्रथम पहचान और प्रतिष्ठा का श्रेय भी कपिल तिवारी को है। उनके प्रयासों से अनेक कलाकार और विधाएँ राष्ट्रीय अन्तरराष्ट्रीय ख्याति अर्जित करने में सफल हुई हैं।

सरकारों के साथ ही अनेक अशासकीय संस्थाओं के सलाहकार रह चुके हैं। एक प्रखर, ओजस्वी और स्पष्ट वक्ता के रूप में उन्हें अनेक मंचों पर सुनने का कौतुहल बना रहता है।

# विश्व विजयी संगीतकार

अपने नाम के अनुरूप वो एक ऐसा रवि (सूर्य) साबित हुआ जिसने पूरब और पश्चिम की सरहदों के फासले मिटाए और सात सुरों की ज़मीन पर इंसानियत का पैगाम लिख दिया। महान सितार वादक पंडित रविशंकर को इस तरह फिर से याद करने का सबब फिलहाल इसलिए कि यह उनकी पैदाईश का सौवां साल है। सात अप्रेल 1920 को बनारस में संस्कृत के मूर्धन्य और नामी वकील के घर में जन्में रविशंकर 'भारत रत्न' से सम्मानित एक ऐसे विलक्षण संगीतकार के रूप में प्रकट हुए जिसने मैहर के शारदा देवी धाम में बाबा उस्ताद अलाउद्दीन खाँ के साये में रहकर संगीत के सबक सीखे। एक दिन गुरू के ऋण को सिर माथे रख दुनिया की सैर पर निकल पड़ा उनका यह शार्गिद।

सारे जहाँ से अच्छा सुनकर प्राय: हमें इकबाल याद आते हैं, पर कम लोगों को पता होगा कि इसकी धुन पं. रविशंकर ने बनाई है। भारतीय स्वतंत्रता की स्वर्ण जयंती का पर्व जब मुंबई के एन.सी.पी.ए. (नेशनल सेण्टर फॉर परफॉर्मिंग आटर्स) में मनाया गया तो 14 अगस्त 97 की रात पं. रविशंकर का कार्यक्रम रखा गया था। रात्रि बारह बजे समारोह का सबसे रोमांचक क्षण था जब टाटा सभागार में अपना सितार वादन रोककर, स्वतंत्रता की स्वर्ण जयंती का स्वागत उन्होंने ख़ुद के बनाए 'शांतिमंत्र' से किया। सभागार की बत्तियाँ धूमिल हो चलीं और रविशंकर के स्वर संयोजन में 'ऊँ शांति...' का सुरीला नाद फ़िज़ाओं में फैल गया। इसके तुरंत बाद उन्होंने सितार पर 'सारे जहाँ से अच्छा...' बजाया और फिर हज़ारों कण्ठों का समवेत स्वर गूँज उठा।

उनकी आत्मकथा 'रागमाला' प्रकाशित हुई है। इसके पहले 'माई म्यूज़िक माई लाइफ' में उन्होंने विशेष रूप से अपने संगीत पर ही लिखा था। ये किताबें पंडित रविशंकर की ज़िंदगी का आईना है। इन पन्नों पर हम एक ऐसे फनकार की शख़्सियत से वाबस्ता होते हैं जो तमाम असहमतियों-वर्जनाओं और विरोधाभासों का सामना करते हुए संगीत का क्रांतिकारी इतिहास रच रहा था। यहूदी मेनहुईन, जॉर्ज हेरिसन, जुबीन मेहता, फिलिप ग्लास और जॉन पियरे जैसे पश्चिमी मुल्कों के संगीतकार रविशंकर की प्रतिभा, प्रयोग और प्रसिद्धि पर मुग्ध थे। ये वे परदेसी कलाकार थे जिनके साजों पर भारत के गोमुख से फूटी स्वर-गंगा का नाद गूँजा। रविशंकर के दार्शनिक चिंतन से बैरागी भैरव, अहेरी ललित, तिलक श्याम और चारू कौंस जैसी लगभग बीस रागों की रचना हुई। सिनेमा के संगीत को भी उन्होंने नया संस्कार दिया। वाद्यवृन्द को नयी तासीर दी। स्वीडेन के पोलर संगीत पुरस्कार से लेकर ग्रामी, ऑस्कर, पद्भूषण और कालिदास सम्मानों ने रविशंकर के अद्वितीय योगदान पर स्वीकृति की मोहर लगायी। बेशक सितार की सुरम्य राग-परंपरा में नया अध्याय जोड़ा रविशंकर ने। उनका सितार गाता था। उनका सोच वैश्विक था। वे सच्चे अर्थों में भारत के सांस्कृतिक राजदूत थे।

इधर शताब्दी वर्ष के निमित्त केन्द्रीय संगीत नाटक अकादेमी, नई दिल्ली की पत्रिका 'संगना' का ताज़ा अंक पंडित रविशंकर के समग्र योगदान पर केन्द्रित है। बेसुरे होते जा रहे इस समय में रविशंकर को सुरीला प्रणाम।

# शून्य का चितेरा

सैयद हैदर रज़ा

स्मृतियों के रंग-बिरंगे, मासूमियत से महकते, अपने मोह-पाश में सारी कायनात को समोते अंधेरे-उजालों के अहसास जब किसी चितेरे की कूची से रिश्ता बना लेते हैं तो जैसे मनुष्यता को कला की नई जुबां मिल जाती है। आधुनिक चित्रकला के विश्व परिसर में सैयद हैदर रज़ा इसी बदौलत शोहरत की बुलंदियों पर उभरा नाम है। रज़ा ने अब हमेशा के लिए ख़ामोशी की चादर ओढ़ ली है, लेकिन उनके बेशुमार केनवासों पर ठहरे रंग अब भी उनके होने की गवाही देते हैं। जीवित होते तो रज़ा उम्र का सैकड़ा पार कर रहे होते। यह साल उनकी शताब्दी की घोषणा है।

लगभग आधी सदी तक फ्राँस में अपना जीवन गुज़ारने वाले रज़ा की कुछ साल पहले ही अपने वतन (भारत) वापसी हुई थी। वे दिल्ली में बस गये थे। काया थकी, पर चौरानवे की उम्र के आख़िरी लमहों तक रंग और कूची की सोहबत न छूटी थी। यक़ीनन मन के केनवास पर किसी स्मृति चित्र को उकेरते हुए ही उन्होंने अंतिम सांस ली होगी।

नर्मदा के किनारे म.प्र. के मंडला जिले की सरहद में बसा बबरिया देहात रज़ा की जन्मभूमि है। 22 फरवरी 1922 को इसी बुंदेली माटी में हैदर ने पहली किलकारी भरी। अपने साधारण परिवार की सीमित आमदनी और संसाधनों के बीच रज़ा का लड़कपन बीता। लेकिन जीवन को तरतीब से जीने के जो सबक अपने वालिद और गुरू से उन्हें मिले, ताउम्र रज़ा उन्हें सिर-आँखों थामे दुनिया की उड़ान भरते रहे। उम्र के एक मुकाम पर रज़ा ने अपने गाँव की चौहद्दी लांघी। मुंबई गए और वहाँ से दुनिया की सर्वश्रेष्ठ कला से आँख मिलाते फ्राँस (पेरिस) की ओर रूख किया लेकिन बबरिया, मंडला, दमोह की मटियारी यादें सदा सीने से चिपकी रहीं।

सेंट्रल प्रॉविंस में मंडला के डिप्टी रेंजर रहे सैयद मोहम्मद रज़ा के इस होनहार बेटे ने 12 साल की उम्र में ही कूची थाम ली थी। बबरिया के स्कूल में ब्लेकबोर्ड पर चाक से बिंदु बनाए जाने के बाद उसे दिनभर देखने की शिक्षक से मिली सजा ने उन्हें अमूर्त (बिंदु चित्रकारी) का बड़ा नाम बनने के बीज बो दिए।

भारत हमेशा उनकी कला और दिल के करीब रहा। उनके प्रमुख चित्र अधिकतर तेल या एक्रेलिक में बने परिदृश्य हैं जिनमें रंगों का अत्यधिक प्रयोग किया गया है। इन चित्रों में भारतीय ब्रह्माण्ड विज्ञान के साथ-साथ दर्शन के चिन्ह भी दिखाई देते हैं। रज़ा को 1981 में पद्मश्री तथा 2007 में पद्मभूषण से सम्मानित किया गया। 10 जून 2010 को वे भारत के सबसे महंगे आधुनिक कलाकार बन गए जब क्रिस्टी की नीलामी में 'सौराष्ट्र' नामक एक चित्र 34,86,965

डॉलर में बिका था। ...क़रीब चौबीस बरस पहले की यह एक सर्द सुबह थी। फरवरी का महीना। रज़ा अपना जन्मदिन मनाने भारत आए थे। भोपाल के हॉटल जहाँनुमा में मेरी उनसे हुई बातचीत में जैसे पूरा जीवन ही खिलखिला उठा था। बचपन की स्मृतियों से लेकर फ्राँस तक का सफर किया। अपनी कला के गूढ़ रहस्यों में समाये जीवन बोध से लेकर मौजूदा दौर की बनती-बिगड़ती सांस्कृतिक तस्वीर पर उनकी चिंताओं से बावस्ता होने का वह दुर्लभ अवसर था। बहरहाल, रज़ा की सबसे बड़ी ख़ासियत रही अहंकार और आत्मज्ञापन की क्षुद्र लालसा से परे उनकी विनम्रता। वे हर साल वसंत में खूशबूदार मौसम की तरह भारत की धरती पर नमूदार होते। अपनी सरज़मी की धूल को माथे पर लगाने गाँव जाते। नर्मदा का सुरम्य किनारा और बुंदेलखंड का सौंधा अहसास जीकर रज़ा की धमनियों का रक्त गाढ़ा हो जाता।

रज़ा का मानना था कि दस-बारह साल की ज़िंदगी में लगता है जैसे लाइफ इज़ स्टाप्ड आउट। बाद में हम इस बात को भूल जाते हैं। मगर फिर अगर सालों बाद हम अपने बचपन की ओर जाएँ तो ऐसा लगता है कि जो कुछ भी इस समय हुआ है, सारी ज़िंदगी वहीं ठहरी लगती है। जो भी चित्र मैंने बनाए हैं, उसी बचपन का क्रिस्टलाइजेशन है, या उसका नतीजा हैं। बिन्दु से सिंधु या अंधरे से उजाले की ओर खुलते रज़ा के चित्र आत्मा का यही तो आलाप हैं। रज़ा के ऐसे ही बेमिसाल शख़्सियत और उनके बेशकीमती सृजन को उनकी जन्म शताब्दी के निमित्त देश-देशांतर में फिर से देखने-परखने की उत्सुकता जागी है। उनकी ही जीवनभर की कमाई से बना रज़ा फाउंडेशन भारत के विभिन्न राज्यों और बड़े-छोटे शहरों में प्रदर्शनी, संवाद तथा पाठ आदि रचनात्मक प्रकल्पों के जरिए इस अज़ीम चितेरे के जाने-अनजाने पहलुओं को रौशन कर रहा है। सच भी तो है, यादों को दस्तक देने की आदत कहाँ होती है। ये तो अचानक आती है और अपना अलबम खोलकर बैठ जाती है।

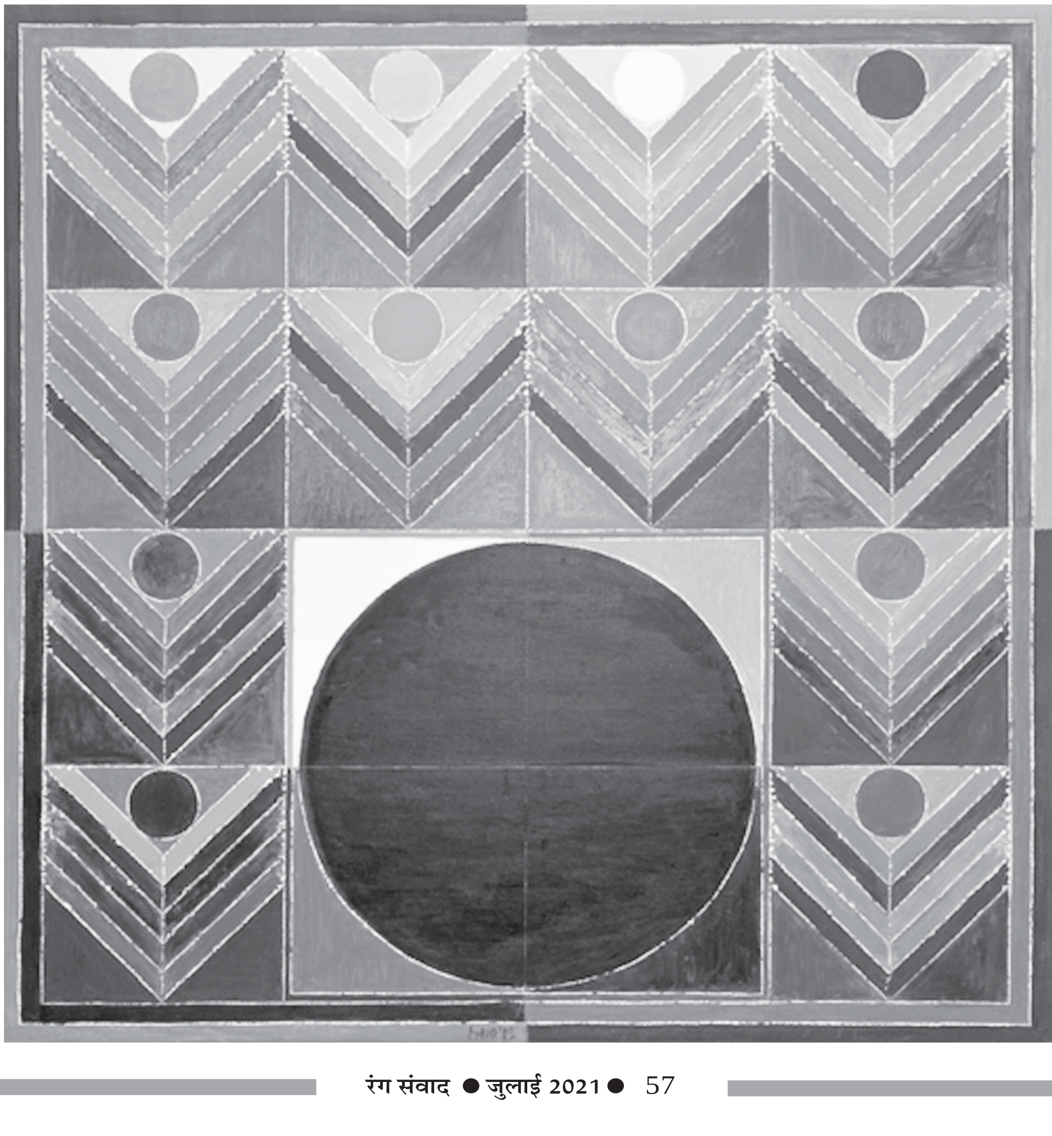

रज़ा

# माच का 'सिद्धेश्वर'

**ज़िक्र माच के मंच पर तमाम उम्र गुज़ार देने वाले लोक कलाकार सिद्धेश्वर सेन का। नश्वर दुनिया में वे अब नहीं हैं। जीवित होते तो सौ बरस पूरे कर रहे होते। बहरहाल मालवा की आंचलिक सरहदों से बहुत दूर दुनिया के रंगमंच पर माच को नई शोहरत देने वाली इस अज़ीम शख़्सियत के धूप-छाँही अध्यायों को बाँचने का सिलसिला चल निकला है।**

सिद्धेश्वर सेन

कुछ दिन पहले ही केन्द्रीय संगीत नाटक अकादेमी के सहयोग से सेन की बेटी कृष्णा वर्मा ने मालवा कला केन्द्र उज्जैन के संयोजन में हफ्ते भर का एक स्मृति प्रसंग किया। आमंत्रित वक्ताओं ने सिद्धेश्वर सेन और लोक नाट्य शैली माच की आपसदारी की चर्चा की। प्रसंगवश यह उल्लेख ज़रुरी है कि 1993 में संगीत नाटक अकादेमी, दिल्ली ने सेन को राष्ट्रीय पुरस्कार के लिए चुना था और इंदौर जिले की राऊ तहसील के छोटे से गाँव रंगवासा के रहवासी माच के इस बावरे फ़नकार के सीने पर राष्ट्रपति ने सम्मान का मेडिल लगाया था। लेकिन आत्मस्तुति के रोमांच और उत्कर्ष की आसमानी इच्छाओं से फासला रखने वाले इस खाँटी मालवी का मन उन मंडलियों के आसपास भटक रहा था जो ढाई सौ बरस पुरानी माच की विरासत का परचम थामें जनता की आवाज़ को पुरज़ोर करने के एक बड़े अभियान पर निकल पड़ी हैं।

गीत, संगीत, नृत्य, संवाद और अभिनय के रोचक ताने-बाने में ऐतिहासिक नायकों के आदर्शों का बरबान और अपने समय की विसंगतियों पर कटाक्ष करते माच के खेल-तमाशे के आसपास हज़ारों का हुजूम उमड़ पड़ता। रात-रात भर सिद्धेश्वर की रची रंगतों की महफिल जमतीं और उनकी तुगबंदी और अभिनय के जौहर पर दर्शक निहाल हो उठते। सेन बताते थे कि उनके पिता ने लाख चाहा कि बेटा पुश्तैनी धंधे में मन लगाए लेकिन उनकी रुह माच में कुछ ऐसी रमी की जीवन इसी में गुज़र गया।

ग़ौर करने की बात यह है कि सिद्धेश्वर सेन ने यह सब आत्मनिर्भरता पर अडिग रहकर किया। माच की परंपरा को जीवित रखने के लिए उन्हें अपने क़दमों की धूप और अपनी आँखों की रात मंज़ूर थी। इसी कसौटी पर उन्होंने हज़ारों कलाकारों को प्रशिक्षित किया। माच प्रदर्शन की चली आ रही परंपरा में नए प्रयोग कर उसे मौजू बनाया। अनेक नई रंगतें लिखी। उन्हीं की पहल पर माच के मंच पर वर्जित स्त्री कलाकारों की आमद हुई। एक वो कठिन दौर भी आया जब उनके साथ प्राण-प्रण से सक्रिय उनकी पत्नी ने माच के मोह में अपने गहने तक बेच दिये।

बहरहाल वक्त की धूल को बुहारकर सिद्धेश्वर सेन और उनके गुज़िश्ता दौर को याद करने की दरकार है। बेशक, एक उजला हस्ताक्षर नुमाया होगा और कहानियाँ बोल पड़ेंगी।

सिद्धेश्वर सेन की विरासत के उत्तराधिकारी उनके बेटे प्रेमकुमार सेन माच की विधा को नया उन्मेष प्रदान करने वाले अपने पिता की स्मृतियों और उनके योगदान का ज़िक्र करते हुए भावुक हो जाते हैं। उन्हें याद आती है वो रंगतें, वो महफ़िलें जब वे छुटपन में अपने पिता के संग मालवा के गाँव-क़स्बों की सैर करते। नौनिहाल कलाकार बतौर पिता को दिन-रात खटते देखते और एक सिरे पर पिता की आँखों में उस कलात्मक आनंद और सुकून को भी तैरता देखते जो किसी भी कलाकार के लिए उसका निजी और सबसे अहम हासिल होता है। यूँ प्रेमकुमार सेन की नियति भी माच की डोर से बंध गयी। अपने स्मृति शेष पिता की याद में प्रेम के बेटे अनिकेत अब हर साल उज्जैन में एक लोकरंगी समारोह करते हैं। सिद्धेश्वर सेन के जन्म शताब्दी वर्ष के निमित्त कुछ रचनात्मक सार्थक और स्थायी महत्व का उपक्रम होगा, उम्मीद की जानी चाहिए।

**आत्म निर्भरता का आलाप इन दिनों शबाब पर है। गुहार जड़ों की ओर लौटने की है। अपनी मटियारी संस्कृति के बेशकीमती उसूलों में जीवन के मकसद को टटोलने की कवायद अँगड़ाई ले रही है। ऐसे में यह ज़रुरी है कि उन क़िरदारों को भी याद किया जाये जो अपनी ज़िद, दुश्वारियों और कामयाबियों के आसपास आत्मनिर्भर कर्मयोगी की मिसाल बन गये।**

संगीत नाटक अकादेमी, दिल्ली और मध्यप्रदेश के संगीत महकमे ने सिद्धेश्वर सेन को माच के संरक्षण, संवर्धन और नवाचार के लिए उनके जीते-जी पुरस्कारों से सम्मानित तो किया लेकिन सेन के इस शताब्दी वर्ष में उनके रचनाकर्म, संघर्ष और उपलब्धियों के उजाले में मौजूदा दौर के उन हालातों को तो लक्ष्य किया जा सकता है जहाँ माच अपने अस्तित्व से जूझ रहा है। एक अजीब अनगढ़ता, उदासी और औपचारिकता माच के मंचन के दौरान दिखाई देती है। सिद्धेश्वर सेन की बेटी राष्ट्रीय अहिल्या बाई सम्मान से विभूषित लोक कलाकार कृष्णा वर्मा इस दुर्दांत सच को स्वीकारते हुए कहती हैं कि लोक नाट्य की परंपरा के पोषण और प्रोत्साहन के लिए पर्याप्त संसाधन और अवसरों की कमी है। उस सक्षम अगुआई की भी जो सिद्धेश्वर जैसे माच के नायकों में दिखाई देती थी।

प्रसंगवश यह जानना दिलचस्प है कि माच, मध्यप्रदेश की प्रतिनिधि रंगमंचीय लोक शैली है। महाकवि कालिदास की प्रसिद्ध नगरी उज्जयिनी में इसने आकार ग्रहण किया और देखते ही देखते पूरे मालवा क्षेत्र में इसने अपने पाँव पसार लिये। ग़ौरतलब है कि मध्यप्रदेश के पश्चिम-उत्तर में चम्बल नदी, पूर्व में बेतवा और दक्षिण में नर्मदा के बीच का पठारी मैदान मालवा कहलाता है।

माच, मालवा के खुले रंगमंच का वह उदात्त और रंजनकारी रुप है जिसमें मंच विधान का रुढ़ीगत आग्रह और प्रस्तुति के रंग-ढंग की पारंपरिक सीमाएँ सदियों बाद भी ज्यों की त्यों हैं। यही है इसकी ख़ासियत। 18वीं सदी के प्रारंभ में बैठक वाली ख्याल गायकी जब मंच की विषय-वस्तु बनी तब माच की लोकरंग शैली अस्तित्व में आयी। उज्जैन की जो लोक कलाकार बैठक वाली ख्याल गायकी, गम्मत, तुर्राकलंगी, ढाराढारी के खेल, नकल-स्वांग जैसे प्रदर्शनकारी कला रुपों में सक्रिय थे, उन्होंने अपनी-अपनी मंडलियाँ बना लीं। यहाँ एक क़िस्म की होड़ थी। लिहाज़ा कुछ कलाकारों ने अपने दल को अखाड़ा का नाम दिया। इन रंग मंडलियों के मुखियाओं को गुरु अथवा उस्ताद की पदवी से सुशोभित किया गया। इन्हीं कला गुरुओं ने उस समय चलन में आयी मनोरंजक शैलियों से रंग-तत्वों को ग्रहण कर मंच प्रदर्शन हेतु विभिन्न खेलों या कहें नाट्य प्रस्तुतियों का बढ़-चढ़कर उत्साह दिखाया। ये खेल ज़मीन से आठ-दस फुट ऊँचा मंच बनाकर प्रस्तुत किये जाते थे। इन्हें नाम मिला-माचा। समय के साथ इन मंचों की ऊँचाई घटती गई और यह शब्द भी माचा से माच में बदल गया। खुले आसमान के नीचे धरती का कोई आंगन या चबूतरा माच का मंच बन जाता है, लिहाजा गर्मी के चैत्र और वैशाख के महीने इसके प्रदर्शन का सबसे उपयुक्त समय माना जाता है। आत्म निर्भरता का आलाप इन दिनों शबाब पर है। गुहार जड़ों की ओर लौटने की है। अपनी मटियारी संस्कृति के बेशकीमती उसूलों में जीवन के मकसद को टटोलने की कवायद अँगड़ाई ले रही है। ऐसे में यह ज़रुरी है कि उन क़िरदारों को भी याद किया जाये जो अपनी ज़िद, दुश्वारियों और कामयाबियों के आसपास आत्मनिर्भर कर्मयोगी की मिसाल बन गये।

# स्मृति शेष

## तुम जैसे गए, वैसे भी कोई जाता नहीं

उस भयावह मंज़र की याद आते ही रूह काँप उठती है। मौत के पैग़ामों का सिलसिला लगातार बना हुआ था। जाने कब, किसकी बारी! .... और ऐसी ही तमाम आशंकाओं की गाज साहित्य-संस्कृति पर भी गिरी। महामारी के महापाश ने हमारे अनेक प्रिय और वरेण्य रचनाकारों को हमसे छीन लिया। मृत्यु से बड़ा सच कुछ नहीं लेकिन मन फिर भी कहता है- ''तुम जैसे गये, वैसे भी कोई जाता नहीं''। पलक झपकते ही जैसे अंधेरा हो गया। बड़े शौक़ से सुन रहा था ज़माना और अधूरी दास्तानों में ज़िंदगी के नक़्श उकेर कर ये क़िरदार अलविदा हो गये। सभी दिवंगतों के प्रति आंतरिक श्रद्धांजलि। 'रंग संवाद' के इन पन्नों पर साझा है उन्हीं की स्मृतियाँ।

# अनूठा रंगयात्री

## राकेश श्रीमाल

वह ग़ालिब की सौंवी पुण्यतिथि का वर्ष था। उसी वर्ष पहली राजधानी ट्रेन नई दिल्ली से कोलकाता के लिए चलना शुरु हुई थी। उसी वर्ष दादासाहब फाल्के पुरस्कार की स्थापना हुई थी। मधुबाला का देहावसान उसी वर्ष हुआ था। न्यूयार्क में पहली एटीएम (ऑटोमैटिक टेलर मशीन) ने पैसा निकालना शुरू कर दिया था। उसी वर्ष यानी 1969 में 22 वर्ष का एक पारसी नवयुवक बॉम्बे बंदरगाह से एक मालवाहक जहाज में बैठकर अपने उस सपने को छूने भारत से बाहर जा रहा था, जो अमेरिकी मरे-लुई डांस कम्पनी के नृत्य को देख उसके जेहन में हमेशा के लिए बस गया था। अस्ताद देबू नाम का युवक बॉम्बे के पोद्दार कॉलेज से बी कॉम पढ़ रहा था। तभी न्यूयॉर्क में नृत्य-अध्ययन कर रही उत्तरा आशा कोइरावाला ने मुंबई का दौरा किया था और अस्ताद देबू की उनसे मुलाकात हुई थी। मार्था ग्राहम और उनके समकालीन नृत्य केंद्र की जानकारी भी उन्हीं से ली थी।

अस्ताद देबू ने लंदन स्कूल ऑफ कंटेम्परेरी डांस से मार्था ग्राहम की आधुनिक नृत्य तकनीक की तालीम ली। इसी बीच उन्होंने यूरोप, अमेरिका, जापान और इंडोनेशिया की यात्राएँ भी की। वे मार्था ग्राहम जैसा कुछ भारत में करना चाहते थे। विश्व नृत्य-परिवेश में इजाडोरा डंकन, लोई फुलर और मौड एलन के बाद मार्था ग्राहम ने अपनी रचनात्मक प्रस्तुतियों से एक महत्वपूर्ण जगह बना ली थी। यहाँ तक कि उन्हें 'पिकासो ऑफ डांस' भी माना जाने लगा था। ऐसा इसलिए कि आधुनिक नृत्य में मार्था के अवदान को, उनके महत्व और प्रभाव को पिकासो की आधुनिक दृश्य कलाओं के समकक्ष माना गया। असल में मार्था ग्राहम ने नृत्य से एक सम्पूर्ण आंदोलन खड़ा किया, जिसने नृत्य की दुनिया में क्रांति ला दी और जो आज आधुनिक नृत्य के रूप में अपनी पहचान रखता है। हालांकि 1960 के दशक से नृत्य में भी नए विचार आना शुरु हो गए थे। उत्तर आधुनिक नृत्य कलाकार अंततः आधुनिक नृत्य की औपचारिकताओं को खारिज करने लगे थे। उस समय एमिल रथ ने लिखा था कि संगीत और लयबद्ध शारीरिक आंदोलन कला की जुड़वां बहनें हैं, गोया उनका अस्तत्वि एक साथ ही आया है।

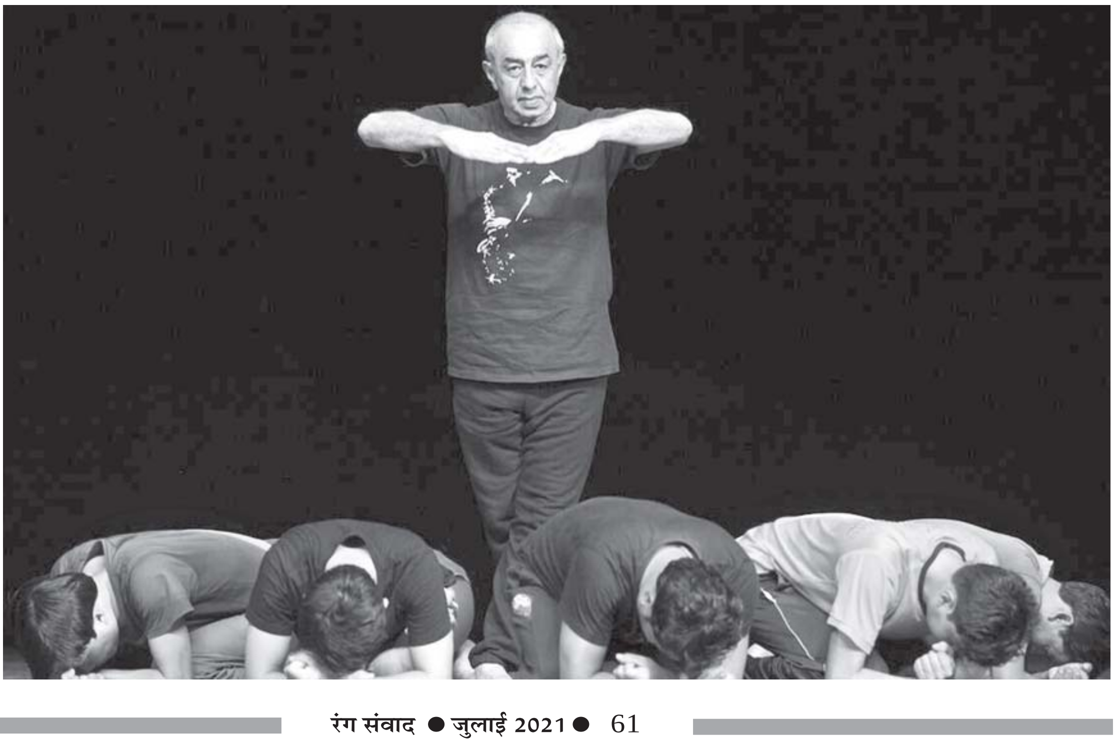

अस्ताद देबू

उस दौरान आधुनिक नृत्य कट्टरपंथी नृत्य की भीड़ से टक्कर लेकर अपने लिए जगह बना रहा था। ये कट्टरपंथी नृत्यम आर्थिक, सामाजिक, जातीय और राजनीतिक संकटों का प्रदर्शन भर करते थे। उनमें नवाचार का सर्वथा अभाव था। जब उत्तर आधुनिक नृत्य विकसित हो रहा था, तब वह सामाजिक और सांस्कृतिक प्रयोग कर रहा था। इसमें उसने विशिष्ट 'स्कूल' या 'शैलियों' का निमार्ण नहीं किया। लेकिन मार्था ग्राहम ने अपनी शैली को बरकरार रखा। संकुचन और फैलाव उनके नृत्य की विशेषता थी, जो बहुत बाद में अस्ताद देबू के नृत्य-संयोजन में देखी जा सकती है।

वर्ष 1977 में अस्ताद देबू भारत आते हैं। वे तब तक अपने सपने के जाल की तंतु-रेखाओं को पहचान चुके थे। वे इसे भारतीय परिवेश में ढालने के लिए उत्सुक थे। एक तरह से वे तमाम उत्कृष्ट शास्त्रीय नृत्यों के बीच समकालीन नृत्य की जगह तलाश रहे थे। जब वे बहुत छोटे थे, तब उन्होंने इंद्रकुमार मोहंती और प्रह्लाद दास से कथक सीखा था। अब वे दुनिया भर के नृत्य से वाकिफ़ हो चुके थे। उन्होंने भारत वापसी के बाद ई कृष्णा पणिक्कर से कथकली का अध्ययन किया। वर्ष 1986 में पियरे कार्डि ने बोलशोई थियेटर बैले कंपनी के लिए उन्हें कोरियोग्राफी का अवसर दिया और यहीं से उन्होंने अपने लिए एक अलग लेकिन भारतीय समकालीन नृत्य के लिए शुरुआती और उल्लेखनीय नक्शा रचना शुरु कर दिया। इसके बाद उन्होंने अपने सपने को अपने करीब पाया और वे बाकायदा अनुशासित और रचनात्मक ढंग से उसे खेलने लगे। आने वाले वर्षों में उन्होंने लंदन के चेल्सिया टाऊन हॉल में पिंक फ्लॉयड के साथ, जमर्नी में वूप्रेतल डांस कम्पनी के लिए पिना बाउस के साथ अपनी रचनात्मक-उपज की साझीदारी की। थंग ता के मार्शल आर्ट्स और मणिपुर के पुंग चोलोम के नृत्यकारों को लेकर भारत में बिलकुल ही नई नृत्य-सृष्टि की सरंचना की। गुंदेचा बंधु के ध्रुपद गायन के साथ भी उन्होंने महत्वपूर्ण प्रस्तुतियां देश-विदेश में की। बधिरों के लिए उन्होंने कई प्रोडक्शन बनाएं। इसके लिए उन्होंने कई वर्षों तक टिम मैकार्थी के साथ वाशिंगटन की एक यूनिवर्सिटी के लिए 'डम्फ परफोर्मिंग आर्ट्स प्रोग्राम' बनाए। मेलबोर्न में हुए बीसवें बधिर ओलंपिक में उन्होंने क्लार्क स्कूल फॉर द डीफ, चेन्नई की बारह महिला कलाकारों को लेकर भागीदारी की। यह बहुत कम लोगों को पता होगा कि उन्होंने मकबूल फिदा हुसैन की बनाई फिल्म मीनाक्षी: ए टेल ऑफथ्री सिटी' के लिए कोरियोग्राफी की है। निराश्रित बच्चों के लिए काम करने वाली एनजीओ 'सलाम बालक ट्रस्ट' के लिए उन्होंने वहीं के बच्चों को लेकर 'ब्रेकिंग बाउंड्री' से प्रस्तुति बनाई। इन बच्चों को छह महीने तक अस्ताद देबू ने अपने दल के साथ प्रशिक्षण दिया। उन्होंने हेमा राजगोपालन, एस गुरुचरण और जार्ज ब्रक्स के साथ मिलकर सुंदर प्रस्तुतियाँ निर्मित कीं। वे देश में भारतीय समकालीन नृत्य की एकमात्र प्रामाणिक और अप्रतिम उपस्थिति थे। उन्हें वर्ष 1996 में संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार और वर्ष 2007 में पद्मश्री मिला। विडम्बना यही है कि समकालीन कला की तरह समकालीन नृत्य की देशव्यापी पहचान नहीं बन पाई है। देश में जितने भी बड़े और महत्वपूर्ण नृत्य-समारोह होते हैं, उनमें समकालीन नृत्य के लिए कोई स्थान नहीं है। यह तो होता ही होगा कि अपने अलग-थलग होने का अहसास उन्हें और अधिक 'रचने के अकेलेपन' में ले जाता होगा। शायद कोई नहीं बता सकता कि यह कला का अकेलापन है या अकेलेपन में किसी जुनून की तरह रची जा रही कला।

अस्ताद देबू ने अपना कोई घर-परिवार नहीं बसाया। वे मुंबई में रहते हैं। पिछले दिनों जब वे किसी अन्य बीमारी की तीमारदारी के लिए अस्पताल गए थे, तो जांच से पता चला कि उन्हें चौथे चरण का कैंसर हैं। उनका स्वास्थ्य लंबे अरसे से ठीक नहीं था और वे फोन पर भी बात नहीं कर पाते थे। उनका न होना समकालीन नृत्य में नए और अनूठे रचे जाने की एक रचनात्मक ज़िद का ख़ामोश हो जाना है।

# नृत्य के गुणी-पारखी

सुनील कोठारी

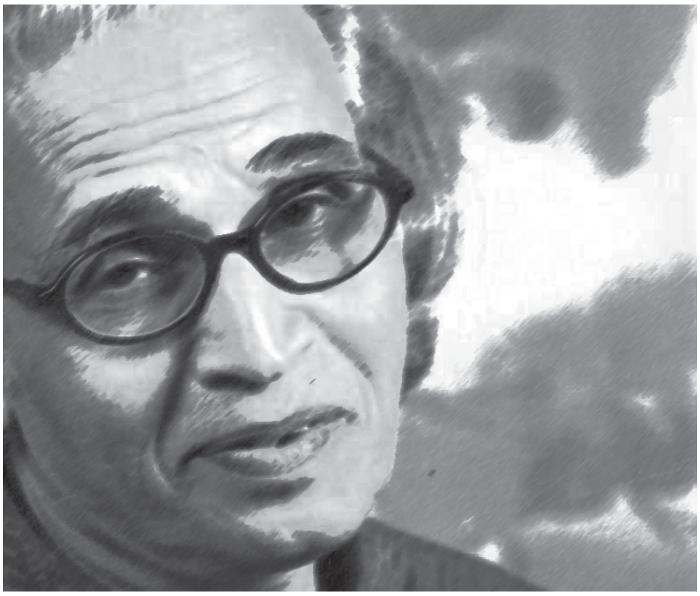

सदियों से चली आ रही नृत्य परंपरा को सैद्धांतिक, दार्शनिक और लोक व्यवहार की कोटियों में देखकर नए संदर्भों में उनकी व्याख्या करने की अकूत बौद्धिक क्षमता उनके पास थी। भारतीय जीवन, संस्कृति, कला और उसके लालित्य के संसार की पारख-परख प्रतिभा से मंडित एक विलक्षण शख़्सियत को हमने खो दिया।

सांस्कृतिक क्षतियों की दुखद स्मृतियों के नाम जब गुज़िश्ता साल 2020 का लेखा-जोखा सामने है, तब दिसंबर की 27 तारीख़ पर जाकर मन बरबस अटक जाता है। मृत्यु फिर सुर्ख़ी बनी। सुनील कोठारी नहीं रहे। सत्यासी की उम्र में उन का निधन हो गया। यह कोविड काल में कला जगत की एक और वरेण्य विभूति के महाप्रयाण की आहत कर देने वाली सूचना थी।

भारतीय शास्त्रीय नृत्य शैलियों के प्रति बेइंतहा लगाव, जिज्ञासा और अध्ययन-अन्वेषण की गहरी दृष्टि रखने वाले कोठारी का जाना इस मायने में बड़ी सांस्कृतिक रिक्तता है कि वे अनेक स्थापित और नवोदित नृत्य प्रतिभाओं तथा कला रसिकों के बीच रचनात्मक संवाद, प्रशिक्षण, सौहार्द और समन्वय के सेतु रहे। यह भी कि सदियों से चली आ रही नृत्य परंपरा को सैद्धांतिक, दार्शनिक और लोक व्यवहार की कोटियों में देखकर नए संदर्भों में उनकी व्याख्या करने की अकूत बौद्धिक क्षमता उनके पास थी। भारतीय जीवन, संस्कृति, कला और उसके लालित्य के संसार की पारख-परख प्रतिभा से मंडित एक विलक्षण शख़्सियत को हमने खो दिया।

नृत्य की लय-ताल, उसका भाव सम्मोहन और मुद्राओं की मोहक छापों को कोठारी की रग-रग में देखा-महसूसा जा सकता था। नृत्य के परिसर में उनकी अपरिहार्य उपस्थिति अलग से ध्यान खींचती थी। मृत्यु से सात दिन पहले उन्होंने अपने जीवन के सत्यासी वर्ष पूरे किये। जन्म दिन दिल्ली के अस्पताल की चार दीवारी में बीता। लगभग ख़ामोश। लेकिन सत्तर सालों के पुरुषार्थी जीवन में उन्होंने जिस बेमिसाल दस्तावेज़ी काम को अंज़ाम दिया, वह भारतीय नृत्य-जगत के लिए मानक की तरह स्वीकारा और सराहा जाता रहेगा। प्रसंगवश यह जानना ज़रुरी है कि सुनील कोठारी ने एक दर्जन से भी अधिक ग्रंथों की रचना की। भारत सरकार ने उन्हें पद्मश्री अलंकरण से विभूषित किया और संगीत नाटक अकादेमी नई दिल्ली ने उन्हें अपने सालाना राष्ट्रीय सम्मान के लिए चुना। जबकि डांस क्रिटिक एसोसिएशन न्यूयॉर्क (यू.एस.ए.) ने लाइफ टाईम अचीवमेंट अवॉर्ड देकर कोठारी की वैश्विक स्वीकृति पर मोहर लगायी।

नृत्य के प्रामाणिक इतिहासवेत्ता और आलोचक के रूप में सुनील कोठारी को देखने वालों के लिए यह विस्मय से जुड़ा पक्ष हो सकता है कि यह कला चिंतक पेशे से चार्टर्ड अकाउंटेंट था। नियति ने अपना काम किया। कोठारी को अंक गणित की नीरस हिसाबी दुनिया रास नहीं आयी। भीतर की कोमल, संवेदनशील रुह की परतों पर ठहरा भावुक कला रसिक उस परिसर

में दाखिल हुआ जहाँ भारतीय जीवन मूल्यों और गौरवशाली सांस्कृतिक परंपराओं की विरासत एक नए अध्याय के रचे जाने की प्रतीक्षा कर रही थी। यक़ीनन, विरासत के नए बखान के लिए समय को एक सुपात्र मिल गया।

इस तारतम्य में सबसे महत्वपूर्ण कार्य कोठारी द्वारा असम की सात्रिय नृत्य शैली पर किया गया गहन शोध है जो 2013 में किताब की शक्ल में शाया हुआ। ग़ौरतलब है कि सोलहवीं शताब्दी में आसाम राज्य के वैष्णवी संत शंकर महादेव ने भक्ति आन्दोलन को जन जागृति से जोड़ने के लिए गीत-संगीत और नृत्य की मिली-जुली शैली का आविष्कार किया। यह शैली सात्रिय कहलायी। यह आसाम के सत्रास अंचल से परवान चढ़ी। दिलचस्प यह कि सुनील कोठारी ने जब इस शैली को देखा तो उसके सुघड़-सात्विक स्वरूप पर वे सम्मोहित हुए। जिज्ञासा इतने गहरे तक उतरी कि कोठारी सात्रिय की नई यात्रा पर निकल पड़े। बरसों तक उन्होंने सत्रास की खाक छानी। वहाँ के नर्तकों-कलाकारों से सात्रिय के सांस्कृतिक इतिहास को जाना। दस्तावेज़ इकट्ठा किये। प्रामाणिकता को जाँचा और बाद में उन्हें लिपिबद्ध किया। मार्ग फाउण्डेशन ने इसे पुस्तकाकार प्रकाशित किया। यहाँ यह उल्लेख करना ज़रुरी है कि भारत की सात मान्य शास्त्रीय नृत्य शैलियों भरतनाट्यम, ओडीसी, कथक, कुची पुड़ी, कथकली, मोहिनीअट्टम और मणिपुरी की फेहरिस्त में आठवाँ नाम अब सात्रिय का भी जुड़ गया है। कोठारी ने प्रतिपादित किया कि नाट्य शास्त्र के सभी सिद्धांतों पर सात्रिय नृत्य खरा है। नृत्य प्रेमी दर्शक जानते ही हैं कि भारत के सभी स्थापित ओर प्रसिद्ध नाट्य समारोहों में अन्य नृत्य शैलियों के साथ आसाम के सात्रिय नृत्य के प्रदर्शन को भी समान वरीयता से शामिल किया जाता है। बहरहाल, सुनील कोठारी के पक्ष में यह भी विशेष महत्व की उपलब्धि है कि उन्होंने महान नर्तक बैले कलाकार पंडित उदयशंकर और भरतनाट्यम की महान नृत्यांगना गुरू रूकमणि देवी अरवडेल की सचित्र जीवन गाथा तैयार की। भारतीय नृत्य की नई दिशाओं की मीमांसा की और भरतनाट्यम, ओडीसी, छाऊ, कथक तथा कुचीपुड़ी आदि पर आलोचनात्मक ग्रंथ लिखे।

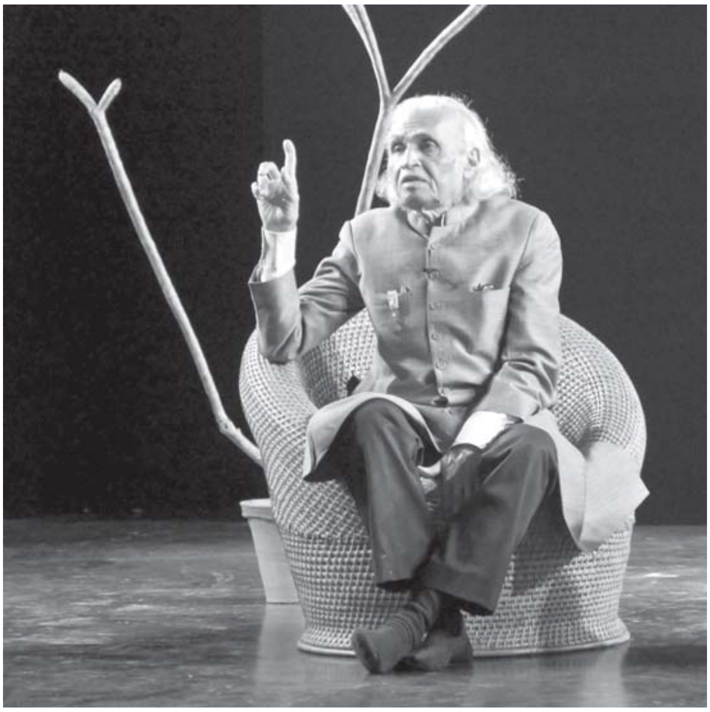

गंभीर बौद्धिक छवि के समानांतर सुनील कोठारी की सहज विनोदी मुद्राएँ भी उनके व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण आयाम थीं। बेशुमार अफ़साने और किस्से! एक रोचक वाक़या ध्रुपद गायक उमाकांत गुंदेचा सुनाते हैं। शिकागो में एक अंतरराष्ट्रीय नृत्योत्सव व सेमिनार आयोजित था। यह आयोजन अमेरिका की घटना 9/11 से दो दिन पूर्व आयोजित था। आयोजन में चंद्रलेखा के द्वारा कोरियोग्राफ'शरीरा' को भी आमंत्रित किया गया। कार्यक्रम का समापन 'शरीरा' से हुआ। इस समारोह में सुनील कोठारी, विदूषी सोनल मानसिंह भी आमंत्रित थे। 'शरीरा' के समापन के बाद डिनर हुआ लेकिन जेटलेग चल रहा था। अत: रात को किसी को भी नींद नहीं आ रही थी। सब बात करने के मूड में थे।

हमने खाने के बाद सबके मूड को देखते हुए कहा कि आप सब लोग हमारे कमरे में चलिए। और सभी होटल के डिनर हॉल से उठकर हमारे कमरे में आए गए। उस समय चन्द्रलेखा, सोनल मानसिंह, सुनील कोठारी और हम तीनों भाई तथा कुछ

अन्य लोग भी जो भारत से गये थे, कमरे में यहां–वहां सेट हो गए। सुनील जी पूरे मूड में थे। वे नृत्य की सभी विधाओं के शीर्षस्थ कलाकारों की नकल स्वयं खड़े होकर कर रहे थे। साथ ही वे उन कलाकारों के अपने बुढ़ापे में कैसे आई–आउच करते हुए नृत्य करेंगे, उसका भी नमूना दिखाते जाते थे। हम सब हँस–हँस के लोटपोट हो रहे थे। भाई अखिलेश ने अपना वीडियो कैमरा ऑन कर रखा था। उस वातावरण में हमें ध्यान ही नहीं रहा कि हम होटल के कमरे में है और पास के कमरे में ठहरे लोगों को नींद में हमारी हँसी–ठिठोली दखल दे रही थी। रात के लगभग दो बज रहे थे। तभी होटल के मैनेजर ने आकर दरवाज़ा खटखटाया और हमें बताया कि पास के कमरे के लोग आपकी बातचीत से परेशान हो रहे हैं। तभी हम सब को इस बात का भान हुआ और हमने अपनी बातें मद्धम आवाज़ में करनी शुरू की। चर्चा लगभग एक घंटे और चली और फिर सब अपने–अपने कमरे की ओर रवाना हुए।

खजुराहो नृत्य समारोह में उनका बरसों–बरस आना होता रहा। मेरा (इस लेखक का) वहीं उनसे परिचय हुआ जो समय के साथ गहराता गया। वे अनेक बार नृत्य से जुड़े मेरे संशयों और सवालों के समाधान बनकर पेश आए। अभिमान से विरत सहज मनुष्यता से अंतरंग सुनील कोठारी नृत्य कला की चलती–फिरती कार्यशाला थे। उनसे आख़री मुलाक़ात गए बरस बिलासपुर के डॉ. सी.वी. रमन विश्वविद्यालय में हुई थी। वे रायगढ़ घराने के कथक पर केन्द्रित कार्यशाला में बतौर विशेषज्ञ आमंत्रित थे। भरतमुनि के नाट्य शास्त्र से लेकर शास्त्रीय नृत्यों के नवाचार, प्रयोग और नई चुनौतियों पर उनसे लंबा संवाद भी हुआ था।

कोठारी जी ने बरसों–बरस अंग्रेज़ी और हिन्दी की पत्र–पत्रिकाओं में लिखा। उनकी प्रतिक्रिया नर्तकों के लिए सबक और सलाह की तरह हुआ करती थी। वे स्मृति और ज्ञान से भरे थे। उनका न होना नृत्य के एक सच्चे गुणग्राहक और मूर्धन्य की अनुपस्थिति है। - **विनय**

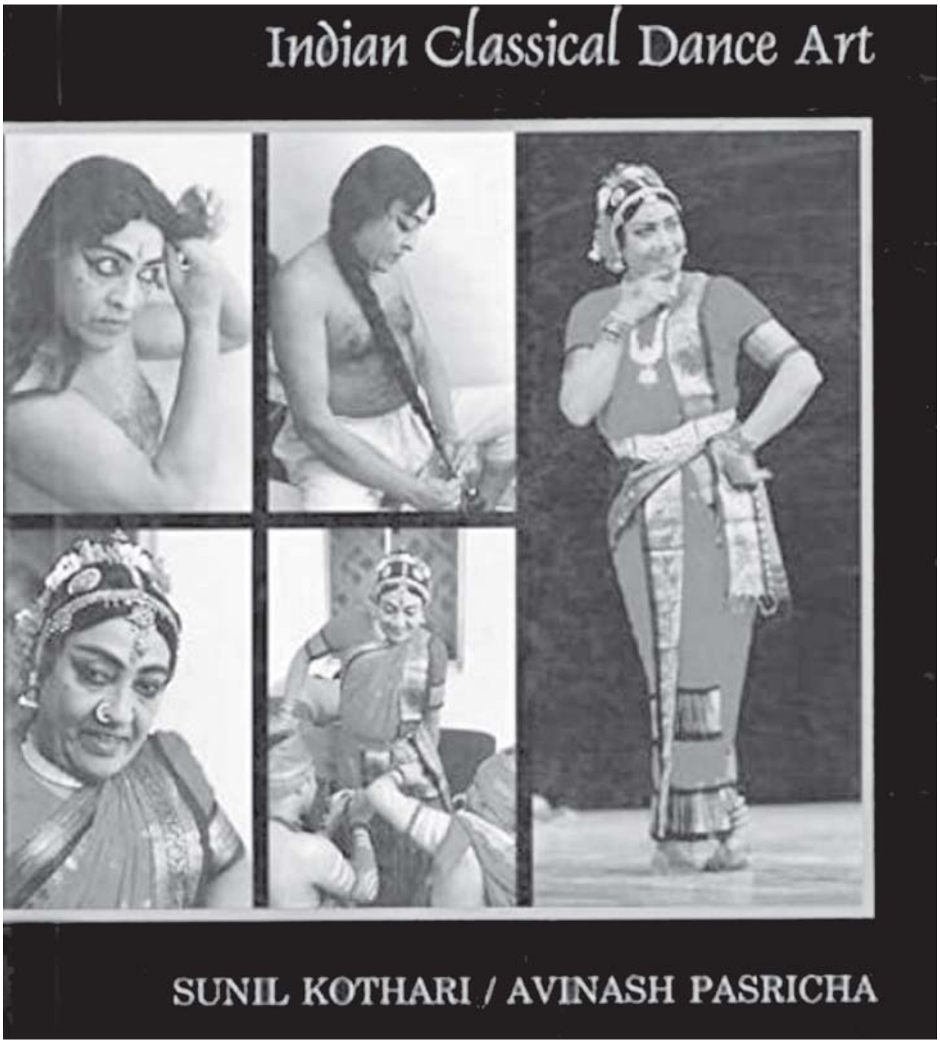


**सुनील कोठारी के पक्ष में यह भी विशेष महत्व की उपलब्धि है कि उन्होंने महान नर्तक बैले कलाकार पंडित उदयशंकर और भरतनाट्यम की महान नृत्यांगना गुरू रूकमणि देवी अरवडेल की सचित्र जीवन गाथा तैयार की। भारतीय नृत्य की नई दिशाओं की मीमांसा की और भरतनाट्यम, ओडीसी, छाऊ, कथक तथा कुचीपुड़ी आदि पर आलोचनात्मक ग्रंथ लिखे।**

# बेमिसाल गायक

**मंजरी सिन्हा**

**वैविध्य भरा विस्तार था उनकी बहुआयामी प्रतिभा का! एक ओर असाधारण गायक के रुप में ख़्याल से लेकर तराना और टप्पा तथा ठुमरी-दादरा से लेकर रूमानी ग़ज़लों तक उनकी आवाज़-ओ-अन्दाज़ का कोई जवाब नहीं था तो दूसरी ओर क्लासिक बंदिशों, ग़ज़लों से लेकर फ़िल्मी गीतों तक के स्वर-संयोजन में उनका कमाल बेमिसाल था!**

उस्ताद गुलाम मुस्तफ़ा

उस्ताद गुलाम मुस्तफ़ा खाँ के निधन से हिंदुस्तानी संगीत जगत ने एक ऐसा बहुआयामी, वरिष्ठ संगीतज्ञ खो दिया है, जिसकी क्षतिपूर्ति कठिन है। रामपुर सहसवान घराने के मूर्धन्य, शलाका-पुरुष उस्ताद गुलाम मुस्तफ़ा खाँ ने ताज़िंदगी एक घरानेदार गायक और गुरु के रुप में अपने घराने की प्रामाणिकता समर्पित निष्ठा से निभाई। भारत सरकार की ओर से पद्मश्री, पद्म भूषण और पद्म-विभूषण जैसे विशिष्ट अलंकरणों के अतिरिक्त शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में अपने महत्वपूर्ण और आजीवन अवदान के लिए उन्हें संगीत नाटक अकादमी अवार्ड, टैगोर-रत्न और तानसेन सम्मान जैसे अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कारों से नवाज़ा गया।

वैविध्य भरा विस्तार था उनकी बहुआयामी प्रतिभा का! एक ओर असाधारण गायक के रुप में ख़्याल से लेकर तराना और टप्पा तथा ठुमरी-दादरा से लेकर रूमानी ग़ज़लों तक उनकी आवाज़-ओ-अन्दाज़ का कोई जवाब नहीं था तो दूसरी ओर क्लासिक बंदिशों, ग़ज़लों से लेकर फ़िल्मी गीतों तक के स्वर-संयोजन में उनका कमाल बेमिसाल था! एक समर्पित गुरु और सदय मार्गदर्शक के रुप में उन्होंने जो शागिर्द तराशे उनमें राशिद खाँ और गुलाम अब्बास खाँ जैसे शास्त्रीय गायकों से लेकर आशा भोंसले, कमल बारोट, हरिहरन, सोनू निगम और शान जैसे ग़ज़ल और फ़िल्मी पार्श्व-गायकों, एआर रहमान जैसे संगीत निर्देशकों-संयोजकों तक का शुमार था।

उनकी पीढ़ी का शायद ही कोई ऐसा उस्ताद मिले जो महज़ अपने शागिर्द का दिल रखने को गिटार और ड्रम वाले माडर्न-संगीत तक में खुले दिल से शामिल हो पाने का जज़्बा रखे और शास्त्रीय गायक के रूप में अर्जित अपनी प्रतिष्ठा को बेहिचक दाँव पर लगाने का जोखिम मोल ले! अपने मुरीद, ए आर रहमान के 'कोक-स्टूडियो' के लिए उन्होंने यह भी किया। लेकिन यहाँ भी ग़ौरतलब बात यह है कि ड्रम-गिटार जैसी आधुनिक फ़्यूज़न वाली संगति के बावजूद अपने शागिर्दों के साथ उन्होंने यमन की जो बंदिश गाई वह लाजवाब थी। 'आओ बलमाँ' के मुखड़े और स्थाई में पिरोई 'फिरत' की पेचीदा तानें गला तैयार करने का अचूक नुस्ख़ा लगती हैं! उत्तर प्रदेश के बदायूँ शहर में तीन मार्च उन्नीस सौ इकतीस (3.3.1931) को उस्ताद गुलाम मुस्तफ़ा

**उनकी फ़िल्म संगीतकार के रूप में असली धूम मची थी मुज़फ्फ़र अली की मशहूर फ़िल्म 'उमराव जान' के संगीत से। उसका गाया झूला-गीत 'झूला किन डारा री अमराइयाँ' अत्यधिक लोकप्रिय हुआ। इसी फ़िल्म की 'भैरव से भैरवी' तक वाली उल्लेखनीय 'राग-माला' को कौन भूल सकता है, जहां रेखा एक अल्हड़ किशोरी की तरह गाना सीखते हुए एक तालीम-याफ़्ता शाइस्ता तवायफ़ में तब्दील होती दिखाई देती हैं। मेरे यह पूछने पर कि राग-माला का ख़्याल उनके ज़ेहन में कैसे आया, उन्होंने बताया-'मुज़फ्फ़र अली साहेब ने जब मुझे उस सीन की सिचुएशन बताई तब बीतता समय दिखाने के लिए मुझे अपने रागों का समय सिद्धांत याद आया।**

खाँ का जन्म रामपुर सहसवान घराने के उस प्रतिष्ठित सांगीतिक परिवार में हुआ जहां उस्ताद इनायत हुसैन खाँ, उस्ताद फ़िदा हुसैन खाँ, उस्ताद मुश्ताक़ हुसैन खाँ और उस्ताद निसार हुसैन खाँ जैसे मशहूर-ओ-मारुफ़ फ़नकारों का जल्वा मुसल्सल तारी रहा। ज़ाहिर है कि कलासिकी मौसिकी तो उन्हें घुट्टी में ही मिली, लेकिन शुरुआती तालीम उन्होंने अपने नाना उस्ताद इनायत खाँ और फिर अपने वालिद वज़ीर खाँ से पाई। उस्ताद इनायत खाँ ख़ुद ग्वालियर घराने के अग्रदूत उस्ताद हद्दू खाँ के शागिर्द थे। लिहाज़ा उस्ताद इनायत खाँ तथा उस्ताद फ़िदा हुसैन खाँ जैसे अपने बुज़ुर्गों की निगहबानी में उन्हें दोनों ही घरानों की ख़ूबियों को जज़्ब करने का माकूल मौका मिला। बचपन से ही सही तालीम और जवानी के ज़बरदस्त रियाज़ ने उनकी सधी हुई आवाज़ को अति-मंद्र से अति-तार सप्तक की व्यापक परिधि में सहूलियत से घूमने की सामर्थ्य और रागदारी की वह गहरी समझ दी जिसकी वजह से अल्पायु से ही वह आकाशवाणी के राष्ट्रीय कार्यक्रमों से लेकर मुल्क की मुख़्तलिफ़ सभाओं तक में आमंत्रित होने लगे और उनकी शोहरत दूर-दूर तक फैलने लगी।

दरअसल दिल्ली सल्तनत उजड़ने के बाद रामपुर दरबार में उन सभी घरानों के फ़नकारों को प्रश्रय मिला जो दिल्ली दरबार की शोभा बढ़ाया करते थे। इस तरह रामपुर सहसवान घराने की गायकी में एक ओर ग्वालियर वाला ठहराव और आगरे वाला ध्रुपद का प्रभाव दिखाई दिया तो दूसरी ओर दिल्ली की तानकारी और अवध के सनदपिया और क़दरपिया जैसे फ़नकारों वाली लखनऊ की ठुमरी, दादरा और टप्पा वगैरह की ख़ुसूसियात जज़्ब हुईं। उस्ताद ग़ुलाम मुस्तफ़ा खाँ की वैविध्य भरी गायकी में इन सभी विशेषताओं का असर साफ़ नज़र आता है, जहां ध्रुपद, धमार, ख़्याल, टप्पा, तराना, ठुमरी, दादरा सभी की ख़ूबियों का इस्तेमाल उन्होंने सूझ-बूझ से किया। उनकी आलाप में केवल आकार ही नहीं बल्कि ध्रुपद के नोम-तोम का प्रयोग और पौरुषमयी आवाज़ है तो ख़्याल की सजावट में आलंकारिक तानों से लेकर हरहराती आकार की, सरगम की, छूट की और टप्पा की पेचीदा तानें है। तराने की तनैती से लेकर ठुमरी-दादरे की रुमानियत तक उनकी गायकी में व्याप्त है, जिसमें हर कहीं उनका अपना ठप्पा और सौंदर्यबोध बहुत साफ दिखाई देता है।

मुझे याद आता है उनके पद्मविभूषण से अलंकृत होने पर लिया उनका एक साक्षात्कार, जब मेरी एक जिज्ञासा पर उन्होंने बताया था कि आचार्य कैलाशचंद्र देव बृहस्पति के साथ शारंगदेव रचित ग्रंथ संगीत रत्नाकर पर आधारित पुरातन जातिगान के प्रयोग से वे कैसे जुड़े। इस संदर्भ में मेरे प्रश्न का प्रत्युत्तर उन्होंने एक ठहाके के साथ याददाश्त टटोलते हुए दिया था- 'उस ज़माने में आचार्य जी आकाशवाणी के प्रोग्राम अधिकारी भी थे। वहीं आकाशवाणी के नेशनल प्रोग्राम में एक बार उन्होंने मुझे गाते हुए सुना और देखा कि साढ़े-तीन सप्तक की सपाट तान निष्प्रयास सहजता से लेकर कैसे मैं कोमल ऋषभ पर क्षण भर न्यास करते हुए सा पर आया। इससे उन्हें इस बात का पूरा विश्वास हो गया कि मुझमें तैयारी के अलावा सूक्ष्मतम श्रुतियों की समझ भी है। उन्होंने उस प्रोजेक्ट में मुझे इसीलिए शामिल किया क्योंकि मुझसे पहले उन्हें ऐसा कोई गायक नहीं मिला था जो उन ग्रंथों में उद्धृत सिद्धांतों को, जिसे वह प्रमाणित करना चाहते थे, गाकर प्रयोगात्मक रुप से दिखा सके।

फ़िल्मों से उनके जुड़ाव के बारे में पूछने पर उन्होंने याद किया था कि जिस जमाने में वे देश-

विदेश में क्लासिकल कंसर्ट देने में व्यस्त थे, उन्हें सबसे पहले मराठी और गुजराती फ़िल्मों में गाने का निमंत्रण मिला। मृणाल सेन की 'भुवन शोम' शायद पहली हिंदी फ़िल्म थी जिसके लिए उन्होंने गाया था। उसके बाद विजय राघव राव की 'बदनाम बस्ती' के अलावा फ़िल्म्ज़ डिविज़न के लगभग सत्तर वृत्त-चित्रों में संगीत दिया, जिनमें से कई को राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिले। यह सुन कर मुझे सुखद आश्चर्य हुआ कि किसी जर्मन फ़िल्मकार की जयपुर में बनाई फ़िल्म के लिए न केवल उन्होंने संगीत संयोजन किया और गाया बल्कि उसके मुख्य चरित्र बैजू बावरा की भूमिका भी निभाई। यद्यपि यह बात उन्होंने काफ़ी सकुचाते हुए बताई थी। उनकी फ़िल्म संगीतकार के रूप में असली धूम मची थी मुज़फ़्फ़र अली की मशहूर फ़िल्म 'उमराव जान' के संगीत से। उसका गाया झूला-गीत 'झूला किन डारा री अमराइयाँ' अत्यधिक लोकप्रिय हुआ। इसी फ़िल्म की 'भैरव से भैरवी' तक वाली उल्लेखनीय 'राग-माला' को कौन भूल सकता है, जहां रेखा एक अल्हड़ किशोरी की तरह गाना सीखते हुए एक तालीम-याफ़्ता शाइस्ता तवायफ़ में तब्दील होती दिखाई देती हैं। मेरे यह पूछने पर कि राग-माला का ख़्याल उनके ज़ेहन में कैसे आया, उन्होंने बताया 'मुज़फ़्फ़र अली साहेब ने जब मुझे उस सीन की सिचुएशन बताई तब बीतता समय दिखाने के लिए मुझे अपने रागों का समय सिद्धांत याद आया। आप याद कीजिए पहली बंदिश 'प्रथम धर ध्यान श्री गणेश' प्रात: कालीन राग भैरव में है जो किसी भी शुभ काम को शुरु करने के पहले विघ्नहर्ता गणेश जी को याद करने के विधान का भी पालन करती है। उसके बाद दिन आगे बढ़ता है पूर्वाह्न में गाए जाने वाले राग तोड़ी की बंदिश 'अब मोरी नैया पार करो तुम हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया' के साथ। इसके बाद मध्याह्न के राग सारंग में 'सगुन बिचारो बमना', दोपहर की भीमपलासी बंदिश 'बिरज में धूम मची', सायंकालीन यमन में 'दर्शन देहो शंकर महादेव', मध्यरात्रि के मालकौंस में 'पकरत बहियाँ' और भोर की भैरवी में अंतिम बंदिश 'बांसुरी बाज रही' के साथ जब पूरा चक्र संपन्न होता है तबतक भोली-भालीं किशोरी रेखा जवान हो चुकी है, और गान-कला में पारंगत भी!' सचमुच प्रसंगानुकूल राग-माला की इस दूरदर्शी सोच के लिए उनकी कल्पनाशीलता की दाद देनी पड़ेगी!

उनके किसी और ख़ास शौक़ के बारे में पूछा तो बेहद सादगी और मासूमियत से उन्होंने दो टूक जवाब दिया था 'अच्छी शायरी और मौसीक़ी मिल जाए तो किसी और चीज़ की तलब नहीं रहती।' शायरी पर बात नज़्म और ग़ज़लों तक आ पहुँची तो मेरा अगला सवाल था कि वे इतनी पुर-असर तर्ज़ें कैसे बनाते हैं? मुझे आज भी उनका संजीदगी भरा जवाब याद है, जिसने उनकी बांधी ग़ज़लों के दिल छू लेने वाले मार्मिक राज़ का पर्दाफ़ाश किया था- 'पहले ग़ज़लियात को बारहा पढ़ कर दिल से महसूस करता हूँ, तब जाकर कंपोज़ कर पाता हूँ, हो सकता है यही मसलेहत हो!' वे हिन्दुस्तानी तहज़ीब में रचे-बसे संपूर्ण गायक थे।

# संगीत में नए विमर्श की तलाश

मुकुंद लाठ

**मुकुंद लाठ अपने चिंतन में समय से परे जाकर विशिष्ट और प्रामाणिक तथ्यों के साथ उधेड़बुन में रचना-रस रहा करते थे। कला में अमूर्त की भारतीय धारणा और परम्परा की खोज के लिए भी उन्होंने अथक काम किया है। उनका समूचा चिंतन औपचारिक-सैद्धान्तिक शैली से हटकर सम्वाद की कहन-शैली में रहा है। मुकुंद लाठ कला-संस्कृति-इतिहास से जुड़े कई प्राचीन गन्थों का अनुवाद और विवेचन किया हैं।**

कला और संगीत-चिंतन में बीती सदी के अंतिम चौथाई समय और नई सदी के पहले पहल में हिंदी में जो गाँव बस रहा था, वह अब उजड़ गया है। कला-संगीत विमर्श को अपने सर्वथा नव-दृष्टिकोण से सुरुचिपूर्ण गद्य में लिखने वाले मुकुंद लाठ का जाना भले ही इस समय की नोटिस लेने वाली तात्कालीन खबर नहीं बन पाया, लेकिन यह भागते-दौड़ते वक़्त में न मालूम कितने लंबे दौर तक भारतीय संस्कृति में खालीपन से उपजे, साएं-साएं करते ध्वनि-आभास में व्यक्त होता रहेगा।

मुझे नहीं मालूम कि कला-नृत्य-संगीत की अभी-अभी परिदृश्य में उभरी नई पीढ़ी उन्हें कितना जानती-समझती है। वैसे भी अमूमन सभी पीढ़ियों के अधिकांश मूर्धन्य कलाकारों के लिए उनका साधना-अनुशासन प्रायः विचार-विमर्श की धरती से बहूत दूर स्थित किसी ग्रह की तरह ही रहा है। यद्यपि विचार-चिंतन की कला-संगीत में लंबी परम्परा रही है। भारत में कुछ ही संस्थाओं और गिने-चुने व्यक्तिगत प्रयासों से इस चिंतन का संरक्षण, दस्तावेजीकरण और यत्र-तत्र प्रकाशन होता रहा है, लेकिन शेष (अधिकांश) कला-संसार इस तरह के उपक्रमों में कोई दिचचस्पी नहीं लेता, बल्कि इस सबसे एक निश्चित दूरी पर खड़े हो बचता रहा है।

मुकुंद लाठ का व्यक्तित्व और कृतित्व बहुआयामी रहा। वे शिक्षक, इतिहासकार, दार्शनिक, कवि और कला-पारखी थे। वे हमेशा उदार और विनम्र रहे। बौद्धिक आक्रामकता को उन्होंने कभी अपने पर हावी होने नहीं दिया। वे मारवाड़ी पृष्ठभूमि से आए थे। उनके परिजन बहुत पहले ही समझ गए थे कि वे व्यापार के लिए नहीं बने हैं। बयासी वर्ष की अपनी उम्र को उन्होंने एक विशिष्ट उद्देश्य और अपूर्व धैर्य के साथ जिया। उनका पहला कविता संग्रह 'अनरहनी रहने दो' 75 वर्ष की उम्र में आया था। दिल्ली विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में ग्रेजुएशन करने के बाद उन्होंने जाधवपुर विश्वविद्यालय, कोलकाता से संस्कृत साहित्य में मास्टर डिग्री ली। वे भारतीय संगीत को भारत की शिल्प परम्पराओं से जोड़कर देखने का अभ्यास करते रहे। चित्रों और मूर्तियों के साक्ष्य से संगीत-जगत की बारीकियों में उतरना उन्हें पसन्द था। वे अपनी भावभरी कल्पनाओं

को ठोस प्रमाण के आलोक में प्रस्तुत करते थे। कलाओं की निर्मिति और उनसे उपलब्ध मानवीय अनुभव के सरोकार में विचार-चहलकदमी करना ही उनका रचनात्मक शगल रहा। उन्होंने पंडित जसराज से गायन भी सीखा, ताकि वे उसकी आत्मा को समझ पाए। ध्रुपद गायन में उनके द्वारा किया गया चिंतन, उस विधा के लिए किसी अमूल्य धरोहर से कम नहीं है।

ये मुकुंद लाठ ही थे, जो कह सकते थे कि कुमार गन्धर्व आधुनिक गायक थे। वे कुमार गन्धर्व को क्रांतिकारी संगीतज्ञ मानते थे। उनका मानना था कि परम्परा से हटकर उन्होंने सार्थक सृजन किया था, तब वे आधुनिक क्यों नहीं कहलाते। वे कुमार गन्धर्व के गायन में शब्द-प्रयोग की बात नहीं करते हुए उनके बोध, मानस और दृष्टि की तरफसंकेत करते हैं। जब कोई चित्रकार या स्थापत्यकार आधुनिक हो सकता है, तो कुमार गन्धर्व क्यों नहीं। वे कहते हैं-कुमार जी के गायन में एक ऐसी पुकार है, हूक है, जो जानती है कि इसका उत्तर कभी नहीं मिलेगा। एक विरह है, लेकिन ऐसा कुछ पता नहीं चलता कि यह किसके लिए विरह है। ऐसा कविता में हो तो सहज ही वह कविता आधुनिक हो जाती है। कुमार जी के गायन में आधुनिक बोध वही है, जो चित्र या शिल्प में होता है। हम अन्य कला-अनुशासनों के लिए पश्चिम से आया आधुनिक, उत्तर आधुनिक और इसके बाद की पदावली का उपयोग सरलता से कर लेते हैं। आखिर माजरा क्या है? आधुनिक का कुमार गन्धर्व से कोई मेल क्यों नहीं है। पश्चिम के साथ आधुनिक रच-बस गया है, लेकिन भारतीय नृत्य-संगीत कितना ही नया हो, नवाचारी हो, पारम्परिक ही बना रहता है। राग-संगीत तो बनता ही आलाप से है, जिसमें नयापन घुट्टी में ही मिला रहता है। अंततः सार्थक नया या आधुनिक किसी पुराने से ही उपजता है। समझा जा सकता है कि मुकुंद लाठ अपने चिंतन में समय से परे जाकर विशिष्ट और प्रामाणिक तथ्यों के साथ उधेड़बुन में रचनारस रहा करते थे। कला में अमूर्त की भारतीय धारणा और परम्परा की खोज के लिए भी उन्होंने अथक काम किया है।

उन्होंने प्रसिद्ध प्राचीन कारिका में दिए गए चित्र के छह अंगों पर व्यापक व्याख्या की है। वे चित्र साधना को ही मूर्त की साधना मानते थे। बल्कि गहरे अर्थ में अमूर्त को सार्थक मूर्त रूप देने की साधना ही मानते थे। उनके अनुसार कला हमारे अंतर्मन के अमूर्त अनुभव को बाहर सार्थक मूर्त रूप देती है। उनका यह भी मानना रहा कि एब्सट्रेक्ट और नान-फिगरेटिव (जिसे अमूर्त कहा गया) कि प्रवर्ति चली आ रही पूर्व साधना को नकारने और उससे हट जाने की है, जो कला के अपने कर्म को, अपने माध्यम को, अपनी रूप-साधना के स्वातंर्त्य को गरिमा और अलग महिमा प्रदान करने की है। हालांकि मुकुंद लाठ माध्यम की दृष्टि से एक ही कला को अमूर्त मानते थे और वह है कविता और साहित्य। उनके मुताबिक-काव्य का माध्यम शब्द, अर्थ के बिना नहीं बनता और अर्थ इन्द्रीयगम्य नहीं, बुद्धिगम्य ही होते हैं। क्योंकि अर्थ में सामान्य का समावेश होता है। सामान्य विशुद्ध बुद्धि का ही विषय हो सकता है।

मुकुंद लाठ हमेशा इस बात पर अडिग रहे कि चित्र कभी अमूर्त, मूर्ति-हीन या आकृतिहीन नहीं होता। वे चित्र-साधना को ही आकृति की साधना मानते थे, अरुप की नहीं। वे मानते रहे कि चित्र बड़े ठोस रुप में मूर्त होता है। उसका माध्यम भी मूर्त होता है। उनका समूचा चिंतन औपचारिक-सैद्धान्तिक शैली से हटकर सम्वाद की कहन-शैली में रहा है। उन्होंने कला-संस्कृति-इतिहास से जुड़े कई प्राचीन गन्थों का अनुवाद और विवेचन किया हैं उनकी अपनी कई महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं, जिनमें 'ट्रांसफॉर्मेशन ऐज क्रिएशन', 'संगीत एवं चिंतन', 'कर्म चेतना के आयाम', 'क्या है, क्या नहीं है' प्रमुख हैं। उन्होंने संस्कृत मुक्तकों (स्वीकरण) का सुंदर हिंदी रूपांतर भी किया है। वे संगीत नाटक अकादमी के फेलो रहे हैं। उन्हें वर्ष 2010 में पद्मश्री से विभूषित किया।

ध्रुपद गायक गुंदेचा बंधु उनकी आत्मीयता से अभिभूत होकर उन्हें दादा कहते थे। उमाकांत गुंदेचा उन्हें इस तरह याद करते हैं- संगीत पर उनका लेखन मौलिक चिंतन युक्त होता था। उनसे बात करना आनन्ददायी और ज्ञानवर्धक होता था। उनकी लिखी पुस्तक 'संगीत और चिंतन' को रमाकांत हमारे शिष्यों को संगीत की गीता बताता था। वे ध्रुपद के भविष्य के प्रति आश्वस्त थे। - **राकेश श्रीमाल**

# कविता में जीवन-राग

मंगलेश डबराल

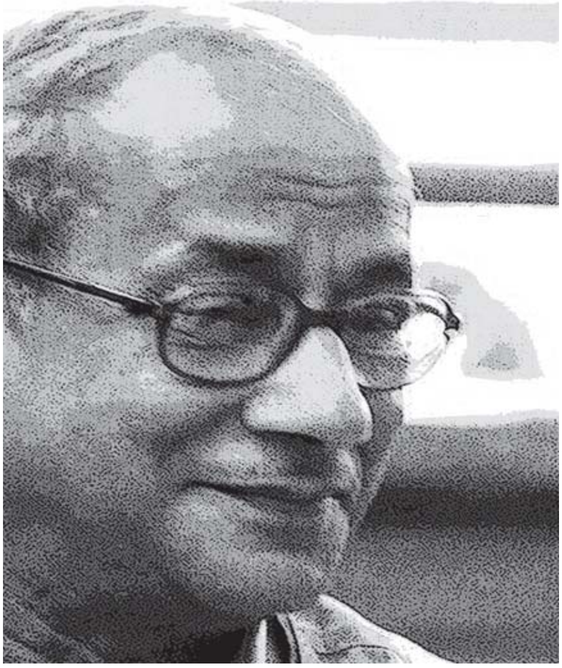

'पहाड़ पर लालटेन' की रोशनी में ज़िंदगी के सबक सीखकर कला और कविता की दुनियाँ में पूरे दमखम से दाखिल हुए मंगलेश डबराल, एक मुद्दत बाद दिल्ली से भोपाल आये थे। भोपाल से यूँ उनका राब्ता पुराना था। वे म.प्र. के संस्कृति महकमे की ओर से कला परिषद और बाद में भारत भवन की साहित्यिक पत्रिका 'पूर्वग्रह' के सहायक संपादक की हैसियत से एक मुद्दत तक जुड़े रहे। लिहाज़ा रिश्ता मैत्री का भी इस शहर से दूर तक बना रहा। इस दफा निमित्त बना था, कथाकार संतोष चौबे का भारतीय ज्ञानपीठ से छपकर आया उपन्यास 'जलतरंग' का लोकार्पण। अलावा इसके आईसेक्ट स्टूडियो में लंबी वार्ता की और वनमाली सृजन पीठ के इसरार पर एक सुबह अध्ययन शोध केंद्र आए। उन्होंने जिज्ञासु युवा कलाकारों से दिलचस्प और ज्ञानवर्धक सांस्कृतिक संवाद किया। कुछ नई पुरानी कविताएँ भी सुनाई। स्टूडियो में कविता, कला और संगीत के परस्पर रिश्तों के साथ ही इस दौर की सांस्कृतिक और सामाजिक चिंताओं पर रंग संवाद के संपादक ***विनय उपाध्याय*** और वरिष्ठ कवि ***बलराम गुमास्ता*** ने मिलकर कुछ सवाल किये और मंगलेश अपने तजुरबे के साथ मुखर होते चले गये। ......उन्हें बहुत मन से याद करते हुए हुए प्रस्तुत है इस विरल संवाद के कुछ अंश।

● मेरे पिता गढ़वाली के भी कवि थे और उनकी तीन-चार पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं। उन्होंने खण्डकाव्य भी लिखा था कन्या विक्रय की प्रथा पर, उसका नाम था- 'फ्यूंली और सत्यनारायण की कथा, जो कि हमारे यहाँ सब जगह प्रचलित है, उन्होंने गढ़वाली भाषा में छन्दबद्ध अनुवाद किया था और उन्हीं छन्दों में अनुवाद किया था जिन छन्दों में वो मूल कथा लिखी गयी है। उनको बहुत अच्छा छन्द ज्ञान था। मेरे दादा ख़ुद भी साहित्य, ज्योतिष और वैद्यिकी माने आयुर्वेद के गहरे जानकार थे। उन्होंने भी गढ़वाली कहावतों का एक बड़ा संग्रह तैयार किया था। हमारे घर में बहुत-सी किताबें थीं, मुझे पढ़ने को मिलीं। संस्कृत का काफी बोलबाला था। बचपन में मैंने बहुत सारी चीज़ें संस्कृत की पढ़ ली थीं इस तरह की। 'मेघदूत' या जयशंकर प्रसाद का 'आँसू' मैंने काफी छोटी उम्र में ही पढ़ लिये थे और कण्ठस्थ कर लिये थे।

● मुझे लगता है कि जो आपकी पुरानी कविता है, मसलन तुलसी की है, कबीर की है या सूरदास की है या भक्तिकाल की जितनी कविता है, बाकायदा संगीत में उनको ढाला गया है। संगीत के साँचे में उनको भेजा गया है। यानी वो एक विधा का दूसरी विधा में जाना था। सूरदास का पद मान लीजिये किसी राग में, बिलावल राग में प्रस्तुत किया गया। कबीर के जो पद हैं, उनका गुरुवाणी, गुरुग्रन्थ साहिब में बाकायदा रागों के साथ उल्लेख हैं। राग और ताल उसमें मिलते हैं- राग केदार और ताल। यानी उनको गाया गया। यह कहा जाता है कि गुरुग्रन्थ साहिब के दौर में, गुरुनानक के दौर में उन पदों का बाकायदा गायन हुआ और उसी के बाद उनका राग निर्धारण भी हुआ। उससे पहले ये उल्लेख नहीं मिलता है कि कबीर अपने पदों को गाते थे या नहीं गाते थे। ऐसा कोई उल्लेख नहीं है या जितने हमारे छन्द हैं वो सब गाये जाते थे, कुछ वैदिक छन्दों को छोड़कर, जैसे अनुष्टुप वगैरह-वगैरह।

• मेरे मन में आधुनिक कविता के संगीत की जो बात है, वो यही है कि उस कविता के भीतर से ही वो संगीत उपजेगा। मसलन, रघुवीर सहाय की एक कविता है– 'दे दिया जाता हूँ'। बहुत सुन्दर कविता है। मुझे बहुत प्रिय है। उसके साथ मैं कल्पना करता हूँ कि एक हल्का-सा सरोद बज रहा हो और वो सरोद आपकी ओर नहीं आ रहा हो, बल्कि आपसे दूर जा रहा हो। इस तरह का संगीत अगर हो, तो मुझे लगता है कि वो उस कविता के साथ न्याय होगा।

• शब्द और संगीत, इसके रिश्ते के बारे में शायद गहराई से सोचा जाना चाहिए। लेकिन मैं यहाँ पर एक बात ज़रूर कहना चाहता हूँ कि वो पद जो गेय हैं, जब उनका गायन होता है तो यह देखा गया है, मेरे ख्याल से अमीर ख़ाँ साहब और कुमार गन्धर्व, दो लोगों को छोड़कर बाकी जो गायन है, उसमें कभी भी शब्दों को, उनके अर्थों को प्रमुखता नहीं दी गयी। होता यह है कि 'कौन ठगवा नगरिया लूटल हो' जब हम कुमार गन्धर्व जी से सुनते हैं तो उसका अर्थ हमारे सामने खुलता है, वर्ड्स के अनेक स्तर हमारे सामने आते हैं और संगीत भी आता है। लेकिन जब कोई दूसरा गायक इसको गाता है तो वो अर्थ हमारी समझ में नहीं आता। क्योंकि वहाँ संगीत शब्दों पर हावी हो जाता है। तो ऐसा तरीका निकाला जाये कि संगीत शब्दों पर हावी न हो, तो शायद मुझे लगता है कि कविता के लिए उपयुक्त संगीत होगा। हाँ, मराठी में नाट्य संगीत है जिसमें कि बहुत अच्छे-अच्छे पद गाये गये हैं।

**ब्रेख्त कहते थे न कि– 'हंगरी मैन, गो टु द बुक, इट्स ए वीपन।'– भूखे आदमी, किताब की ओर जाओ, यह एक हथियार है।' लेकिन यहाँ कहा जाता है कि भूखे आदमी को क्या मतलब है किताब से! उसको पहले रोटी चाहिए।**

• चाहे इलेक्ट्रॉनिक मीडिया हो या प्रिंट मीडिया हो। साहित्यिक पत्रकारिता लगभग समाप्त हो गयी है। जब मैंने शुरु किया था, जब मैंने अख़बारों में पत्रकारिता शुरू की, उन दिनों हम लोग कम से कम यही मानते थे कि लोगों को साहित्य की उतनी ही ज़रुरत है जितनी कि खेलकूद की ज़रुरत है। उसको हम लोग बहुत कवरेज देते थे। अब शायद सोशल मीडिया पर ब्लॉग या इन पर साहित्यिक गतिविधि बढ़ रही है और मुझे लगता है कि यह एक अच्छी बात है। इसके माध्यम से कुछ अच्छी चीज़ें सामने आएँ, एक उम्मीद बनती है।

• पत्रिकाएँ इस समय हिन्दी में बहुत ज्यादा हैं। इस समय हिन्दी में इतनी ज्यादा पत्रिकाएँ हैं जितनी शायद कभी भी नहीं रहीं। इतनी पत्रिकाएँ उस समय भी नहीं रहीं, जब हिन्दी में लघु पत्रिका आन्दोलन चल रहा था– 71, 72, 73 के आसपास। पत्रिकाएँ इसलिए बहुत ज्यादा हैं, क्योंकि विज्ञापन मिल जाते हैं। लेकिन उनमें कोई ऐसा पर्सपेक्टिव नहीं दे पा रही हैं ये सारी पत्रिकाएँ साहित्य को और न उनके ज़रिये कोई नयी रचना सामने आ रही है, क्योंकि उनमें सम्पादकीय विवेक नज़र नहीं आता। बहुत-सी पत्रिकाएँ ऐसी रही हैं, जैसे 'कल्पना' नाम की पत्रिका थी, 'आलोचना' थी, 'पहल' थी जिसमें छपना शायद एक बड़े गर्व की बात मानी जाती थी। उस समय यह माना जाता था कि 'कल्पना' में आपकी कविता छप गयी है तो आप कवि हो गये हैं। उस समय छपना मुश्किल काम था। आज तो छपना बहुत आसान हो गया। उनमें कोई सम्पादन नहीं मिलता है। मुझे लगता है कि पत्रिकाओं का यह काम है कि वो अच्छे साहित्य को रेखांकित करें।

• हमारे यहाँ लोगों में पुस्तक पढ़ने का संस्कार नहीं है। दूसरा, साहित्य में और आम आदमी की जो दुनिया है उसके बीच में गैप बहुत बड़ा है और ये गैप कल्चरल ही नहीं है, ये एक पॉलिटिकल गैप है। इसकी पूरी एक पॉलिटिक्स है। इसकी पूरी एक राजनीति-सी है। राजनीति ये है– जो ब्रेख्त कहते थे न कि– 'हंगरी मैन, गो टु द बुक, इट्स ए वीपन।'– भूखे आदमी, किताब की ओर जाओ, यह एक हथियार है।' ये स्थिति है, लेकिन यहाँ कहा जाता है कि भूखे आदमी को क्या मतलब है किताब से, उसको पहले रोटी चाहिए। रोटी तो चाहिए ही चाहिए, लेकिन उसको रोटी के अलावा किताब भी चाहिए। ये जो पूरी पॉलिटिक्स है, हमारे देश की जो एक भेड़चाल पूरी जारी है, इसकी पूरी कोशिश राजनीति करती आ रही है। और नहीं, तो क्या वजह है?

• लेखक के संसार में आप जब प्रवेश करते हैं तो उसका संसार दूसरों के संसार से कुछ अलग होगा, उसकी अपनी कुछ शर्तें होंगी– मुझे लगता है कि उन शर्तों को मानकर ही आप प्रवेश करें तो शायद बेहतर होगा।

# और वो मनुष्यता का 'प्रार्थना गीत' बन गया

अजय बोकिल

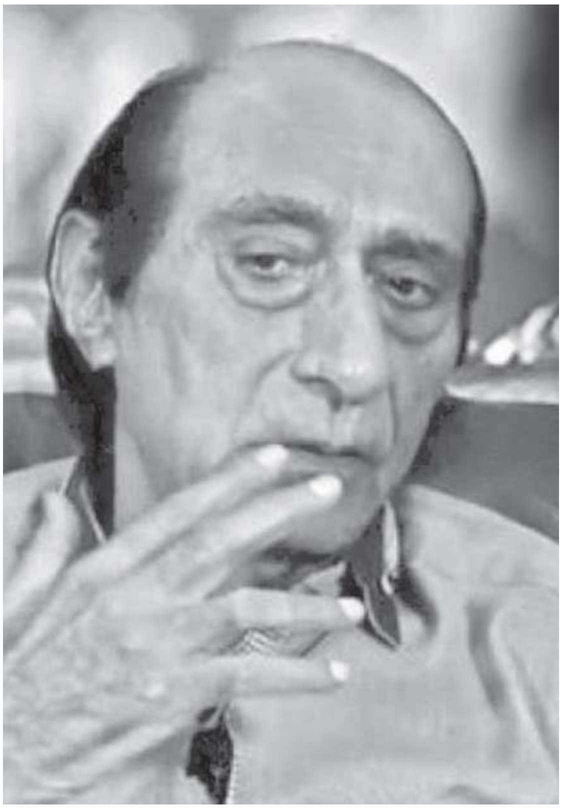

**जैसे कि 'उसने कहा था' कहानी ने चंद्रधर शर्मा गुलेरी को हिंदी साहित्य में अमर कर दिया, कुछ उसी तरह एक प्रार्थना गीत 'इतनी शक्ति हमें देना दाता' ने गीतकार अभिलाष को न केवल फिल्मी गीतों के इतिहास में अटल स्थान दे दिया, बल्कि प्रार्थना गीतों के रुप में फिल्मी गीतों की हमारे जीवन में घुसपैठ को नया आयाम भी दिया।**

हाल में दिवंगत सिने गीतकार अभिलाष के इस स्मृति क्षण में जानना दिलचस्प है कि बीते सात दशकों में हिंदी सिनेमा के ऐसे श्रेष्ठ पांच फिल्मी प्रार्थना गीत कौन से हैं, जो हमारे कई स्कूलों की प्रार्थना सभाओं और विभिन्न संस्थाओं के थीम सांग बन गए हैं। फिल्मी से इल्मी गीतों का सफर तय करने वाले ये प्रार्थना गीत, उन फिल्मी भक्ति गीतों से अलग हैं, जिनमें केवल ईश्वर की स्तुति है। इन प्रार्थना गीतों में केवल ईश्वर के स्तुति गान से हटकर मनुष्य के संपूर्ण मानव बनने की प्रार्थना है। अपने भीतर छिपे देवत्व को जगाने के लिए प्रेरणा और ऊर्जा प्रदान करने का आह्वान है।

सिने गीतकार अभिलाष की फिल्म जगत में बतौर गीत लेखक सीमित सफलताओं और आर्थिक कड़की की कई कहानियाँ अब सामने आ रही हैं। यूं फिल्मों में श्रेष्ठ लिखने और गीत लेखन के माध्यम से यश और धन कमाने के बीच कोई सीधा रिश्ता नहीं है। शैलेन्द्र, साहिर, गुलजार जैसे महान फिल्मी गीतकारों ने प्रसिद्धी, पैसा कमाया साथ ही कलात्मक ऊँचाइयों के मानदंड भी कायम किए। आम जन के दुख दर्द को गीतों में सजाते रहे। आनंद बख्शी, समीर जैसे गीतकारों ने खूब लिखा और कमाया भी लेकिन उनकी रचनाओं में अपेक्षित साहित्यिक बुलंदी या काव्यात्मक तत्व सीमित रहा। बहुत से लोग साहित्यिक गीतों के मुकाबले फिल्मी गीतों को दोयम दर्जे का मानते हैं, क्योंकि उनमें रचनात्मक स्वतंत्रता नहीं होती। बावजूद इसके कई गीतकारों ने इस विधा में भी ऐसा कौशल अर्जित किया कि फिल्मी गीतों ने अपनी स्वतंत्र

**अभिलाष के इस प्रार्थना गीत में भी समूचे मानव समाज की निस्वार्थता का गरिमामय गान है और यह भाव शाश्वत रखने की शक्ति देने परमपिता से विनती है। यह विनती किसी भी मन की हो सकती है। ज्यादातर प्रार्थना गीतों में सामूहिक कल्याण, दुष्टता का नाश, सब पर कृपा बरसाने की गुहार तो होती है, लेकिन स्वयं पर प्रश्नवाचक चिन्ह लगाने वाला यह शायद अनोखा प्रार्थना गीत हैं। कहते है कि अभिलाष ने यह गीत भी कई पुराने मुखड़ों को डायरेक्टर द्वारा रिजेक्ट किए जाने के बाद कुछ झुंझलाहट में ही लिखा था। लेकिन इस गीत के बोलो में मानो मनुष्य की आत्मा ही बोल पड़ी। एक फिल्मी प्रार्थना गीत, मनुष्यता का प्रार्थना गीत बन गया।**

सत्ता स्थापित कर ली। समंदर के मोतियों की तरह ये फिल्मी गीत अब हमारी सांस्कृतिक विरासत का अटूट हिस्सा हैं। करोड़ों लोगों के प्रेरणा स्रोत हैं। ये वो गीत हैं, जो उम्र के हर मोड़ के साझीदार हैं। बदलते जज़्बात और अरमानों के साक्षी हैं। ये सिलसिला निरंतर है।

यूं तो ये फिल्मी गीत कई प्रकार के हैं, अलग अलग चरित्रों और सिचुएशन के हिसाब से रचे गए हैं। विभिन्न रसों में पगे हैं। मसलन प्रेम गीत, शोक गीत, विरह गीत, शांत गीत, हास्य गीत, श्रृंगार गीत, बाल गीत, युद्ध गीत, भक्ति गीत, नृत्य गीत, लोक गीत आदि। इन सबमें 'प्रार्थना गीतों' का अलग मुकाम है। क्योंकि ये पूरे मानव समाज को एक सामूहिक रूप से नैतिक शक्ति देने का आह्वान करते हैं। मेरी दृष्टि में (इस पर मतभेद संभव है और स्वागतेय है) अब तक के सर्वश्रेष्ठ पांच प्रार्थना गीत इस क्रम में हो सकते हैं 1. इतनी शक्ति हमें देना दाता, मन का विश्वास कमजोर हो ना 2. हम को मन की शक्ति देना, मन विजय करें 3. तुम आशा, विश्वास हमारे, तुम धरती आकाश हमारे 4. ऐ, मालिक तेरे बंदे हम तथा 5. अल्ला तेरो नाम, ईश्वर तेरो नाम, सबको सन्मति दे भगवान। ये पांचों प्रार्थना गीत 1957 से 1986 के बीच रचे, गाए, संगीतबद्ध किए गए और रिलीज हुए। कालक्रम के हिसाब से इन गीतों की शुरूआत 'ऐ मालिक तेरे बंदे हम' (फिल्म दो आंखें बारह हाथ, 1957) से होती है, जब देश में गांधी दर्शन हावी था। भारतीय दंड संहिता से इंसानियत को बड़ा मानने का सामाजिक आग्रह था। फिर आता है 'अल्ला तेरो नाम, ईश्वर तेरो नाम, सबको सन्मति दे भगवान (फिल्म 'हम दोनों' 1962)। इसमें मानवता के शिथिल पड़ते आग्रहों को फिर से सुदृढ़ करने ईश्वर से विनती है। इसके बाद है 'हम को मन की शक्ति देना, मन विजय करें, दूसरों की जय से पहले खुद को जय करें (फिल्म गुड्डी, 1971)। इस प्रार्थना गीत में आत्मशुद्धि की बात है। विजेता की बजाए आत्मजेता बनने का आग्रह है। इसके बाद नंबर है 'तुम आशा विश्वास हमारे, तुम धरती आकाश हमारे (फिल्म 'सुबह' 1982) का। यह मनुष्य की नैतिक को रोकने के लिए ईश्वर को आशा और विश्वास दोनों के रूप में स्वीकार करने का हलफ़नामा है। यहां ईश्वर सगुण न होकर प्रकृति रुप में है। गीत में एक इच्छा के पूरा होने का सकारात्मक आग्रह है। इसके बाद आता है वो प्रार्थना गीत, जिसे इस लेख की थीम का आधार मान सकते हैं, यानी इतनी शक्ति हमें देना दाता, मन का विश्वास कमजोर हो ना, हम चले नेक रस्ते पे हमसे, भूलकर भी कोई भूल हो ना (फिल्म 'अंकुश' 1986)।

कवि अभिलाष के इस प्रार्थना गीत की सबसे बड़ी ताकत इसके सरल शब्द और ईश्वर से निश्छल अरज है कि तू कुछ भी कर, लेकिन हमारे अंतर्मन का विश्वास टूटने न दे। सकारात्मकता या नेटवर्क फेल नहीं होना चाहिए, क्योंकि विश्वास पर ही दुनिया कायम है। विश्वास से ही आशा की धूप खिलती है। इस गीत की सबसे बड़ी खासियत अपने आप से यह सवाल है कि ये न पूछें कि हमें दुनिया ने क्या दिया है बल्कि ये जांचें कि हमने दुनिया को क्या दिया है? केवल अपने स्वार्थ की फाइन न खोलें, बल्कि समाज को हमारे योगदान का फोल्डर भी चेक करें। दरअसल इसी अंतरे से यह प्रार्थना गीत ऊपर वाले से याचना की दीन कक्षा से बाहर निकल कर आत्म परीक्षण के अपूर्व लोक में चक्क र लगाने लगता है। पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' का मूल भाव भी यही निस्वार्थता है।

अभिलाष के इस प्रार्थना गीत में भी समूचे मानव समाज की निस्वार्थता का गरिमामय गान है और यह भाव शाश्वत रखने की शक्ति देने परमपिता से विनती है। यह विनती किसी भी मन की हो सकती है। ज्यादातर प्रार्थना गीतों में सामूहिक कल्याण, दुष्टता का नाश, सब पर कृपा बरसाने की गुहार तो होती है, लेकिन स्वयं पर प्रश्नवाचक चिन्ह लगाने वाला यह शायद अनोखा प्रार्थना गीत हैं। कहते है कि अभिलाष ने यह गीत भी कई पुराने मुखड़ों को डायरेक्टर द्वारा रिजेक्ट किए जाने के बाद कुछ झुंझलाहट में ही लिखा था। लेकिन इस गीत के बोलो में मानो मनुष्य की आत्मा ही बोल पड़ी। एक फिल्मी प्रार्थना गीत, मनुष्यता का प्रार्थना गीत बन गया।

धोती-कुरता धारण कर मंच पर उनकी आमद, मुस्कुराती छवि, नेह भीगा अभिवादन, विनय में डूबा स्वर माहौल में पवित्रता का ऐसा संचार करता रहा, जहाँ स्वर-देवता को भजने के लिए मानो साक्षात गन्धर्व अवतरित हुए हों! अपने स्वरों में नाद ब्रह्म को पुकारने वाला गंगातट का यह साधक महानाद में विलीन हो गया।

पंडित राजन मिश्र

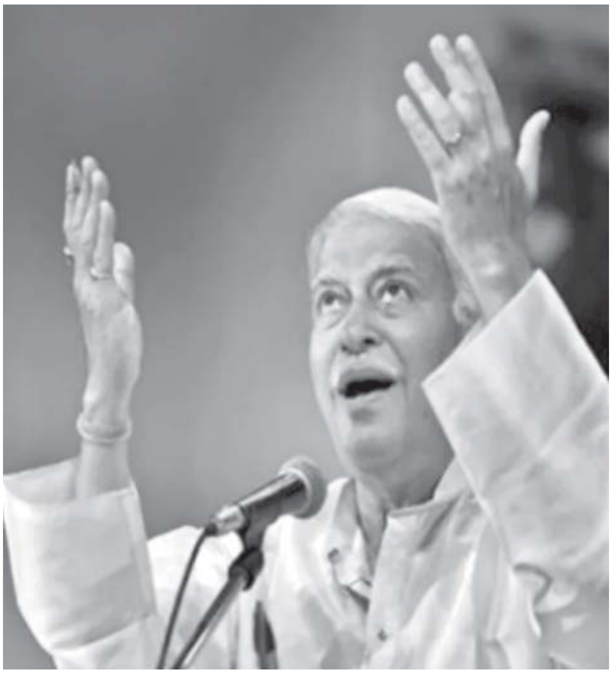

# काशी के कंठ साधक का **महामौन**

संगीत के लाखों कद्रदानों के बीच पंडित राजन मिश्र अपने से पाँच बरस छोटे भाई पंडित साजन मिश्र की संगत में गाते हुए शास्त्रीय संगीत की बेमिसाल जुगलबंदी के पैमाने बन गए। कर्कश और बेसुरी होती जा रही दुनिया में पंडित राजन मिश्र का कंठ करुणा की पवित्र धाराओं में मन के प्रक्षालन का आमंत्रण था। निश्चय ही यह हिंदुस्तान के एक संगीत ऋषि का महाप्रयाण है। विडम्बना कहें या नियति की इच्छा कि जीवन के अंतिम समय में अपने देश की राजधानी में साँसों से संघर्ष करने वाले इस पद्मविभूषण कलाकार को 'वक्त' पर सहारा न मिल सका और कुमार गन्धर्व के कबीर को याद करते हुए कहें तो- उड़ गया हंस अकेला!

संगीत के राग-रास में चारों प्रहर डूबा रहने वाला बनारस अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी के दरमियान संगीत की जिन विलक्षण विभूतियों का स्वर्णिम अतीत बना, पंडित राजन मिश्र उसी उजाले की एक सुरीली किरण बनकर प्रकाशित हुए। 1951 में संगीत मनीषी पंडित हनुमान मिश्र की संतान होने का सौभाग्य उन्हें मिला जिनकी ख़ानदान में गणेश मिश्र, सुरसहाय मिश्र और दादा रामदास जैसे गुणी और संगीत के पांडित्य से भरे पुरखों की विरासत रही। वैभव की इसी छाँह में बैठकर राजन मिश्र ने संगीत के गुर सीखे। गुरु की तालीम और उस दौर की आबो-हवा का ही कुछ ऐसा असर था कि किशोर अवस्था में ही राजन मिश्र के कंठ में आरोह-अवरोह की गतियाँ कामयाबी की राहों की आहत बन गयीं। 1956 में भाई साजन मिश्र का जन्म हुआ। कठोर अनुशासन के बीच मुसलसल रियाज़ ने इन दोनों भाइयों को ऐसी कलाकार जोड़ी के रूप में गढ़ा जिनके पास स्वर-संगीत की गहरी समझ के साथ ही बनारस की उन मनोरम अनुगूँजों की सौगातें थीं जिनमें साहित्य और संगीत की आपसदारी आध्यात्मिक आनंद का अलौकिक परिवेश रचने की ताक़त बनी। जितना रागदारी में गहरे डूबने का आग्रह, उतना ही उस समंदर से मन रंजन के मानक (मोती) चुन लेने का अहोभाव उनकी गायिकी की पहचान बना। भक्ति का तरल-सरल पवित्र भाव उनके गायन में कुछ इस तरह निखरता कि मंच और महफ़िल नाद ब्रह्म के मंदिर में बदल जाते।

पंडित राजन और साजन की जुगलबंदी का नज़ारा देखते ही बनता। धोती-कुरता धारण कर मंच पर उनकी आमद, मुस्कुराती छवि, नेह भीगा अभिवादन, विनय में डूबा स्वर माहौल में पवित्रता का ऐसा संचार करता रहा, जहाँ स्वर-देवता को भजने के लिए मानो साक्षात गन्धर्व अवतरित हुए हों! दोनों बंधुओं की अपनी कलात्मक निपुणता, समन्वय, स्वर की लय-गतियों में साथ होने और अभिव्यक्तियों की स्वतंत्र उड़ान भरने की आपसी समझ तथा कौशल ने जुगलबंदी का ऐसा मोहक वितान तैयार किया कि यह विशिष्ट शैली

ही उनकी पहचान बन गयी। यहाँ बंदिशों की निराली दुनिया में अनंत की यात्रा का सुख और आनंद। राजनजी की गान-मुद्रा के साथ ही श्रोताओं से संवाद करने की फितरत भी अनूठी होती। वे अपने पूर्वजों की बंदिश का परिचय देते। उसका भाव-विस्तार करते हुए उसके अर्थ और आशयों की सहज व्याख्या करते। स्वयं की रचना होती तो विनम्रता पूर्वक गुरु का आशीर्वाद मानकर उसे प्रस्तुत करते। इस तरह भक्ति और सादगी का गान, गहरा अंतर्बोध और लोक तत्वों का सौंधा स्पर्श उनके कला-चरित्र को नयी आभा से मंडित करता रहा। गौर करने की बात यह कि ख़्याल गायन से लेकर पूरब अंग के टप्पा, ठुमरी, दादरा, चैती, कजरी और झूला से लेकर तराना तक समान महारथ उन्हें हासिल थी। भारत सरकार के पद्म विभूषण, संगीत नाटक अकादेमी सम्मान, म.प्र. सरकार के राष्ट्रीय कुमार गन्धर्व सम्मान और तानसेन सम्मानों से विभूषित पंडित राजन मिश्र भारत भवन (भोपाल) के न्यासी भी रहे।

एक उद्घोषक के रूप में मुझे (इस लेखक को) पं, राजन-साजन मिश्र को मंच पर आमंत्रित करने और उनसे संवाद करने के अनेक अवसर मिले। उनके व्यक्तित्व की अनेक छापें और उनके सांगीतिक अनुभव तथा ज्ञान से भरी बातें साझा करने का यह सौभाग्य जब भी मिला वह एक अमिट स्मृति की तरह ठहर सा गया।

मुझे याद है ग्वालियर में तानसेन सम्मान से विभूषित होने के अगले ही दिन भोपाल के करुणाधाम आश्रम के करुणश्वरी मंडप में उनके गायन की सभा थी। आश्रम के वर्तमान पीठाधीश्वर गुरुदेव सुदेशचन्द्र शांडिल्य की उपस्थिति में इस शक्ति पीठ पर विराजते हुए राजन मिश्र ने कहा था- 'आज लग रहा है कि जीवन सफल हो गया। साधना की इस सिद्ध भूमि पर हम जैसे भक्तों की ओर से स्वर के पुष्प अर्पित करने का यह पुण्य अवसर है।' उस शाम सचमुच स्वर, आत्मा के आसन पर देवता की तरह विराजे थे। - **विनय**

# पुरा कथाओं का प्रवक्ता

हिन्दी के समकालीन परिदृश्य में भारतीय आख्यानों को नया रचनात्मक संदर्भ देने वाले सुविज्ञ लेखक-चिंतक नरेन्द्र कोहली के निधन की सूचना भी चौंकाने वाली है। वे साहित्य में पौराणिक और ऐतिहासिक घटनाओं और चरित्रों के जीवंत चित्रण के लिए याद किये जाएंगे। अभ्युदय, महासमर और तोड़ो कारा तोड़ो उनकी वे कृतियाँ हैं जिन्होंने भारत ही नहीं, विश्व पटल पर उन्हें नई पहचान और प्रतिष्ठा से अभिषिक्त किया। 2012 में व्यास सम्मान और 2017 में पद्मश्री के लिए उनका चयन हुआ।

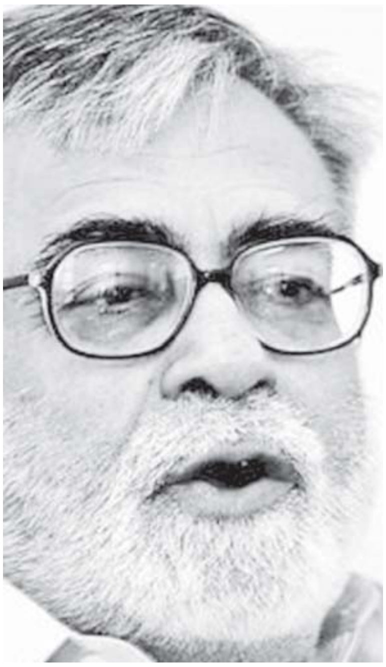
नरेन्द्र कोहली

नरेन्द्र कोहली का जन्म 6 जनवरी 1940 को ब्रिटिश इंडिया के सैलकोट पंजाब में हुआ। लाहौर में प्राथमिक शिक्षा के बाद देश विभाजन हुआ तो जमशेदपुर (बिहार) में परिवार बस गया। वे मेधावी छात्र रहे। उच्च शिक्षा के लिए दिल्ली आए। स्नातकोत्तर और पीएचडी की उपाधि प्राप्त करने के उपरांत आदर्श व्याख्याता और हिन्दी के सर्वप्रिय लेखक के रूप में उनकी ख्याति बढ़ती चली गयी। हज़ारों-लाखों पाठक और प्रशंसकों के विश्वास के चलते उन्होंने भारत के पुराण-चरित और आदर्श ऐतिहासिक व्यक्तित्वों के प्रामाणिक संदर्भों का अध्ययन कर आधुनिक विमर्श की नई दिशाएँ खोलीं। वे ओजस्वी वाणी के धनी थे। देश भर में व्याख्यानों के लिए उन्हें आमंत्रित किया जाता रहा और श्रोता उन्हें दत्तचित्त होकर सुनते। कोहली हमेशा नवीन विचारों के ताप से भरे रहे और तार्किक विवेचन करते हुए पाठकों और श्रोताओं के भीतर उद्वेलन जगाते रहे।

नरेन्द्र कोहली के भीतर लेखकीय प्रतिभा बचपन से रही। अपनी स्कूल की हस्तलिखित पत्रिका में उनकी पहली रचना छपी। फिर वे बाल लेखक के रूप में अपने समय की कई पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे। 1960 के बाद उनकी पहली कृति इलाहाबाद से प्रकाशित हुई- 'दो हाथ'। यह कहानी की किताब थी। एक अंतराल के बाद कोहली ने भारतीय पौराणिक ग्रंथों का विशद अध्ययन किया और उनकी घटनाओं तथा चरित्रों से आधुनिकता का साम्य बनाते हुए लेखन को नई धार दी। श्रीकृष्ण के पिता वासुदेव पर केन्द्रित उनकी औपन्यासिक कृति का पाठक और आलोचकों ने व्यापक स्वागत किया।

उनकी पहली कहानी 'रमजान में मौत' सारिका में छपी थी और देखिये वे रमजान के पाक महिने में ही हमसे जुदा हो गये। हरदिल अज़ीज़ मंजूर एहतेशाम का इस तरह अलविदा कहना। सबको नाशाद कर गया।

'सूखा बरगद' से अपार ख्याति पाने वाले मंजूर साहब के उपन्यासों में 'कुछ दिन और', 'सूखा बरगद', 'दास्तान-ए-लापता', 'बशारत मंज़िल', 'पहर ढलते', 'मदरसा' काफी चर्चित रहे है। कहानी संग्रहों में 'रमजान में मौत' तथा अन्य कहानियाँ, 'तसबीह', 'तमाशा' तथा 'अन्य कहानियां', 'संपूर्ण कहानियां' काफी मशहूर हुए। नाटकों में 'एक था बादशाह', 'गौतम' आदि शामिल है।

वनमाली कथा सम्मान से सम्मानित कथाकार मंजूर एहतेशाम जी की पांच दशक की कथा यात्रा के जरिए साहित्य जगत में गंभीर और आवश्यक उपस्थिति रही है। वे ऐसे संजीदा रचनाकार थे जो अपनी चुटीली शैली से कहानी में गंभीर विमर्श रचते थे। वे भाषा की गहरी समझ वाले लेखक थे और हिंदी उर्दू की साझा प्रगतिशील विरासत की बहुत शिद्दत से नुमाइंदगी करते थे। उनके कथा सृजन में हिंदी का ठाठ और उर्दू की नज़ाकत दोनों बरकरार हैं। मंजूर एहतेशाम ने जो अलग भाषा ईजाद की है वह अपना निशाना और हथियार स्वयं चुनती है। वह हमारे समय के राजनीतिक नैरेटिव को बिल्कुल अनूठा आयाम देते रहे हैं। परस्पर संश्लिष्ट रिश्ते की समस्त जटिलताओं को उद्घाटित करने में उन्हें विशेष दक्षता हासिल थी। जनमानस में व्याप्त जड़ हो चुकी पारंपरिक दुरूहता को व्याख्यायित करने और उसे तोड़ने वाले रचनाकारों में मंजूर एहतेशाम जी का नाम निर्विवाद रूप से हमेशा अग्रणी रहेगा।

मंज़ूर एहतेशाम

## हिन्दी का नूर, उर्दू की नज़ाकत

विश्वरंग के अंतर्गत हिंदी साहित्य की 200 वर्षों की कथा परंपरा को समेटे 'कथादेश' के नाम से वृहद 18 खंडों के कथाकोश का महत्वपूर्ण प्रकाशन आईसेक्ट पब्लिकेशन द्वारा किया गया है। इसमें एक खंड में मंजूर एहतेशाम जी की कहानी को प्रमुखता से प्रकाशित किया गया एवं मुख्य पृष्ठ पर भी मंजूर साहब ससम्मान मौजूद है। मंजूर साहब को अपनी लेखनी के लिये भारतीय भाषा परिषद का पुरस्कार, श्रीकांत वर्मा स्मृति सम्मान, पहल सम्मान एवं वागेश्वरी सम्मान से भी नवाजा गया था।

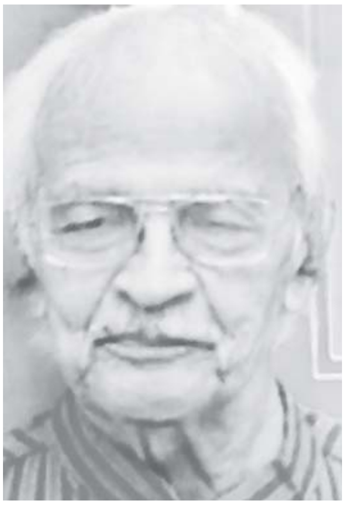

राजाराम

## कलागुरू चित्रकार

चित्रकार और चिंतक राजाराम शर्मा का देहावसान मध्यप्रदेश के कला परिदृश्य से एक ऐसी शख़्सियत का ओझल हो जाना है जिनके सानिध्य में तरूण पीढ़ी के अनेक कलाकारों ने रंग-रेखाओं का संस्कार अर्जित किया। 78 वर्षीय राजाराम विगत कई वर्षों से शारीरिक रूप से दुर्बल हो चले थे लेकिन सांस्कृतिक परिसरों में उनकी आवाजाही गाहे-ब-गाहे सबका ध्यान खींचती रही। भारतीय सांस्कृतिक संदर्भों और कला के ऐतिहासिक तथ्यों की बहुत प्रामाणिकता से छान-बीन करने वाले तथा कला में असंगत प्रयोगधर्मिता और नवाचार की तर्कसंगत ख़िलाफत करने वाले राजाराम की पहचान एक प्रखर आलोचक की भी रही। देश भर की पत्र-पत्रिकाओं में उनके शोधपत्र तथा आलेख प्रकाशित होते रहे। ख़ासकर उनके बनाए पोर्ट्रेट (व्यक्ति चित्र) बेहद प्रभावशाली होते थे। उनकी अनेक चित्र कृतियाँ देश की ऐतिहासिक इमारतों और संग्रहालयों में प्रदर्शित हैं। अपने साहित्य प्रेम के चलते राजाराम कई साहित्यिक संस्थाओं से सम्बद्ध रहे।

महाविद्यालयीन सेवाओं में रहने के साथ ही म.प्र. शासन संस्कृति विभाग में विशेष कर्त्तव्यस्थ अधिकारी और भारत भवन रूपंकर के निदेशक भी रहे।

# इतिहास का पारखी

तारीख़ों, क़िरदारों, इमारतों, खंडहरों और घटनाओं के आसपास घूमते समय के सिलसिलों से अगर इतिहास झांकता है तो सुरेश मिश्र की कलम ने उसमें रोचकता का रस-रंग डालकर उसे नए नूर से सजाया है। प्रामाणिकता की कसौटी पर सच को परखती ऐसी ही दिव्य दृष्टि के धनी थे इतिहासकार सुरेश मिश्र। विपदा के इस दौर में नियति ने उन्हें भी छीन लिया। वे चौरासी बरस के थे। भोपाल को उन्होंने अपनी कर्मभूमि बना लिया था, यहीं उन्होंने अंतिम सांस ली।

सुरेश मिश्र

लगभग साठ वर्षों की सृजन सक्रियता में सुरेश मिश्र ने बीस से भी अधिक क़िताबों की रचना की जिनमें इतिहास को लेकर उनकी गहरी शोधपरख और अन्वेषक दृष्टि के साथ ही अनेक अलक्षित विषयों पर प्रामाणिक तथ्यों का संकलन कर उन्हें सुरुचि के साथ प्रस्तुत करने का कौशल दिखाई देता है। महाराजपुर, मंडला (मध्यप्रदेश) में जन्में डा. मिश्र अपने प्रदेश साथ ही देश-विदेश की अनेक संस्थाओं और उपक्रमों से सम्बद्ध रहे। वे सैंतीस बरसों तक म.प्र. के विभिन्न महाविद्यालयों में आचार्य रहे। 'उन्नीसवीं शताब्दी में जनजातीय क्रांति' विषय पर उन्होंने स्वराज फैलोशिप के तहत महत्वपूर्ण शोध किया जबकि केन्द्र सरकार की वरिष्ठ शोधवृत्ति के अंतर्गत 'शहज़ादा फिरोज़शाह: 1957 का एक विस्मृत नायक' विषय पर उन्होंने महत्वपूर्ण शोध प्रस्तुत किया। जीवन के अंतिम दिनों में डा. मिश्र मध्यप्रदेश के विदिशा ज़िले के आसपास कुछ महत्वपूर्ण ऐतिहासिक इमारतों का अध्ययन कर रहे थे। युवा सृजनधर्मियों के वे प्रेरणास्रोत थे।

सुरेश मिश्र की कला और साहित्य में भी गहरी रुचि थी। उनकी पत्नी और बेटियाँ रंगमंच से जुड़ी थीं। वे मध्यप्रदेश इतिहास परिषद के सचिव मनोनित किये गये थे। उन्होंने इतिहास पर केन्द्रित शोध पत्रिका 'संधानम' का संपादन भी किया था।

# नायाब शख़्सियत

अभी हाल ही भोपाल की गंगा जमुनी तहज़ीब पर उनकी लिखी क़िताब 'सिर्फ नक्शे क़दम रह गए' ने साहित्य के परिसर में नई सरगर्मी पैदा की थी। दुर्भाग्य से इस क़िताब को क़लमबद्ध करने वाला क़िरदार ही इस फ़ानी दुनिया से रुख़सत हो गया। श्याम मुंशी नहीं रहे। संगीत में विशेष दख़ल रखने वाले श्याम मुंशीजी ने 'सारंगी के हम सफ़र', 'सारंगी का दर्द', 'हिन्दुस्तानी संगीत में तवायफ़ों का योगदान' जैसी महत्वपूर्ण पुस्तकों की रचना कर संगीत और साहित्य के फनकारों के लिए अनुपम सौगात दी है।

फ़िल्म-रंगमंच के जाने-माने अभिनेता और श्याम मुंशी के बेहद क़रीबी साथी राजीव वर्मा कहते हैं कि वक्त हमसे भोपाल की पहचान छीन रहा है। श्याम भाई मेरा चार दशकों का साथ रहा। मेरी पर्सनालिटी का काफी हिस्सा उनका कर्ज़दार है। जब मैं थिएटर करते हुए मुंबई फ़िल्मों में एक्टिंग करने चला गया तब अक्सर मैं शूटिंग के दौरान कभी उर्दू के लफ्ज़ में अटकता तो उन्हें फोन लगाता। वे बहुत अच्छे रेसलर और एनसीसी कैडेट भी थे। वे घुड़सवारी और कुत्तों का भी शौक रखते थे। उनके साथ मेरा अंतिम नाटक भोपाल में उर्दू में 'वक्त के कराहते रंग' था। इसमें मुख्य क़िरदार श्याम भाई ने निभाया था। दोस्त और साहित्यकार राजेश जोशी के अनुसार श्याम मुंशी के जीवनानुभव विविधरंगी और व्यापक थे। श्याम मुंशी भोपाली तहज़ीब के नुमाइंदे थे। उनके पास उर्दू और फारसी के संस्कार थे। वो संगीत के गहरे रसिक थे। सारंगी नवाज़ अब्दुल लतीफ खां के शार्गिद थे। वे बेबाकी से अपनी असहमतियाँ दर्ज़ करते थे और यह साहस उन्होंने अनेक आला कलाकारों से जिरह करते हुए जताया। वे भोपाल की संस्कृति का चलता-फिरता संदर्भ कोष थे।

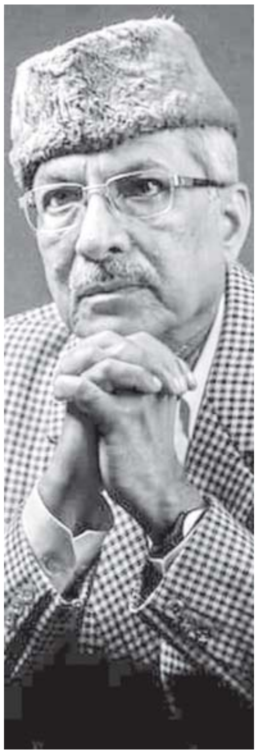

श्याम मुंशी

# अब दूर 'गगन' की छाँव

अपनी प्रेम कविताओं के जरिए पूरे विश्व में मोहब्बत का पैग़ाम पहुँचाने वाले कवि महेन्द्र 'गगन' का अब इस दुनिया में न होना मैत्री, मोहब्बत और अदब की रोशनी से लबरेज़ एक प्यारे इंसान की ग़ैर मौजूदगी है। साहित्य जगत स्तब्ध है।

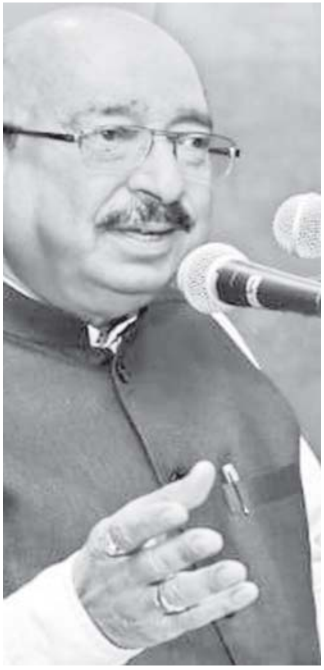

महेन्द्र गगन

चार अक्टूबर 1953 को महाकाल की नगरी उज्जैन में वरिष्ठ पत्रकार ठाकुर चंदन सिंह भाटी एवं रूकमणी देवी भाटी के यहां जन्मे महेन्द्र गगन को साहित्य, पत्रकारिता एवं सामाजिक सरोकारों की मानवीय संवेदना एवं समझ विरासत में मिले थे। वरिष्ठ आलोचक धनंजय वर्मा गगन की किताब 'मिट्टी जो कम पड़ गई' को याद करते हुए कहते हैं कि यहाँ घर है, परिवार है, पिता है, मां है, दादी है, बेटियां है, लड़की है, बच्चे हैं, दोस्त हैं। एक पूरा पारिवारिक माहौल है। ऐसे दारुण समय में इस पारिवारिक माहौल को रचती हुई और उस पारिवारिक माहौल में मानवीय रिश्तों की हरारत में उतरती हुई ये कविताएं समय को, विचार को, और शब्द को माननीय अर्थवत्ता देती है। आकार में छोटी लेकिन असर में बहुत गहरी और भीतर तक पैठ जाने वाली हैं। मुझे यह कहने में जरा भी संकोच नहीं है कि इतने दिनों बाद इतने लंबे अरसे बाद कविता पढ़कर जिसे डूबना कहते हैं, वह घटित हुआ।

महेन्द्र 'गगन' के अभिन्न मित्र कवि-कथाकार संतोष चौबे ने गगन के निधन को व्यक्तिगत एवं पारिवारिक अपूरणीय क्षति बताया। वनमाली सृजन पीठ, विश्वरंग, आईसेक्ट पब्लिकेशन के हरेक पहलू पर उनका परामर्श अनुकरणीय होता था। हमने प्रेम कविताओं के एक महान हस्ताक्षर को हमेशा के लिए खो दिया है। कथाकार मुकेश वर्मा ने कहा कि महेन्द्र भाई के जाने से जो रिक्तता आई है उसे पाटना असंभव है। प्रेम, मानवता एवं सद्भावना के विरल कवि के रूप में महेन्द्र भाई सदैव हमारे दिलों में बसे रहेंगे।

टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र के निदेशक विनय उपाध्याय ने गगन को प्रयोगधर्मी पत्रकार बताते हुए 'पहल-पहल' पाक्षिक में उनकी संपादकीय कला को रेखांकित किया। 'मिट्टी जो कम पड़ गई' एवं 'तुमने छुआ' जैसे प्रेम से सराबोर कविता संग्रह के रचयिता महेन्द्र गगन जी को हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा 'वागीश्वरी सम्मान', सृजनात्मक पत्रकारिता के लिये 'राजबहादुर पाठक स्मृति सम्मान', माधवराव सप्रे संग्रहालय द्वारा 'रामेश्वर गुरु पुरस्कार' और अभिनव कला परिषद द्वारा 'शब्द शिल्पी सम्मान' से विभूषित किया गया था।

# सांस्कृतिक सूत्रधार

सांस्कृतिक अभिरुचियों के साथ जीवन का एक रचनात्मक सिलसिला बनाने वाले सुनील मिश्र का देहांत बेहतर संभावनाओं के साथ गतिमान एक शख़्सियत का रुख़सत कर जाना है। वे मध्यप्रदेश के संस्कृति महकमे के सक्रिय सूत्रधार थे और शासकीय सेवक के नाते कला-साहित्य तथा सृजन की दीगर विधाओं के रचनाकारों से उनका संपर्क था। संस्कृति के साथ ही सिनेमा उनका प्रिय विषय रहा। वे लगभग ढाई दशकों से हिन्दी सिनेमा पर वैचारिक लेखन करते रहे। उन्हें राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित भी किया गया। संस्कृति विभाग में पदस्थापना से पहले सुनील ने दैनिक 'नवभारत' और दैनिक 'नईदुनिया' में भी अपनी अंशकालीन सेवाएँ दी। 2020 के कोरोना काल से उन्होंने लेखक-कलाकारों से संवाद पर आधारित श्रृंखला 'बातों बातों में' आरंभ की थी जिसका प्रसारण इंस्टाग्राम और यू-ट्यूब से किया जाता रहा।

सुनील मिश्र

# विलक्षण चितेरा

प्रभु जोशी

कथाकार-चित्रकार प्रभु जोशी के न रहने की सुर्खी भी कोरोना काल में साहित्य और कला जगत के लिए स्तब्ध कर देने वाली रही। वे एक जीनियस राइटर थे। प्रभु की कहानियां जीवन व समाज का सच कहती हैं। इस चकाचौंध भरी दुनिया के विकास के दावों पर सवाल खड़े करती हैं। एक ऐसे सौंदर्य की सृष्टि है जो असुंदर, कठोर यथार्थ को भी सुंदर और मर्मस्पर्शी बनाती है।

12 दिसंबर 1950 को देवास मध्यप्रदेश में जन्मे प्रभु जोशी के अब तक पांच 'कथा संग्रह' 'किस हाथ से', 'उत्तम पुरुष', 'प्रभु जोशी की लंबी कहानियां', 'कमींगाह', और 'पितृऋण' प्रकाशित व चर्चित रहीं।

विश्वविख्यात श्रेष्ठ चित्रकार होने के कारण उनकी कहानियों में चित्रात्मकता, दृश्यात्मक भाषा और सघन अनुभूति की बानगी होती है। भूख, विषमता और संघर्ष से उपजी आपकी कहानियां दुखी करती हैं। एक त्रासदी भाव विन्यस्त रहता है। भाषा, कथा संरचना और परिवेशगत चित्रण में मालवा की धड़कन साफ सुनी जा सकती है। वस्तुतः मालवा का यह जीवन आपकी लेखनी से विस्तारित होकर भारतीय समाज की अभिव्यक्ति बन जाता है। अपनी कहानियों में प्रभु ने भाषिक तौर पर एक ऐसा मुहावरा गढ़ा है जो पात्र के सोचने का संभव मुहावरा बन जाता है। इस तरह आपकी कहानियों की विश्वसनीयता बढ़ती है और यथार्थ अधिक सघन होता है। आपकी कहानियों में चित्रकला सहित अन्य कई ललित कलाओं की आवाजाही लगातार बनी रहती है जिसके चलते एक भिन्न तरह का सौंदर्य रूप आपके यहां मिलता है।

प्रभु जोशी लंबे समय तक 'नईदुनिया' अख़बार से भी जुड़े रहे। प्रभु जोशी जी के व्यक्तित्व में एक चित्रकार, कहानीकार, संपादक, आकाशवाणी अधिकारी और टेलीफ़िल्म निर्माता समाहित था। इनके चित्र लिंसिस्टोन तथा हरबर्ट में आस्ट्रेलिया के त्रिनाले में प्रदर्शित हुए थे। प्रभु जोशी को गैलरी फ़ॉर केलिफोर्निया (यूएसए) का जलरंग हेतु थामस मोरान अवार्ड मिला। वनमाली सृजन पीठ का 'वनमाली कथा सम्मान', भारत भवन का चित्रकला तथा मध्य प्रदेश साहित्य परिषद का कथा-कहानी के लिए अखिल भारतीय सम्मान भी उन्हें प्राप्त हुआ। मध्य प्रदेश संस्कृति विभाग द्वारा गजानन माधव मुक्तिबोध फेलोशिप भी आपको प्रदान की गयी।

बर्लिन में संपन्न जनसंचार के अंतर्राष्ट्रीय स्पर्धा में उनके 'आफ्टर आल हाउ लांग' रेडियो कार्यक्रम को 'जूरी का विशेष पुरस्कार' दिया गया था। 'इम्पैक्ट ऑफ इलेक्ट्रानिक मीडिया ऑन ट्रायबल सोसायटी' विषय पर किए गए अध्ययन को 'आडियंस रिसर्च विंग' का राष्ट्रीय पुरस्कार प्रभु जोशी जी को मिला था।

---

# बहुआयामी लेखक

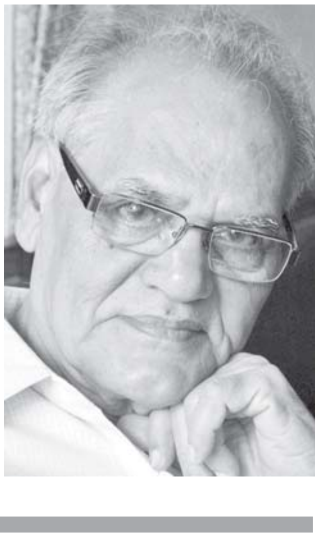

रमेश उपाध्याय

केन्द्रीय हिंदी शिक्षण संस्थान, आगरा के गणेश शंकर विद्यार्थी सम्मान, वनमाली सृजन पीठ, भोपाल के साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान एवं हिंदी अकादमी दिल्ली के कथा सम्मानों से विभूषित साहित्यकार रमेश उपाध्याय के निधन की सूचना भी साहित्य समाज के लिए गहरे क्षोभ से भरी थी। रमेशजी ने प्रमुख विधाओं कहानी, उपन्यास, नाटक, आलोचनात्मक साहित्य, साहित्यिक इतिहास, निबंध एवं अंग्रेजी, गुजराती, पंजाबी से अनुवाद के ऐतिहासिक कार्य किए हैं। उनके द्वारा संपादित पत्रिका 'कथन' के अनेक ऐतिहासिक दस्तावेज़ी अंक प्रकाशित होते रहे। कलाओं विशेषकर रंगमंच में उनकी गहरी दिलचस्पी रहीं।

# लोक मन का कवि

''खूब भरो है जमके मेला'' गीत के कारण देशभर में चर्चित और ''सबई मस्त मेला में आके, रम गये जैसे जाने नइयाँ, मनो परैगो सब खों जाने, झाँ कोऊ रहबे को नैयाँ, धूरा उड़ के चली सरग खों, फीके लगन लगे सब मेला।'' जैसी दार्शनिक पंक्तियों के रचयिता मध्यप्रदेश लेखक संघ के पूर्व अध्यक्ष एवं वर्तमान संरक्षक तथा ख्यातिलब्ध साहित्यकार बटुक चतुर्वेदी भी हमारे बीच नहीं रहे। वे हिन्दी एवं बुन्देली के लोकप्रिय कवि थे। अनेक दशकों तक वे कवि सम्मेलनों की अनिवार्यता बने रहे। स्वास्थ्यगत कारणों से मंच से बिदा लेने के बावजूद अंत तक सृजनरत रहे। कविता, कहानी, व्यंग्य, गीत-नवगीत एवं उपन्यास विधाओं के साथ ही उन्होंने संगीत रूपकों का भी सृजन किया। वे आकाशवाणी के मान्य गीतकार थे। उनके गीतों को अनेक गायकों ने स्वर दिये। 6 जुलाई 1932 को विदिशा में जन्मे बटुक चतुर्वेदी ने मात्र 12 वर्ष की अवस्था से ही लेखन प्रारंभ कर दिया था। उनकी रचनाओं का प्रकाशन देश भर की पत्र पत्रिकाओं में होता रहा।

बटुक चतुर्वेदी

वरिष्ठ साहित्यकार ध्रुव शुक्ल ने अपनी याद साझा करते हुए कहा कि मुझे मध्यप्रदेश के अनेक लोक बोलियों के कवियों के मन में झाँकने का अवसर अपने छुटपन से ही मिलता रहा। बटुक चतुर्वेदी मेरे लोककवि पिता माधव शुक्ल मनोज के आत्मीय कविमित्र रहे हैं। मैंने उनके लोककवि मन को बहुत करीब से परखा है। उनके मन में किसी गाँव के मेले जैसी आत्मीयता बसी रहती थी। वे अपनी कविताओं में बुंदेली लोकरंगी जीवन के अनेक शब्दचित्र रचते रहे। बटुक चतुर्वेदी ने अनेक संगीत रूपक भी रचे। जिनमें बुंदेलखण्ड की लोक धुनों- रैया, सैरा, पाई, गारी, स्वांग और फागों का समावेश किया। मध्यप्रदेश लेखक संघ के प्रदेशाध्यक्ष डॉ. राम वल्लभ आचार्य प्रादेशिक मंत्री कैलाशचन्द्र जायसवाल, रमेशचन्द्र शाह, विजय दत्त श्रीधर, कैलाश चन्द्र पंत, देवेन्द्र दीपक सहित अनेक साहित्यकारों ने बटुकजी के लेखकीय योगदान को स्मरणीय बताया।

''एक नदी सागर से मिलकर गाना भूल गयी...'' शहरीकरण के नाम पर आधुनिकता की देहरी पर अपनी देशज पहचान से महरूम हो रही सभ्यता का दर्द गाने वाले जाने-माने कवि ज़हीर क़ुरेशी ने भी इस दुनिया-ए-फ़ानी को अलविदा कह दिया।

# ग़ज़ल की मुकम्मल आवाज़

ज़हीर क़ुरेशी

नौकरी के सिलसिले में बरसों ग्वालियर में गुज़र करने वाले क़ुरेशी बाद के सालों में भोपाल बस गये थे। उनकी रचनाओं में जनपक्षधरता के स्वर गूंजते थे। उन्होंने बेसाख़्ता गीत और ग़ज़लों से अपने वक़्ती दौर में वैचारिक हस्तक्षेप किया। कहानियाँ भी लिखीं और दोहों पर भी हाथ आज़माए। उनकी रचना पाठ की शैली जुदा थी।

# क़स्बे का प्रिय लेखक

राजेश झरपुरे

छिंदवाड़ा (म.प्र.) निवासी राजेश झरपुरे भी कोरोना के प्रहार से बच न सके। छोटे क़स्बे में रहकर भी उनकी साहित्यिक आभा दूर तक फैली थी।

विनम्र और मितभाषी राजेश झरपुरे जी वनमाली सृजन केन्द्र, छिंदवाड़ा के अध्यक्ष थे। हेमंद्र कुमार राय, मोहन कुमार डेहरिया, श्रीराम निवारिया कथाकार पवन शर्मा, साहित्यकार दिनेश भट्ट, समाजसेवी महेन्द्र खरे की अभिन्न मित्रता के बीच वे साहित्यिक सेवाओं को जारी रखे हुए थे। राजेश के कविता संग्रह 'कुछ इस तरह', 'दिहाड़ी में प्यार', 'तुम नहीं रहे', कहानी संग्रह 'विरासत', 'निकटवर्ती का जंगल', 'पोस्टकार्ड व अन्य कहानियां', 'कहाँ कुशल है', 'रोशनी पर अंधेरे', 'दराज में रखी पेंसिल', 'सावधान! दगान होने वाली है' और उपन्यास 'वह आगे निकल गया', 'फाँस', 'कबिरा आप उगाइये' काफी चर्चित रहे।

# सिनेमा का जुनूनी कद्रदान

भोपाल के स्कोप कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग के छात्र-छात्राओं के लिए वो दोपहर बेहद ख़ास थी। दरअसल रोज़मर्रा की पढ़ाई से तौबा कर ये लम्हे सभागार की दीवार पर टंगे एक परदे के आसपास सिमट आए थे। दिलचस्प यह कि इस स्क्रीन पर कुछ ही देर में रौशन होने जा रहा था सिनेमा का अद्भुत संसार। हिन्दुस्तान में फ़िल्म जैसे लोकप्रिय माध्यम की आमद और उसके सौ साल पूरे होने के मौक़े पर इस शानदार महफ़िल को सजाने आ रहे थे प्रख्यात फ़िल्म विशेषज्ञ, चिंतक और समीक्षक अनिल चौबे। यानी चित्रपट की रूपहली दुनिया के लम्बे सफ़र में जुड़ी कहानियों, क़िरदारों, गीत, संगीत, तकनीक, शोहरत और कामयाबियों के क़िस्सों पर गुफ्तगूँ का बेहद मसर्रत भरा सिलसिला रौशन होने को था।

तयशुदा वक़्त पर अनिल चौबे बेसब्र विद्यार्थियों के बीच नमूदार हुए। क़रीब ढाई घंटे का यह सत्र जैसे पलक झपकते बीत गया। जवां होती जनरेशन ने पहली दफ़ा यह जाना कि कितना कुछ ऐसा अनूठा, रोचक और ज्ञानवर्द्धक है हमारा सिनेमा, जिसे अक्सर हम उथली आँखों से देखते हुए भुला देते हैं। कोई पहलू याद भी रह जाता है तो उसके संदर्भों के प्रति जिज्ञासा नहीं होती। यहीं अनिल चौबे की विशेषज्ञता मानीख़ेज़ हो जाती है जो परत-दर-परत सिनेमा के सच की शिनाख्त करती उस पॉपुलर मीडियम के लिए नॉलेज, स्किल और इंटरटेनमेंट का नया फलसफ़ा तैयार करती रही। हिन्दुस्तान के अनेक सूबों और शहरों में अपना फ़िल्मी-जुनून समेटे दस्तक देने वाला यह हरदिल अज़ीज़ शख़्स अब हमारे बीच नहीं है।

अनिल चौबे

कोरोना की गिरफ़्त से यह अज़ीम क़िरदार भी बच न पाया। चौबे हमारे समय में सक्रिय उन थोड़े से लेखक-बुद्धिजीवियों में शरीक थे जिन्होंने सिनेमा के प्रति अपने बेइंतिहा प्रेम और लगाव को रचनात्मक अर्थों में स्वीकार किया। उनके लिए फ़िल्म देखना कोरा मनोरंजन नहीं बल्कि जिज्ञासा की डोर थामकर उसके तमाम देख़े-अदेख़े कोने-कातरों में झाँकना और सही तथ्यों के आधार पर उसकी तस्दीक करना रहा। उनके संवाद की अनेक ख़ूबियाँ रहीं। साधारण से दिखने वाले या दर्शक द्वारा भुला दिये गये किसी फ़िल्म के दृश्य की ऐसी व्याख्या करते कि दर्शक नई समझ या कौंध के साथ बार-बार उस फ़िल्मांकन को देखता। चौबे के हज़ारों दीवाने उनकी इस प्रतिभा पर मुग्ध थे। उनका कहना था कि हम फ़िल्म देखना जानते हैं लेकिन लोगों में फ़िल्म पढ़ने की समझ पैदा करना मेरा मकसद रहा। दो साल पहले भारत भवन में फ़िल्म रसास्वाद कार्यशाला का सात दिन का एक आयोजन हुआ। बासु चटर्जी से लेकर मीता वशिष्ठ, विष्णु खरे, श्रीराम ताम्रकर, जयप्रकाश चौकसे, दीपा गहलोत आदि का इस समारोह में आना हुआ। आखिरी दिन सोचा गया कि सिनेमा के सौ सालों के परिप्रेक्ष्य में कुछ चयनित महत्वपूर्ण फिल्मों के दृश्यों और गीतों के साथ एक व्याख्यात्मक प्रस्तुति के लिए अनिल चौबे से अनुरोध किया जाये। अंततः उनकी हाँ हो गयी लेकिन इस काम ने उनको लगातार फ़िक्रमंद रखा। समापन दिवस जब वे अपनी प्रस्तुति के साथ भारत भवन के अन्तरंग में थे, तो दो सौ लोगों ने सिनेमा के संसार से चुनिन्दा मोतियों के प्रतिबिम्ब को परदे पर देख, अनिल चौबे से दृश्य विधान, मर्म और एक-एक दृश्य के पीछे की जाने वाली मेहनत में से काफी कुछ को जाना।

उनके एक और मित्र उनको तकनीकी रूप से सहयोग करते थे- अनुराग सीठा। उनका भी नाम लेना अनिल चौबे नहीं भूलते जिन्होंने उनके लिए दृश्यों को आरम्भ में सम्पादित कर उनको सिलसिलेवार पेश करने का बड़ा काम किया था। दुर्भाग्य से अनुराग भी अब इस संसार में नहीं है। - **विनय**

# नई तकनीक का खिलाड़ी

अनुराग सीठा

तकनीकी ज्ञान, शिक्षा और संचार क्रांति के क्षेत्र में अपने अनुभव तथा कौशल की गहरी छाप छोड़ने वाले अनुराग सीठा की मृत्यु ने बहुतों को आहत किया। निश्चय ही यह असामयिक निधन था। माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता विश्वविद्यालय में वे अपनी पदस्थापना से ही सहकर्मियों तथा विद्यार्थियों के बीच लोकप्रिय थे। वजह, उनका सहज, सौम्य तथा सहयोगी व्यवहार। सामाजिक उद्यमिता संस्थान आईसेक्ट और उसके सभी अनुषंग उपक्रमों में उनका तकनीकी परामर्श रहा। वे राज्य संसाधन केन्द्र (एस.आर.सी.) म.प्र. के अध्यक्ष भी थे।

हिंदी में कम्प्यूटर शिक्षा के प्रसार में राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उनका योगदान रहा। मध्यप्रदेश संस्कृति विभाग की ओर से डॉ. अनुराग सीठा को 'हिंदी भाषा सूचना प्रौद्योगिकी सम्मान 2017-18' से सम्मानित किया गया था। यह सम्मान हिंदी सॉफ्टवेयर, सर्च इंजन, वेब डिजाइनिंग, डिजिटल भाषा प्रयोगशाला, सोशल मीडिया, प्रोग्रामिंग, डिजिटल ऑडियो विजुअल एडिटिंग आदि में उनकी उत्कृष्ट सेवाओं के लिए दिया गया था।

अनुराग ने शिक्षा एवं तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण पुस्तकों और शोध पत्रों का रचनात्मक लेखन किया। उनके कई शोध पत्र राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रकाशित हुए हैं। इस हेतु उन्हें 'सर्वश्रेष्ठ तकनीकी लेखक' का पुरस्कार और 'बेस्ट इनोवेशन सॉफ्टवेयर डेवलपर' के सम्मान से भी सम्मानित किया गया था। वर्ष 1990 से उन्होंने 'साक्षरता आंदोलन' में अपना सक्रिय रचनात्मक योगदान दिया। वे सामाजिक क्षेत्र में हमेशा सक्रिय रहें। वर्ष 2018 में भोपाल में आयोजित 'दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन' में आपका महत्वपूर्ण तकनीकी सहयोग रहा।

ये वो दौर था जब कम्प्यूटर का नया-नया प्रवेश हुआ था हमारे जीवन में। तब बहुत लोगों को DTP और DPT में क्या फ़र्क होता है नही मालूम था। बहुत लोग IT को It समझ कर अंग्रेजी का व्याकरण सुधारने में लग जाते थे। ऐसे में इस मासूम से दिखने वाले गोरे चिट्टे लड़के ने हम सबकी कम्प्यूटर की समझ बनाई, बढ़ाई और उसे ठीक-ठाक मक़ाम तक पहुंचाया। हमें तब मालूम पड़ा कि छोटा सा दिखने वाला यह शख़्स कम्प्यूटर प्रशिक्षण देने वाली संस्थाओं में, समितियों में सम्मान का स्थान पाता है। देश के कई जाने माने विशेषज्ञ उससे सलाह लेते हैं। उसके बाद हमारे विश्वविद्यालय ने कम्प्यूटर प्रशिक्षण के क्षेत्र में जो ऊंचाईयां हासिल की वह तो इतिहास ही है। सचमुच वो नई तकनीक का खिलाड़ी था।

औरों की क्या कहें अपने खुद के हाल बेहाल थे कम्प्यूटर में। बल्कि डर ही लगता था। एक दिन मैंने कह भी दिया अनुराग से- ''मुझे भी कोई कोर्स करवा दो। थोड़ा बहुत सीख जाऊंगा।'' हँसते हुए बोला था वह- ''आप चिंता क्यों करते हो, इतना तो मैं चलते फिरते ही सिखा दूँगा।'' उसने वादा निभाया और सिखा भी दिया। आजकल हर व्यक्ति के दो पते होते है एक फिजिकल और दूसरा वर्चुअल। मेरा वर्चुअल पता यानी ई-मेल पता मुझे देने वाला वही था। न जाने कब बना कर ले आया। कहने लगा- 'आज से आपका यह ई-मेल एड्रेस। सिंपल और सरल है। देखिएगा आज से कुछ साल बाद लोग आपसे पूछेंगे, ये पता आपको कैसे मिला।'' सच आज जब मैं अपना ई-मेल किसी को देता हूँ और अगर सामने वाला इस विषय का जानकार है तो पूछ ही लेता है- ''आपका ये ई-मेल बहुत अच्छा है, बहुत पहले का है क्या।''

कम्प्यूटर को उच्च अभिजात्य वर्ग से निकलकर आम आदमी के लिए सहज सुलभ बनाने की दिशा में जिन लोगो ने आरंभिक काम किया अनुराग सीठा उनमें से एक था। साथ ही कम्प्यूटर प्रशिक्षण को अंग्रेजी के जाल से मुक्त करा कर हिंदी में सुगम बनाने के काम में उसकी अग्रणी भूमिका थी। लेकिन उसे देखकर कोई नहीं कह सकता था कि उसने इतनी कम आयु में कम्प्यूटर को हिंदी में सीखने के लिए किताबें लिखी है, पत्रिका का संपादन किया है, कोर्स बनाये हैं। कम्प्यूटर प्रशिक्षण को गाँव-गाँव तक सहज सुलभ बनाने का जब भी कोई इतिहास लिखा जाएगा उसमें अनुराग सीठा का नाम प्रमुखता से होगा। उसके सिखाये विद्यार्थी आज स्वयं बड़ी-बड़ी प्रशिक्षण संस्थाओं के मालिक है, संचालक हैं। वह यह सब कर जाता था बिना किसी तनाव के हँसते-हँसते। - **सच्चिदानंद जोशी**

# निराली शख़्सियत

टी.वी. और अख़बारी पत्रकारिता के साथ ही साहित्यिक पत्रकारिता के रौशन क़िरदार राजकुमार केसवानी अब स्मृति शेष हैं। वे भोपाल के पुराने निवासी थे जो खोजी ख़बरों की दुनिया में अलग से पहचाने जाते थे।

भोपाल गैस कांड से पूर्व उन्होंने विदेशी कंपनी के यूनियन कार्बाइड कारखाने की ज़हरीली गैस को भोपाल की जनता और पर्यावरण के लिए घातक बताते हुए किसी बड़े हादसे की आशंका जताई थी। 'जनसत्ता' में दुर्घटना के कुछ महीने पहले केसवानी की उक्त विषय पर तथ्यात्मक रपट छपी थी। वे अपनी इस ख़बर से रातों-रात मशहूर हो गए थे। साप्ताहिक अख़बार के अलावा उन्होंने टेलिविजन की पारी भी खेली। स्टार न्यूज़ और एनडीटीवी के लिए उन्होंने काम किया। सिनेमा में उनकी गहरी दिलचस्पी रही। फ़िल्म उद्योग से उनके ताल्लुक थे। फ़िल्मों के वितरण में भी उन्होंने हाथ आजमाए थे। दैनिक भास्कर में उन्होंने फ़िल्मी नायक-नायिकाओं और गीत-संगीतकारों पर साप्ताहिक स्तंभ 'आपस की बात' लिखा जो बेहद लोकप्रिय था। कुछ साल पहले उन्होंने जबलपुर से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका 'पहल' का संपादकीय प्रभार भी सम्हाला। राजकुमार केसवानी बेबाक, मुखर, निडर और निर्लिप्त शख़्सियत थे लेकिन उनकी रचनात्मकता सिर चढ़कर बोलती रही। कथाकार ज्ञानरंजन के साथ 'पहल' का संपादन करते हुए केसवानी ने कई नए प्रयोग किए। युवा पीढ़ी के अनेक नए रचनाकार और पाठक इस पत्रिका से जुड़े।

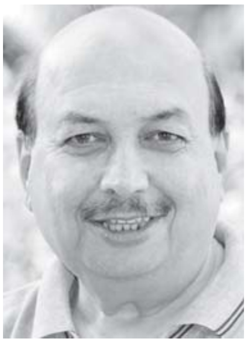
राजकुमार केसवानी

# अनूठा रंग सारथी

मध्यप्रदेश के रंग परिवेश में अपनी अनूठी नाट्य शैली और रचनात्मक सक्रियता की पहचान के साथ आलोकित वसंत काशीकर ने भी कोरोना काल में ही आख़िरी साँस ली। संस्कारधानी जबलपुर के रहवासी और वहीं नाटकों के ज़रिये एक सशक्त सामाजिक आन्दोलन का सूत्रपात करने वाले काशीकर का देहांत एक चौकस, विवेकशील और नवाचारी रंगकर्मी का मुख्यधारा से प्रस्थान है।

अभिनेता होने के साथ ही वे एक गंभीर नाट्य निर्देशक भी थे। उनके अनेक नाटक देशभर में मंचित हुए। सागर के देवरी गाँव में उनका जन्म हुआ। माँ-पिता से संगीत और रंगमंचीय कला के संस्कार उन्हें बचपन में मिले थे। कॉलेज के दिनों से वसंत ने नाटकों में हिस्सा लेना शुरू किया। फिर वे 'विवेचना' से जुड़ गये। इस राह में जबलपुर पड़ाव के दौरान अग्रणी रंगकर्मी-लेखक-कवि अलखनंदन का सानिध्य उन्हें मिला। मूर्धन्य रंगकर्मी ब.व. कारंत से भी रंगमंच की बारीकियाँ सीखीं। भारतीय स्टेट बैंक में नौकरी करते हुए काशीकर ने राजभाषा नाट्य समारोह को अपने कलात्मक योगदान से गरिमा प्रदान की। जबलपुर को उन्होंने अपनी स्थायी कर्मभूमि बना लिया था। वे रंगगुरू के रूप में समादृत थे। वे ग्रामीण या आँचलिक लोक नाट्य शैलियों को लेकर आधुनिक रंगमंच पर नए प्रयोगों के हिमायती थे। विजयदान देथा के 'मायाजाल' और चन्द्रकिशोरी जायसवाल के 'मानबोध बाबू' नाटकों का निर्देशन कर हाल के बरसों में उनकी रंगदृष्टि का नया विस्तार हुआ था।

वसंत काशीकर

# निमाड़ का नट

साहित्य और संस्कृति की तीर्थ नगरी खंडवा (म.प्र.) के रंगमंच पर तब अचानक सनाका खिंच गया जब प्रशांत रामस्नेही के न रहने की ख़बर मिली। इस असामाजिक मृत्यु पर रंग समूह 'नट निमाड़' ही नहीं, वे बेशुमार दर्शक भी शोकाकुल थे जिन्होंने प्रशांत को कई नाटकों में अभिनय करते देखा था। 'जाग उठा रायगढ़ हो' या 'ताजमहल का टेंडर' जिस नाटक में जो भूमिका मिली इस शौकिया रंगकर्मी का हुनर सिर चढ़कर बोला। 58 वर्षीय प्रशांत पेशे से इलेक्ट्रिक कॉन्ट्रेक्टर थे लेकिन नाटक का मंच और नेपथ्य उनकी रुहानी ताक़त थे। 'नट निमाड़' के अध्यक्ष शरद जैन व्यथित होकर कहते हैं- ''हम सबने अपना हीरे सा हीरो खो दिया। वह निमाड़ का नायाब नट था।''

प्रशांत रामस्नेही

# 'प्रयोग' का सारथी

हिन्दी पट्टी के रंगकर्म को नयी गति और पहचान देने वाले सतीश मेहता ने लगभग आधी सदी की सक्रियता में अभिनय, निर्देशन, लेखन और अध्यापन को अपनी व्यक्तित्व का अंग बनाया। इंदौर में नाट्य संस्था 'प्रयोग' की स्थापना की। प्रबुद्ध रचनाधर्मियों और शौकिया रंगकर्मियों की परस्परता में अनेक नाटक तैयार किये, उनके मंचन का लगातार सिलसिला जारी रखा और नाटक के नए दर्शक तैयार किये। वे विज्ञान के प्राध्यापक रहे लेकिन नाटकों में गहरी अभिरुचि और समर्पण के चलते उनकी समानांतर यात्रा साहित्य तथा कला को लेकर आगे बढ़ती रही। विगत तीन दशकों से वे भोपाल के रहवासी थे और यहाँ की रंगबस्ती में भी 'प्रयोग' का मंच, नई ऊर्जा और उपलब्धियों के साथ समृद्ध रहा। हुलारी बाई, जिस लाहौर नहीं देख्या, सुकरात, अंधों का हाथी सहित दर्जनों नाटकों की प्रस्तुतियाँ उनके निर्देशन कौशल की मिसाल रहीं। सतीश मेहता ने भारत से बाहर अमेरिका में भी 'प्रयोग' की इकाई संचालित की। वे भारत भवन रंगमंडल के निदेशक भी रहे। अपनी जीवन संगिनी, रंगमंच की दक्ष अभिनेत्री ज्योत्सना मेहता और अनुज प्रसिद्ध अभिनेता स्मित मेहता के सहयोग से 'प्रयोग' ने अपने समय में एक ज़िम्मेदार सामाजिक-सांस्कृतिक हस्तक्षेप का पर्यावरण तैयार किया।

सतीश मेहता

उनका मानना था कि इंसान को हमेशा नए ढंग से जीवन जीने की कोशिश करनी चाहिए। मैंने हमेशा 'प्रयोग' के लिए कुछ नया सोचने, जीने और करने का प्रयास किया। एक समय के बाद उम्र और ऊर्जा की हदों में घिर गया। लेकिन मेरे समूह के सभी कलाकारों ने जो सक्रियता बनाए रखी वह मेरा और प्रयोग का हासिल है। इंदौर ने मुझे रंगमंच और साहित्य की बुनियादी समझ दी तो दूसरी ओर भोपाल ने कलाओं के अभिजात्य को गहरे तक जानने का इल्म दिया। हम पारिवारिक स्नेह और सौहार्द की हिमायत करने वाले रंगकर्म के अनुयायी रहे हैं। यह दौर नाट्यकर्म के लिए नई कसौटियों का सामना करने का है पर नाटक हर हाल में ज़िंदा रहेगा।

# बेलौस आवाज़

''अभी आख़री पत्ता झरा नहीं/बाकी है/अभी वसंत की उम्मीद/बाकी है''। यक़ीन करना भारी लगता है कि आसन्न मृत्यु से आँख मिलाते हुए जीवन के प्रति यह गहरी आस भरी सांस भी कोई ले सकता है। ये आवाज़ युवा कवि मोहन नागर की है दुर्भाग्य से जिसके भाल पर भी कोरोना ने काल का काला टीका लगाया।

समकालीन हिन्दी कविता के परिदृश्य में नागर नई ढब के रचनाकार थे। बेबाक, बेलौस और बेइंतहा बेफिक्र। कहानियाँ और टिप्पणियाँ लिखकर भी वे ख़ासे चर्चा में रहे। पेशे से चिकित्सक। इंसानियत से भरे। खुद कोविड के शिकार हुए लेकिन संक्रमितों की सेवा के लिए हर पल तत्पर। उनकी जीवटता और जिजीविषा से सभी मित्र स्वजन मुतमईन थे। आख़री साँस तक उम्मीद से भरे जैसी कि उनकी कविता कहती रही- ''अभी आख़री पत्ता झरा नहीं''। पचमढ़ी के निकट पिपरिया में अपनी पत्नी निष्ठा के साथ मिलकर उसने एक अस्पताल खोला था। कवि मित्र मोहन सगोरिया के अनुसार कविता की पाठशाला की तरह वहाँ का वातावरण था। दीवारों पर कविताएँ और स्लोगन। जब भी कोई शिशु अस्पताल में जन्मता, वह प्यार और जतन से उसे गोद में लेकर तसवीर खिंचवाता। इस तरह वह नए जीवन का स्वागत करता। पेशेगत व्यस्तता के बावजूद नागर का पढ़ना-लिखना कभी बाधित नहीं हुआ। इधर कुछ दिनों से वह लघुकथाएँ लिख रहा था। तेवर तो वहीं मंटो वाले थे किन्तु आकार छोटी कविताओं-सा। साफ़-साफ़ और बेबाक कथाएँ। वेश्याओं के जीवन पर उसने श्रृंखलाबद्ध लघुकथाएँ लिखीं। 'मदारी' सीरिज़ में सत्ताधारियों को बेनकाब करने वाली कविताएँ। वह कविताएँ लिखता, कहानियाँ लिखता, टिप्पणियाँ लिखता, मित्रों से बतियाता। बाक़ी समय अपने मरीज़ों के साथ बिताता। जीवन और रचना में समान छवियों का ऐसा अनूठा सर्जक बहुतेरे मित्र-स्वजनों की अमिट स्मृति बन गया है।

मोहन नागर

# हिन्दी कविता का शिखर

कुँअर बेचैन

''किसको पता है, देह की दीवार फांदकर/मुझसे ही कभी मुझको चुरा लेगी ज़िंदगी''। नश्वरता के इस सच को अपनी कविता में गाने वाले कुँअर बेचैन की साँसों का कारवाँ भी पीछे छूट गया। वाक़ई ज़िंदगी ने उन्हें ख़ुद से ख़ुद को चुरा लिया। हिन्दी कविता की वाचिक परंपरा को एक बेमिसाल शख़्सियत के बतौर बेचैन ने साहित्य प्रेमियों की रुह में अपनी जगह बनायी। गीत, ग़ज़ल, कहानी, उपन्यास.... कुँअर बेचैन ने इस सभी विधाओं में लिखा। कवि सम्मेलनों के मंच पर गोपालदास नीरज के बाद सर्वाधिक सुने और सराहे जाने वाले कवि थे बेचैन। मध्यप्रदेश सरकार ने उन्हें कवि प्रदीप राष्ट्रीय सम्मान से विभूषित किया था। उन्हें लंदन के हाउस ऑफ लार्ड्स सम्मान से भी अलंकृत किया गया। उत्तर प्रदेश के उमरी गाँव में उनका जन्म हुआ। बेचैन उनका तख़ल्लुस रहा। असल में उनका नाम डॉ. कुँअर बहादुर सक्सेना। बेचैन गाजियाबाद के एम.एम.एच. महाविद्यालय में हिन्दी विभागाध्यक्ष रहे। 'पिन बहुत सारे', 'भीतर साँकल: बाहर साँकल', 'उर्वशी हो तुम, झुलसो मत मोरपंख', 'एक दीप चौमुखी', 'नदी पसीने की', 'दिन दिवंगत हुए', ग़ज़ल-संग्रह: 'शामियाने काँच के', 'महावर इंतज़ारों का', 'रस्सियाँ पानी की', 'पत्थर की बाँसुरी', 'दीवारों पर दस्तक', 'नाव बनता हुआ कागज़', 'आग पर कंदील', 'नदी तुम रुक क्यों गई', 'शब्द: एक लालटेन', 'पाँचाली' (महाकाव्य) उनके कविता संग्रह हैं।

# संगीत के संत : सिद्धराम स्वामी

कर्नाटक संगीत की विरासत को आत्मसात कर हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की हमजोली में अपना कलात्मक विस्तार करने वाले पंडित सिद्धराम स्वामी कोरवार ने भोपाल (मध्यप्रदेश) को अपनी कर्मभूमि बना लिया था। आकाशवाणी के संगीत प्रभाग में लंबी सेवाएँ देने के साथ ही उन्होंने गुरु-शिष्य परंपरा के तहत नई पीढ़ी की अनेक प्रतिभाओं को प्रशिक्षण दिया। कई काबिल शिष्य तैयार किये। वे एक श्रेष्ठ वायोलिन वादक होने के साथ ही कुशल गायक भी थे। म.प्र. शासन संस्कृति विभाग ने उन्हें शिखर सम्मान तथा साहित्य और कलाओं की मानक संस्था 'मधुबन' ने उन्हें श्रेष्ठ कला आचार्य की मानक उपाधि से अलंकृत किया था। तानसेन संगीत समारोह सहित भारत भवन और दीगर अनेक प्रतिष्ठित संगीत समागम में वे गायन के लिए आमंत्रित किये जाते रहे। भोपाल में स्वामीजी प्रतिवर्ष अपने गुरु पंडित पंचाक्षरजी की स्मृति में एक भव्य संगीत समारोह का संयोजन करते रहे। अपने गुरु के नाम से उन्होंने एक सम्मान की स्थापना भी की थी जो प्रतिवर्ष किसी संगीत साधक को उनके समग्र योगदान के लिए प्रदान किया जाता रहा। पंडित सिद्धराम द्वारा रची गयी संगीत रचनाओं का भरतनाट्यम नृत्य शैली में भी प्रयोग किया गया। उनके द्वारा प्रशिक्षित अनेक शिष्य गायन-वादन के क्षेत्र में स्थापित हैं। उन्हें एक उदार, सरल, विनम्र और गुणी संगीतकार के रूप में याद किया जाएगा।

# साहित्यिक परस्परता की मिसाल

युगेश शर्मा

साहित्य और पत्रकारिता में समान रुप से सक्रिय युगेश शर्मा भोपाल के सांस्कृतिक पर्यावरण में रचनात्मक सौहार्द की मिसाल थे। मध्यप्रदेश की शासकीय सेवा से मुक्त होने के बाद उन्होंने साहित्यिक संस्थाओं से अपनी गहरी संलग्नता के चलते एक महत्वपूर्ण सेतु की भूमिका बनायी। युगेशजी ने कहानी, निबंध और आलोचना को मुख्य रुप से अपनी अभिव्यक्ति का ज़रिया बनाया जबकि साहित्यिक समारोहों के विस्तृत रिपोर्ताज भी लिखे। हाल ही कोरोना काल में लिखी उनकी कहानियों का संग्रह 'जाग उठे मन के रिश्ते' प्रकाशित हुआ है। वे साहित्य और कलाओं के रसिक थे। जीवन के अंतिम दिनों तक उन्होंने हस्तलिखित पत्राचार जारी रखा। हिन्दी भवन, सप्रे संग्रहालय, म.प्र. लेखक संघ, कला मंदिर, मधुवन, अभिनव कला परिषद, दुष्यंत संग्रहालय सहित अनेक संस्थानों के लिए उनका योगदान सदा याद किया जाएगा।

# सृजन के आसपास

## माँ की संवेदना का विस्तार

हिंदी कविता में माँ प्रेम, दया, करुणा और विशाल ह्रदयता के प्रतीक के रूप में सदियों से उपस्थित रही है। रामा तक्षक के यहाँ माँ का यह प्रतीक व्यापक मानवता के दायरे तक फैल जाता है जहाँ वे प्रकृति और समाज से लेकर इतिहास की अनेक छवियों के माध्यम से अपनी संवेदना का विस्तार करते चलते हैं। उनके इस संग्रह को प्रवासी भारतीयों के प्रतिनिधि रचनाकार की रचनाओं के रूप में पढ़ा जाना चाहिए।

नीदरलैंड्स में 'विश्वरंग' के कंट्री डायरेक्टर रामा तक्षक के कविता संग्रह 'जब माँ कुछ कहती मैं चुप रह सुनता' के लोकार्पण समारोह को संबोधित करते हुए वरिष्ठ कवि-कथाकार, विश्वरंग के निदेशक, रवीन्द्रनाथ टैगोर के कुलाधिपति संतोष चौबे ने अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में व्यक्त किए। चौबे ने घोषणा करते हुए कहा कि टैगोर विश्वविद्यालय में प्रवासी भारतीय साहित्य एवं संस्कृति शोध केंद्र, भाषा शिक्षण केन्द्र, अनुवाद केंद्र की स्थापना की गई है। उसी के अंतर्गत यह पहला भव्य समारोह आयोजित किया गया है। शीघ्र ही अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कार्यशालाओं एवं सेमिनारों का आयोजन कर प्रवासी साहित्य एवं साहित्यकारों के लिये रचनात्मक कार्य संपादित किए जायेंगे। इस अवसर पर नीदरलैंड्स से ही पधारी रामा की सहधर्मिणी डॉ. मेरियन रिचर्ड ने भारतीय संस्कृति और अपनापे के रिश्तों पर अपने उद्‌गार व्यक्त किये। यह आयोजन विश्वरंग के अंतर्गत वनमाली सृजन पीठ, प्रवासी भारतीय साहित्य एवं संस्कृति शोध केन्द्र, मानविकी एवं भाषा संकाय, टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र, रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय एवं आईसेक्ट पब्लिकेशन की साझेदारी में हुआ। इस मौके पर वरिष्ठ कवि बलराम गुमास्ता, महेन्द्र गगन, गर्भनाल पत्रिका के संपादक आत्माराम शर्मा, टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केंद्र के निदेशक विनय उपाध्याय ने भी कविता संग्रह एवं रामा तक्षक के रचनाकर्म पर अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. ब्रह्मप्रकाश पेठिया, कुलसचिव डॉ. विजय सिंह विशेष रूप से उपस्थित थे। स्वागत वक्तव्य डॉ. संगीता जोहरी, डीन, भाषा एवं मानविकी संकाय ने दिया। संचालन आईसेक्ट पब्लिकेशन के संपादक कुणाल सिंह और आभार वनमाली सृजन पीठ के संयोजक संजय सिंह राठौर द्वारा व्यक्त किया गया।

## कोरोना काल में किताब से क़रीबी

'विश्वरंग' के अंतर्गत वनमाली सृजन पीठ, आईसेक्ट पब्लिकेशन, टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र, भाषा एवं मानविकी संकाय, रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में आईसेक्ट पब्लिकेशन द्वारा प्रकाशित ताजा पुस्तकें 'विज्ञान लेखिका सुश्री प्रज्ञा गौतम द्वारा लिखित विज्ञान कहानियों की पुस्तक 'अलौकिक और अन्य कहानियाँ', युवा लेखिका क्षमा गौतम की बच्चों के लिखी गई अंग्रेजी बुक डेजीज डायरी एवं वरिष्ठ लेखक डॉ. मुकुल चतुर्वेदी की योग पर केन्द्रित पुस्तक 'योग है, योगा नहीं' का लोकार्पण समारोह तथा पुस्तक विमर्श रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के कथा सभागार में आयोजित हुआ।

इस मौके पर वरिष्ठ कथाकार मुकेश वर्मा ने कहा- कोरोना काल में समाज पुस्तकों के क़रीब आया है। यह सुखद है कि आईसेक्ट पब्लिकेशन मिशन भाव के तहत उत्कृष्ट पुस्तकों के प्रकाशन के प्रति कटिबद्ध है। आज लोकार्पित तीनों पुस्तकें इसका ताजा उदाहरण है। कवि बलराम गुमास्ता ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में कहा कि विज्ञान पर रोचक और पठनीय साहित्य की रचना करने वाले रचनाकार बहुत कम है। ऐसे में प्रज्ञा गौतम की पुस्तक की आमद एक सुखद अनुभूति है। डॉ. मुकुल चतुर्वेदी की पुस्तक 'योग है, योगा नहीं' हमें यह संदेश देती है कि हम नियमित योग के माध्यम से कैसे अपनी सेहत का बेहतर ध्यान रखते हुए निरोगी काया प्राप्त कर सकते है। इस अवसर पर डॉ. संजय पटवा, उप-निदेशक, मध्यप्रदेश राज्य ओपन स्कूल, डॉ. डी. एस. राघव, प्राचार्य, स्कोप महाविद्यालय, मोहन सगोरिया, कवि-संपादक ने भी पुस्तकों पर अपने रचनात्मक विचार व्यक्त किए। लोकार्पण समारोह का संचालन कुणाल सिंह ने किया। स्वागत उद्‌बोधन महीप निगम,

प्रबंधक, आईसेक्ट पब्लिकेशन ने दिया। लोकार्पण समारोह में वरिष्ठ कवि एवं संपादक महेन्द्र गगन, टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र के निदेशक विनय उपाध्याय, भाषा एवं मानविकी संकाय, रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय की डीन डॉ. संगीता जौहरी, विभागाध्यक्ष डॉ. ऊषा वैद्य सहित प्राध्यापक एवं रचनाकार उपस्थित थे। समारोह को जूम माध्यम से वर्चुअल प्लेटफार्म पर भी लाईव किया गया, जिसमें देश-विदेश से बड़ी संख्या में साहित्य प्रेमी जुड़े। आभार समारोह के संयोजक संजय सिंह राठौर ने माना।

# 'रक्त सा लाल एक फूल'

''प्रेम करते हुए हमने जाना/प्रेम करते हुए लोग/रचते हैं कविताएँ एक दूसरे में/एक दूसरे का होना/उनकी कविता का पूरा होना है।'' अपने ताज़ा कविता संग्रह 'रक्त सा लाल एक फूल' की इस कविता का पाठ करते हुए जितेन्द्र श्रीवास्तव साहित्य प्रेमियों से मुख़ातिब हुए। आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल द्वारा हाल ही उनकी यह क़िताब प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक का लोकार्पण एवं उस पर एकाग्र चर्चा का आयोजन आईसेक्ट पब्लिकेशन, टैगोर विवि के भाषा, मानविकी एवं कला विभाग, टैगोर विश्व कला केन्द्र तथा वनमाली सृजन पीठ ने मिलकर किया।

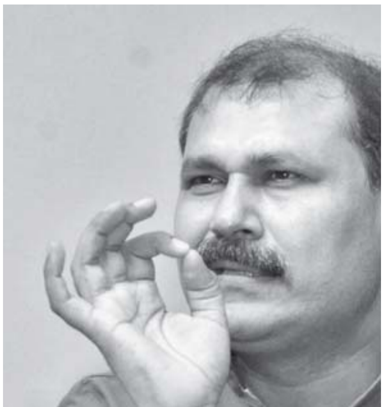

जितेन्द्र श्रीवास्तव ने अपनी रचना प्रक्रिया पर वक्तव्य देते हुए कहा कि यदि आपके पास सही राजनैतिक समझ एवं चीज़ों को बरतने की सूक्ष्म दृष्टि नहीं है तो आप प्रेम कविता नहीं लिख सकते। यदि आप अपने समय में प्रेम को दर्ज़ नहीं करा सकते हैं तो यह दुखद है। कविता अगर पेम्पलेट की भाषा बोलने लगे तो वह कविता नहीं हो सकती। कविता को प्रथमत: और अंतत: कविता ही होना चाहिए। कथाकार-संपादक मुकेश वर्मा ने इस संग्रह को उम्मीदों की बयार का ताज़ा झोंका बताया। कवि बलराम गुमास्ता ने जितेन्द्र की कविताओं को लोक की सौंधी महक बताया। उन्होंने कहा कि मानवीय दृष्टिकोण को आत्मसात करते हुए जीवन से जुड़े सभी विषयों को कविता में रचा गया है। कोलकाता से समारोह में जुड़े आलोचक अरुण होता ने कहा कि जितेन्द्र श्रीवास्तव के पास स्वप्न है, स्मृतियाँ है, संघर्ष है, उम्मीद है। उनकी रचनाएँ नई उम्मीद जगाती हैं। आसाम से युवा आलोचक जीतेन्द्र गुप्ता ने कहा की जितेन्द्र ऐसे समय में कविता रच रहे हैं जिस समय में लिखा जाना सबसे कठिन कार्य है।

युवा आलोचक अरुणेश शुक्ल ने अपने वक्तव्य में कहा कि जितेन्द्र श्रीवास्तव के पास स्मृतियों का अनुपम भंडार है। यह स्मृतियाँ लोक के आंचलिक रंगों से सराबोर है। उन्होंने कविताएँ विमर्श के लिये नहीं लिखी हैं। उनकी रचनाओं में विमर्श स्वयं मौजूद है। कार्यक्रम का रोचक संचालन करते हुए कथाकार कुणाल सिंह ने कहा कि कविताएँ मानवीय पक्षधरता के साथ जीवन के हर रिश्तें में प्रेम को रेखांकित करती हैं। आरंभ में स्वागत भाषण डा. संगीता जौहरी ने दिया।

टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र के निदेशक विनय उपाध्याय, भाषा एवं मानविकी संकाय की विभागाध्यक्ष डॉ. ऊषा वैद्य, डॉ. रुचि मिश्रा तिवारी, आईसेक्ट पब्लिकेशन के प्रबंधक महीप निगम, कवि मोहन सगोरिया, संगीतकार संतोष कौशिक, सावित्री सिंह परिहार, मौसमी परिहार, डॉ. सुधीश बी., लता मंडराई, विक्रांत भट्ट, रोहित श्रीवास्तव, रमेश विश्वकर्मा, वैंकट रमन अय्यर आदि की भी रचनात्मक उपस्थिति रही। समारोह को जूम माध्यम से वर्चुअल प्लेटफार्म पर भी लाईव किया गया। आभार समारोह के संयोजक संजय सिंह राठौर ने माना।

## 'कथादेश' की सौगात

अदिती त्रिपाठी, संचालक संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन तथा विकास दवे निदेशक साहित्य अकादेमी म.प्र. को 'विश्वरंग' के अंतर्गत प्रकाशित हिंदी साहित्य की 200 वर्षों की कथा परंपरा को समेटे 18 खंडों का वृहद कथाकोश 'कथादेश' एवं महत्वपूर्ण साहित्य भेंट किया गया। इस वृहद कथाकोश के प्रधान संपादक संतोष चौबे, वरिष्ठ कवि-कथाकार, विश्वरंग के निदेशक एवं कुलाधिपति, रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय है। संपादन मुकेश वर्मा, वरिष्ठ कथाकार ने किया है।

कथादेश के इन 18 खंडों में 650 से अधिक कहानियों को धरोहर, प्रेमचंदोत्तरी, नई कहानी, समकालीन कहानी एवं युवा कहानी के स्वरूप में समाहित किया गया है। प्रत्येक कहानी पर वरिष्ठ एवं युवा आलोचकों की टिप्पणियाँ एवं कथा साहित्य पर केंद्रित महत्वपूर्ण आलेख भी सम्मिलित किए गए है। कथादेश का आकर्षक कलेवर के साथ प्रकाशन आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल ने किया है। इस अवसर पर कला, साहित्य एवं संस्कृति पर केंद्रित गतिविधियों के विषय में रचनात्मक संवाद हुआ। संचालक संस्कृति ने कथादेश के इस ऐतिहासिक प्रकाशन पर प्रसन्नता ज़ाहिर करते हुए कहा कि ऐसे दस्तावेज़ हर दौर में जिज्ञासा तथा अध्ययन के लिए प्रमाणित संदर्भ हुआ करते है।

## भारत नक्शा नहीं, संस्कृति

'साहित्य भारतीय भाषाओं में लिखा गया हो या भारतीय भूमि में या भारतीय संवेदनाओं के साथ लिखा गया हो, उसे भारतीय साहित्य के अंतर्गत ही स्वीकार किया जाना चाहिए। भारत एक नक्शा नहीं, संस्कृति है। हिंदू कॉलेज के हिंदी विभाग की हिंदी साहित्य सभा द्वारा आयोजित ऑनलाइन व्याख्यान में सुप्रसिद्ध आलोचक और इंदिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय के समकुलपति सत्यकाम ने उक्त विचार व्यक्त किए। उन्होंने 'भारतीय साहित्य की अवधारणा' विषय पर  सारस्वत उद्‌बोधन किया।

रवींद्रनाथ ठाकुर का कथन उद्‌घृत करते हुए उन्होंने भारतीयों के आध्यात्मिक के साथ-साथ भौतिक होने पर बल दिया। प्राचीन काल से साहित्य, दर्शन, कला और विज्ञान में कोई फ़र्क़ नहीं रहा। प्रश्नोत्तरी सत्र में 'दक्षिण भारत हिंदी के प्रति उत्कट विरोध भारतीय एकता की पुष्टि पर सवाल उठाते हैं' को महत्वपूर्ण प्रश्न मानते हुए उन्होंने कहा तमिल सबसे प्राचीन भाषा है और भारत की कोई भी भाषा कमतर नहीं है। विरोध केवल राजनीतिक है। लेकिन हिंदी वालों को तमिल साहित्य पढ़ना-लिखना चाहिए और उनके मनोविज्ञान को समझना चाहिए।

वेबिनार के प्रारंभ में विभाग के वरिष्ठ प्राध्यापक विमलेंदु तीर्थंकर ने प्रो. सत्यकाम का स्वागत करते हुए उनके व्यक्तित्व की सरलता और सहजता को रेखांकित किया। प्राध्यापक नौशाद अली ने करोनाकाल में उनके नव-परिवर्तन शैक्षिणिक कार्य, रिकॉर्डेड व्याख्यानों को विद्यार्थियों तक पहुँचाने की भूमिका पर प्रकाश डाला। धन्यवाद ज्ञापन करते हुए भारत के विभिन्न क्षेत्रों (झारखंड, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान, गोवा आदि) से जुड़ने वाले साहित्य प्रेमियों का आभार व्यक्त किया। संयोजन धर्मेंद्र प्रताप  सिंह ने किया।

---

रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय एवं म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति भोपाल के बीच रचनात्मक अनुबंध के तहत साझा गतिविधियाँ होंगी। इस तारतम्य में शोध केन्द्र, बाल पुस्तकालय तथा विचार संगोष्ठियों को लेकर टैगोर वि.वि. के कुलाधिपति संतोष चौबे तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के मंत्री-संचालक कैलाशचन्द्र पंत ने भावी आयोजनों की रूपरेखा पर चर्चा की। श्री पंत ने यह भरोसा जताया कि संस्थागत रचनात्मक साझेदारी से समाज का सामाजिक-सांस्कृतिक पर्यावरण समृद्ध होगा। इस संयुक्त वार्ता में बच्चों और युवाओं के लिए गतिविधियाँ आयोजित करने पर भी सहमति बनी। इस मौके पर समिति के निदेशक जवाहर कर्नाटक टैगोर वि.वि. की डीन भाषा-मानविकी संगीता जौहरी तथा वनमाली सृजन पीठ के संयोजक संजय सिंह राठौर भी उपस्थित थे।

# उड़े फागुनी रंग

ढोल की थापों पर थरकती उमंगों को थामे जब भील युवक-युवतियों ने मिलकर अपनी परंपरा का फागुनी उत्सव मनाया तो उनके लय-ताल भरी गमक पर दर्शक मुग्ध हो उठे। ये होली की रंगमयी शुभकामनाओं का वो उत्सव था जो अपनी कलात्मक बानगी में आज भी विरासत को संजो लेता है। मध्यप्रदेश शासन, संस्कृति विभाग द्वारा जनजातीय संग्रहालय भोपाल में आयोजित बहुविध कलानुशासनों की गतिविधियों पर एकाग्र 'गमक' श्रृंखला के अंतर्गत संजय भाटे एवं समूह सागर द्वारा 'बुन्देली गायन' एवं प्रताप सिसोदिया धार ने अपने दल के साथ भील जनजातीय नृत्य 'भगोरिया, पाली एवं डोहा' की प्रस्तुति दी।

बुन्देली गायन से शुरूआत हुई, जिसमें- महाशिवरात्रि पर्व के अवसर पर गाये जाने वाले गीत 'गौरा ब्याहन भोला की बरात है चली', हरदौल चरित्र सहित अन्य पारंपरिक गीत प्रस्तुत किये गये। ढोलक पर संजय भाटे स्वयं, तबला पर प्रशांत श्रीवास्तव, बेन्जो पर संतोष ने संगत की। प्रताप सिसोदिया एवं साथियों ने भील जनजातीय नृत्य 'भगोरिया, पाली एवं डोहा' को की जीवंत झांकी प्रस्तुत की। भील जनजातीय नृत्य 'भगोरिया' फागुन मास में होली के सात दिन पूर्व से आयोजित होने वाले हाटों में पूरे उत्साह और उमंग के साथ भील युवक एवं युवतियों द्वारा पारंपरिक रंग-बिरंगे वस्त्र, आभूषण के साथ किया जाता है, जिसे भगोरिया नृत्य कहते हैं। फसल कटाई के पश्चात वर्षभर के भरण-पोषण के लिए समुदाय इन हाटों में आता है। भगोरिया नृत्य में विविध पदचाप समूहन पाली, चक्रीपाली तथा पिरामिड नृत्य मुद्राएँ आकर्षण का केंद्र होती हैं। यूँ फागुनी रंगों की उड़ान से मंज़र खूबसूरत हो गया। डोहा- मान्यता से सम्बन्धित उत्सव है। मनोकामना पूर्ण होने पर दीपावली के समय पाँच दिन तक घर-घर जाकर डोहा खेला जाता है। एक मिट्टी की छोटी गागर में चारों ओर छोटे-छोटे छिद्र किये जाते हैं उसमें बीचों बीच प्रज्जवलित दीपक रखते हैं। गाँव के युवक-युवतियाँ रात्रि में प्रत्येक घर जाकर ढोल, थाली और पावली की धुन पर नृत्य गान गाते हैं। वहीं पाली नृत्य- विवाह-शादी एवं मांगलिक अवसरों पर भीली युवक-युवतियों द्वारा विभिन्न हस्त एवं पद मुद्राओं के साथ किया जाने वाला नृत्य है।

# अफ़सानों की शाम

मध्यप्रदेश उर्दू अकादमी के तत्वावधान में एक दिवसीय कहानी एवं उपन्यास पर आधारित सेमिनार 'अफ़साने का अफ़साना' का आयोजन मुल्ला रमूज़ी संस्कृति भवन, भोपाल में हुआ। 4 अफ़साना निगारों ने यहाँ अपने अफ़साने सुनाए। अध्यक्षता पद्मश्री मेहरून्निसा परवेज़ ने की। संचालन महमूद मलिक ने किया। अकादेमी की निदेशक नुसरत मेहदी ने सेमिनार की एहमियत पर रौशनी डालते हुये कहा कि हम चाहते हैं कि मध्यप्रदेश से नई नस्ल के अफ़साना निगार हमारे सामने आयें। सिरोंज से आयी स्तुति अग्रवाल ने अपना अफ़साना 'तुम्हारे नाम' शीर्षक से पेश किया। शायान कुरैशी ने 'रज़ामंदी' लखनऊ से तशरीफ़ लाईं अफ़साना निगार इशरत नाहीद ने अपना अफ़साना 'ज़रा सा एतबार पा लेने दो' पेश किया। इस अवसर पर कहानियों का संग्रह 'मंज़िल-ए-बेनिशां' का विमोचन भी हुआ।

दूसरे सत्र में तीन अफ़साने पेश किये गये। अध्यक्षता नईम कौसर ने की और संचालन सुश्री इशरत नाहीद ने किया। शिफ़ाली पाण्डे ने तीन छोटी कहानियां सुनाई। इसके बाद अलीगढ़ से पधारी अफ़्शां मलिक ने अपना अफ़साना 'मोहब्बत अमर है' पेश किया। संस्कृति संचालक अदिति कुमार त्रिपाठी विशेष रूप से उपस्थित थे। आभार मुमताज खान ने माना।

# शिक्षा में हो अध्यात्म का समावेश!

स्वामी विवेकानंद ने पूरे देश को अपने पैर से नाप दिया था। जीवन के हर क्षण में वे चिंतन-सृजन में लीन रहे। ऐसा कोई भी विषय नहीं है जिसमें उनका अधिकार न हो। योग, आध्यात्म, खेल, विज्ञान, इतिहास सहित अन्य सभी विषयों में उनको अद्भूत जानकारी थी। वे जानते थे कि भारत के वेदों में ही संसार का ज्ञान छिपा है और साइंस व टैक्नॉलाजी विदेशों में है। वे दोनों का सामंजस्य करना चाहते थे।

ये विचार शिक्षा अधिकारी और विचारक हेमंत उपाध्याय ने डा. सी.वी. रामन वि.वि. बिलासपुर

**सी.वी. रामन विवि में**
**विवेकानंद जयंति**

में आयोजित एक समारोह में व्यक्त किये। विलक्षण दार्शनिक मेधा के धनी स्वामी विवेकानंद की जयंति पर हुए इस प्रसंग में सम कुलपति पी.के.नायक कुलसचिव गौरव शुक्ला व इजीनिंयरिंग के प्राचार्य मनीष उपाध्याय सहित कई वक्ताओं ने स्वामी जी के जीवन में प्रकाश डाला। कार्यक्रम का संचालन अनुपम तिवारी ने किया। इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित दूरस्थ शिक्षा के निदेशक अरविंद तिवारी ने कहा कि स्वामी युवाओं से यह अपेक्षा रखते थे, कि उनके मन में एकाग्रता, ब्रम्हचर्य, विराट व्यक्तित्व और घनघोर आत्मविश्वास होना चाहिए।

विश्वविद्यालय के कुलपति रवि प्रकाश दुबे ने कहा कि शिक्षा से आत्म विश्वास पैदा होता है और आत्मविश्वास के अंदर बैठा ब्रम्ह जागता है। विवेकानंद इसी जागृत चेतना के धनी थे।

# संस्कार देती है मातृभाषा

छत्तीसगढ़ी राजभाषा दिवस के अवसर पर डॉ सी वी रामन विश्वविद्यालय बिलासपुर में एक दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस अवसर पर छत्तीसगढ़ी राजभाषा आयोग के पूर्व अध्यक्ष विनय पाठक मुख्य वक्ता के रूप में उपस्थित थे। इस ऑनलाइन कार्यक्रम में पाठक ने कहा कि मातृभाषा से हमें संस्कार मिलते हैं, इसलिए हमें हमेशा मातृभाषा पढ़ना, लिखना और बोलना चाहिए।

इस बात को भारत सरकार ने भी स्वीकार किया है। वरिष्ठ साहित्यकार बलदाऊ प्रसाद निर्मलकर और राघवेंद्र दुबे ने भी छत्तीसगढ़ी भाषा पर अपनी बात विस्तार से रखी। विश्वविद्यालय के सम कुलपति प्रोफेसर पीके नायक ने कहा कि हर राज्य की भाषा का अपना सम्मान है और उस राज्य के नागरिकों को वह सम्मान उन्हें देना चाहिए। वास्तव में यह एक आत्मीयता की बोली होती है। उसे सम्मान के चरम तक लेकर जाना हर नागरिक का धर्म है। अंजू तिवारी, श्रीप्रकाश तिवारी ने कविता और संगीत की प्रस्तुति दी।

# मालविका और बच्चों ने सुनाई कहानी-कविता

कोरोना के दौर से प्रभावित और परेशान बच्चों के लिए चाइल्ड रइट्स ऑब्ज़र्वेटरी मध्यप्रदेश की ऑनलाइन सर्जनात्मक पहल 'आर्ट एन्ड बियॉन्ड' में एक दिन कहानी, कविता और गीत के नाम रहा। बच्चों को महान कहानीकार मुंशी प्रेमचंद के 140वीं जयंती, लोकमान्य तिलक की 100वीं पुण्यतिथि, सावन, मित्रता दिवस और रक्षाबंधन का महत्व साझा किया गया।

रंगकर्मी और लेखिका मालविका जोशी ने नई दिल्ली से कार्यक्रम में जुड़ते हुए कहानी में मित्रता, प्यार, साहस और दायित्वबोध का समाँ बाँधा। मालविका ने पहली कहानी तीन सहेलियों रज़िया, आभा और सुल्ताना की मित्रता की सुनाई। तीनों साथ मिलकर ईद मनाती हैं। अगली कहानी जानी-मानी लेखिका मालती जोशी की 'पुरस्कार' थी। पुरस्कार कहानी में ज़िन्दगी को कैसे जीना चाहिए और परेशानी पर कैसे विजय पाना चाहिए इसको सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया गया। ये कहानी एक गुड़िया के साहस और दायित्व बोध पर आधारित थी।

मालविका ने दोस्ती पर लिखी स्वरचित कविता भी सुनाई- 'मंज़िल मिली तो जश्न साथ मनाएंगे/और नहीं तो तैयार हो/फिर से क़दम साथ बढ़ाएंगे।' अवनिमिश्र, अनन्या, समृद्धि भटनागर, बृज कुँअर, रूबी, शिवानी, रागिनी और रोशनी ने भी कविता-कहानी का रोचक पाठ किया। यह आयोजन सदियों से चली आ रही श्रुति और स्मृति की परंपरा का प्रतीक भी बना जिसमें बोले गए शब्द की सांस्कृतिक यात्रा से नई पीढ़ी को जोड़ने की मंशा भी शामिल रही।

# अगर तुम कहो...

''हरगोविंद मैथिल एक कुदरती शायर हैं, उनकी ग़ज़लें ज़माने की सच्चाई को नये अंदाज़ में बयान करती हैं।'' शायर अशोक गोयल ने मैथिल के प्रथम संग्रह के विमोचन अवसर पर यह बात कही। अध्यक्षता कर रहे चौधरी निसार मालवी ने कहा कि मैथिल जन्मजात शायर और खूबसूरत इंसान हैं। इतिहासकार गोविन्द देवलिया के अनुसार मैथिल संभावनाशील लेखक हैं।

विदिशा में आयोजित एक कार्यक्रम में वनिता वाजपेयी ने कहा कि मैथिल की शायरी दिल को छूती है। इस मौके पर हरगोविंद मैथिल ने कहा कि उन्हें बचपन से ही लिखने का शौक था मगर अब वातावरण मिला तो लिखा। उन्होंने चुनिंदा ग़ज़लों का भी पाठ किया। मैथिल के संग्रह पर पूर्व डिप्टी कलेक्टर अविनाश तिवारी, राजेन्द्र श्रीवास्तव, संतोष शर्मा सागर, आनंद सौरभ उपाध्याय और पदमनाभ पाराशर ने भी शुभकामना वक्तव्य दिये। प्रदीप जैन, प्रतिष्ठा श्रीवास्तव ने हरगोविंद मैथिल की ग़ज़लें गाईं। संचालन ब्रज श्रीवास्तव ने और आभार गोवर्धन राजोरिया ने व्यक्त किया। शीलचंद ने समीक्षा पाठ किया।

# कविता में वसंत

'विश्वरंग' के अंतर्गत वनमाली सृजन पीठ, आईसेक्ट पब्लिकेशन, टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र, फेकल्टी ऑफ ह्युमेनिटीज एंड लिबरल आर्ट्स, रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय का यह गरिमामय संयुक्त आयोजन 'बसंतोत्सव राष्ट्रीय काव्य-गोष्ठी' वरिष्ठ कवि एवं विश्वरंग अंतर्राष्ट्रीय आयोजन के सम्मानित सदस्य बलराम गुमास्ता के मुख्य आथित्य एवं वरिष्ठ कथाकार, अध्यक्ष, वनमाली सृजन पीठ, भोपाल और विश्वरंग अंतर्राष्ट्रीय महोत्सव में भारत के राष्ट्रीय निदेशक मुकेश वर्मा की अध्यक्षता में आयोजित किया गया।

कवि बलराम गुमास्ता ने सभी को बसंतोत्सव की बधाई देते हुए कहा कि हमारे लिये यह गौरव की बात है कि साहित्य, कला संस्कृति एवं सामाजिक सरोकारों के लिये एक ओर हम वनमाली सृजन पीठ तथा वनमाली सृजन केन्द्रों के माध्यम से दूरदराज के ग्रामीण-आदिवासी अंचलों, कस्बों, छोटे-छोटे शहरों व दूसरी ओर विश्वरंग अंतर्राष्ट्रीय महोत्सव के जरिये वैश्विक फलक पर एक नया इतिहास रच रहे हैं। यह सभी की रचनात्मक भागीदारी से संभव हो रहा है। बलराम गुमास्ता ने अपनी चर्चित कविता 'आज बेटी घर आई' का भावपूर्ण पाठ किया।

विदिशा के ब्रज श्रीवास्तव ने अपनी रचना 'मत करो उसे फोन' से दिल के जज्बातों को कुछ यूँ बयां किया- 'जब दिल हो किसी से बात करने का/तो मत करो उसे फोन/एक कविता लिखो/' कानपुर के लियाकत खोकर ने मोहब्बत का पैगाम देते हुए कहा- ''मुझको दिल में उतार कर देखो।/ मेरी किस्मत संवार कर देखो।'' देवास के गीतकार ओम यादव ने 'नर्मदा का नीर हूँ मैं!' सुनाकर प्रकृति के प्रति गहरे सरोकारों का उद्घाटन किया। जोधपुर की शायर रेहाना शेख ने वसंत की अठखेलियों को अपनी रचना में जज्ब किया। वहीं अलीगढ़ से जुड़ी गज़लकार सुश्री सफिया सिद्दीकी ने 'प्यार का मौसम' पढ़ते हुए को नई ताज़गी दी।

गोष्ठी को नया मोड़ देते हुए बुरहानपुर के संदीप शर्मा 'निर्मल' ने अपनी मादक कविता का पाठ किया। भोपाल की नवोदित कवयित्री अमृता पांडे ने ऋतुराज वसंत को प्रकृति के आँगन में प्रकट किया। थांदला की सीमा शाहजी ने मौसम की सुंदर बांनगियों को अपने शब्द देते हुए पढ़ा- 'नहा कर बैठा है धुला-धुला बसंत'। गोष्ठी में मानविकी एवं सहित कला संकाय, टैगोर विश्वविद्यालय की अधिष्ठाता, संगीता जौहरी, रुचि मिश्रा तिवारी, अरुणेश शुक्ल, सावित्री सिंह परिहार, मौसमी परिहार, विशाखा राजुरकर राज, हर्षा शर्मा, लता मंडराई, सुधीष बी., अमित नेमा, प्रशांत सोनी, विक्रांत भट्ट, बंदना नामदेव, गब्बर सिंह ने रचनात्मक भागीदारी की। तकनीकी योगदान रमेश विश्वकर्मा, रोहित श्रीवास्तव, उपेंद्र पाटने, सिरिल, राजेश शाक्य ने प्रदान किया।

कार्यक्रम का संचालन युवा कवि मोहन सगोरिया ने अपने कविता पाठ के साथ किया।

# 'पाटलिपुत्र' के लेखक पगारे को व्यास सम्मान

साहित्य के क्षेत्र में केके बिड़ला फाउंडेशन द्वारा दिया जाने वाले व्यास सम्मान के लिए इंदौर के अग्रणी कथाकार शरद पगारे का चयन किया गया है। अक्टूबर माह में समारोहपूर्वक यह सम्मान उन्हें भेंट किया जाएगा। 89 वर्षीय पगारे को यह सम्मान उनके उपन्यास 'पाटलिपुत्र की साम्राज्ञी' के लिए दिया जा रहा है। सम्मान स्वरूप उन्हें प्रशस्ति पत्र, स्मृति चिन्ह और चार लाख रूपये सम्मान निधि से अलंकृत किया जाएगा।

पगारे ने अपने उपन्यास में चक्रवर्ती सम्राट अशोक की माँ धर्मा के जीवन को, उसके सौंदर्य और माँ ही प्रथम गुरु के ध्येय वाक्य को सार्थक करने की गाथा प्रस्तुत की है। करीब पाँच साल के शोध के बाद यह उपन्यास लिखा गया था जिसमें उन पहलुओं को शामिल किया गया था जिन्हें इतिहासकारों ने ज्यादा महत्व नहीं दिया। 550 पृष्ठ की इस औपन्यासिक कृति में 23 प्रमाणित ग्रंथों की सूची भी शामिल की है।

सम्मान की घोषणा के बाद अपनी प्रतिक्रिया में पगारे ने कहा कि साहित्य के क्षेत्र में मेरा कोई गॉडफादर नहीं रहा। पुरस्कारों की राजनीति से भी मैं दूर रहा। मेरी सारी उपलब्धियाँ पाठकों के प्रेम की वजह हैं। चूँकि मैं इतिहास का विद्यार्थी और बाद में इतिहास का शिक्षक हुआ, लिहाज़ा मेरी रचनात्मकता के केंद्र में ऐतिहासिक कहानियाँ और ऐतिहासिक चरित्र ही रहे हैं। मैं भरसक इतिहास की प्रामाणिकता और तथ्यों के साथ कल्पनाशीलता के संतुलन से ऐतिहासिक प्रेम उपन्यास और प्रेम कहानियाँ लिखीं।

छठी सदी की वासवदत्ता और उदयन, अशोक और विदिशा की देवी, रानी रूपमति और बाज़ बहादुर, गंधर्वसेन और उज्जैन की सरस्वती, औरंगज़ेब और बुरहानपुर की जैनाबादी, शाहजहाँ और बुहानपुर की गुलाहारा पर मैंने कहानियाँ और उपन्यास लिखे। पाटलिपुत्र की सम्राज्ञी उपन्यास मैंने इसलिए लिखा कि इतिहासकार ने अशोक की माँ धर्मा की उपेक्षा की जबकि वे एक ऐसी माँ थीं जिन्होंने महान राजा अशोक में वे तमाम गुण पैदा किए जिसकी वजह से अशोक इतिहास में अमर हैं। यह उपन्यास बताता है कि चम्पा के ग़रीब ब्राह्मण की लड़की को उनके पिता बिंदुसार को सौंप देते हैं। जब बिंदुसार की पटरानियाँ धर्मा को देखती हैं तो सोचती है कि इसकी सुंदरता के कारण महाराजा हम पर ध्यान नहीं देंगे तो वे धर्मा को नाइन बना देती हैं। रनिवास में धर्मा जब महाराजा बिंदुसार की सेवा में जाती हैं और उन्हें असल कहानी बताती है तो वे धर्मा को अपनाते हैं और इन दोनों के मिलाप से अशोक का जन्म होता है। इतिहास में उपेक्षित एक महान स्त्री-चरित्र को प्रकाश में लाना मेरी जिम्मेदारी थी।

# लोक संस्कृति की ऋणि है शास्त्रीय नृत्य शैलियाँ

उमा रेले

शास्त्रीयता तक पहुँचने का रास्ता लोक से ही शुरू होता है। संगीत, नृत्य या नाट्य जैसी किसी भी प्रदर्शनकारी कला की बात करें तो हम पाते हैं कि सबका मूलभूत आधार लोक परम्परा ही है। प्रदर्शनकारी कला के प्राचीन संस्कृत शास्त्र के रचयिता आचार्य भारतमुनि अपनी कालजयी कृति 'नाट्यशास्त्र' से भी इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि इस शास्त्र के बनाने का आधार लोक की गतिविधियाँ और परम्पराएँ हाई हैं।

लोक और शास्त्रीयता के इस अंतरसंबंध को समझते हुए और इस विषय को अधिक स्पष्टता से समझने की जिज्ञासा को केंद्र में रखते हुए रबींद्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के मनविकी एवं उदार कला संकाय के तीन केंद्रों द्वारा एक दिवसीय वेबिनार का आयोजन किया गया। टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केंद्र, टैगोर लोक भाषा एवं संस्कृति केंद्र, तथा कला एवं प्रदर्शनकारी कला केंद्र के इस प्रतिष्ठित आयोजन का विषय था ''लोक एवं शास्त्रीय नृत्य का सांस्कृतिक अंतर-संबंध''। मुख्य वक्ता के रूप में नालंदा नृत्य कला महाविद्यालय की प्राध्यापक उमा रेले उपस्थित थी। इस कार्यक्रम को परिचर्चा के रूप में प्रस्तुत करते हुए रेले के साथ बातचीत के सिलसिले में टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केंद्र के निदेशक और जाने-माने कला समीक्षक विनय उपाध्याय शामिल रहे। इस दौरान उमाजी और विनय जी ने अनेक ऐसे महत्वपूर्ण संदर्भ भी उठाए जिनसे भरतनाट्यम, मोहिनीअट्टम, ओडीसी जैसी प्रख्यात भारतीय शास्त्रीय नृत्य शैलियों की लोक से शास्त्रीयता की यात्रा की चर्चा ने ऑन-लाइन माध्यम से जुड़े प्रतिभागियों को आकर्षित किया। रेले ने बहुत ही सजता से आदिवासी, लोक एवं शास्त्रीय नृत्यों और समाज में होते परिवर्तन के साथ इस नृत्यों पर प्रभाव के बारे में चर्चा की। उन्होंने बताया कि किस तरह समय के साथ शास्त्रीय नृत्यों को समाज में एक प्रतिष्ठित कला के रूप में देखा जाने लगा लेकिन वहीं लोक नृत्यों को प्रतिष्ठा की उस श्रेणी में कमतर माना गया। जबकि विश्व में प्रसिद्ध ओडीसी जैसी नृत्य शैली गोटिपुआ लोक नृत्य के बहुत क़रीब है और जिसका अपना एक इतिहास है। श्री उपाध्याय ने मणिपुरी आदि देश की विभिन्न नृत्य शैलियों के विषय में दिलचस्प सवाल रेले के सामने रखे। जिन पर परस्पर संवाद में रोचक पहलू उभरे। दोनों वक्ताओं ने सहमतिपूर्वक माना कि शास्त्रीय नृत्य शैलियाँ लोक संस्कृति की ऋणि हैं।

वेबिनार का संयोजन एवं संचालन पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग की सहायक प्राध्यापक विशाखा राजुरकर राज द्वारा किया गया। आयोजन मानविकी एवं उदार कला संकाय की अधिष्ठाता संगीता जौहरी के सानिध्य में किया गया। भाषा विभाग की विभागाध्यक्ष रुचि मिश्रा तिवारी ने इस परिचर्चा में सक्रीय भागीदारी के लिए मुख्य वक्ताओं तथा उपस्थित सभी प्रतिभागियों को धन्यवाद ज्ञापित किया।

# वनमाली सृजन पीठ का 151वाँ केन्द्र सागर में

रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय द्वारा देश भर संचालित वनमाली सृजन पीठ का नवीन केन्द्र सागर में स्थापित किया गया। विगत दिनों समारोह पूर्वक इस केन्द्र की शुरुआत हुई। समाजवादी चिंतक रघु ठाकुर की अध्यक्षता और सृजन पीठ के राष्ट्रीय अध्यक्ष तथा टैगोर वि.वि. के कुलाधिपति संतोष चौबे की विशेष उपस्थिति में सागर के कवियों ने रचना पाठ किया। वरिष्ठ साहित्यकार उमाकांत मिश्र इस नए केन्द्र के संयोजक हैं। रचना पाठ में मुकेश वर्मा, बलराम गुमास्ता, महेन्द्र गगन, कुणाल सिंह, अरुणेश सहित स्थानीय रचनाकारों ने शिरकत की। इस अवसर पर सागर केन्द्र को आईसेक्ट प्रकाशन की पुस्तकें भी भेंट की गयीं।

# महान प्रार्थना है टैगोर का सृजन

'प्रभु, विपत्ति से, मुझे बचाओ, त्राण करो, विपदा में निर्भीक रहूं मैं, इतना हे भगवान करो।' महान संस्कृति पुरुष रबीन्द्रनाथ टैगोर की इन पंक्तियों को जब नौनिहाल रंगकर्मी तनिष्का हतवलने ने अपनी भावभंगिमा और स्वरों के आरोह-अवरोह के साथ प्रस्तुत किया तो मौजूदा आपदा की घड़ियों को जैसे नए अर्थ मिल गए। तनिष्का रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के 'प्रणति प्रसंग' में टैगोर की 'प्रार्थना' कविता के साथ पेश आई। टैगोर विश्वकला एवं संस्कृति केन्द्र और मानविकी तथा उदार कला संकाय द्वारा टैगोर जयंती पर संयोजित इस वर्चुअल कार्यक्रम में मूर्धन्य चित्रकार तथा कला चिंतक अशोक भौमिक विशेष वक्ता बतौर शरीक हुए। इस मौके पर कुलपति ब्रम्हप्रकाश पेठिया तथा टैगोर विश्वकला एवं संस्कृति केन्द्र के निदेशक विनय उपाध्याय ने टैगोर की सांस्कृतिक विरासत को विपदा के इस दौर में पुनः याद करने का आह्वान किया।

रंगकर्मी हेमंत देवलेकर ने अपनी अनूठी पाठ शैली में 'जाने कब मैं बाहर निकला गीत तुम्हारे गाता' और 'तुम हो मेरे अपने तुम हो मेरे पास' कविता प्रस्तुत की। बेबी तनिष्का ने टैगोर की प्रेरणास्पद रचनाएँ चुनीं- 'आप खड़े हो मुझे ओट दे, हृदय कमल के दल में। देव! डुबा दो अहंकार सब, मेरे आँसू जल में।' इस सिलसिले में विनय उपाध्याय ने 'वह अनंत अग्नि कहां है' और 'मेरे प्यार की खुश्बू' कविता का भाव प्रवण पाठ किया। टैगोर की ये कविताएं जीवन, प्रेम और प्रकृति की एकरूपता में विश्व मानवता को संबोधित थीं।

अशोक भौमिक

अशोक भौमिक ने टैगोर के सृजन में निहित विश्व मानवता की आहटों को रेखांकित किया। उन्होंने कहा कि टैगोर जितनी गहराई से अपने शब्द संसार में जीवन, प्रेम और प्रकृति की एकरूपता को व्यक्त करते हैं उतनी ही रचनात्मकता गहनता के साथ वे अपने चित्र कर्म में अभिव्यक्ति की सीमा को विस्तार देते हैं। श्री भौमिक ने अपने वक्तव्य में टैगोर की चित्रकला और उनके कला विचारों पर प्रकाश डालते हुए कहा कि टैगोर ने अपने अंतिम दशक में चित्र बनाना शुरू किया था। वे मानते थे कि तमाम भाषाएँ और साहित्य भी अंततः विभाजित करती हैं। चित्र को समझने के लिए किसी भाषा की जरूरत नहीं होती।

तनिष्का हतवलने

टैगोर मानते थे कि चित्रकला वैश्विक होती है, वो कभी औपनिवेशिक नहीं हो सकती। हमने हमेशा चित्रों और मूर्तियों के जरिए एक कथा को सुनना चाहा। टैगोर की पेंटिंग में अमूर्तन में ऐसा नहीं है कि मनुष्य उपस्थिति नहीं है। मनुष्य को कैनवास से गायब कर दिया जाएगा तो वह मानवतावाद नहीं है। आम आदमी हमारे यहाँ चित्रकला में नहीं दिखता। राजा-रानी दिखते हैं। ये चित्रकला का दुरूपयोग है। हमारा यहाँ अमृता शेरगिल और टैगोर आम आदमी को चित्रों में लाए। ब्रम्हप्रकाश पेठिया ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में कहा कि टैगोर हमेशा ये कहते थे कि समस्याएं तो आती रहेगी पर उनसे जुझने का सामर्थ्य प्रदान करें। आज हम देखते है कि उनकी बातें कितनी सही और सटीक थी। 'प्रणति टैगोर' के मुख्य समन्वयक विनय उपाध्याय अपने वक्तव्य में कहा कि टैगोर का समूचा सृजन मनुष्यता के लिए मंगल की कामना रहा है। आज की परिस्थितियों में टैगोर की पुकार हमें ठीक से सुनने-गुनने और चरितार्थ करने की जरूरत है।

शब्द, गान और रंग के इस अनूठे प्रसंग में रंगकर्मी रीना सिन्हा के संयोजन में रेनी वृंद के कलाकारों ने टैगोर की रचनाओं का गान किया। कार्यक्रम में मानविकी एवं उदार कला संकाय की डीन संगीता जौहरी और विभागाध्यक्ष उषा वैद्य विशेष रुप से उपस्थित थीं। कार्यक्रम का संचालन विशाखा राजुरकर ने किया। आभार रुचि मिश्रा तिवारी ने माना।

## चित्रकार शंकर को 'कलारत्न'

राजस्थान के टोंक शहर में आयोजित 14वें राष्ट्रीय क्रेयॉन्स कला पर्व में राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय कलाकारों ने भाग लिया, जिसके तहत चयन समिति ने शहर के चित्रकार शंकर तायड़े को 'कलारत्न' पुरस्कार से सम्मानित किया। यह सम्मान उनकी कृति 'वंदना' को दिया गया है जो वर्तमान में विश्व आपदा से संघर्ष कर रही मनुष्यता के लिए सुख शांति का संदेश है। चित्र में बुद्ध से वंदना करते भिक्षुगण हैं। मध्यप्रदेश के शासकीय योजना, आर्थिक एवं सांख्यिकी विभाग में वरिष्ठ कलाकार के पद पर कार्यरत श्री तायड़े की अनेक चित्रकृतियाँ दार्शनिक चिंतन से प्रेरित होकर सामाजिक संदेश के साथ संबोधित होती है। वे लंबे समय से भोपाल में रहकर सृजनशील है। उनकी कई एकल तथा सामूहिक प्रदशनियाँ आयोजित हो चुकी है। श्री तायड़े का मानना है कि भारतीय चित्रकला अपनी परंपरा में सदियों पुरानी रही है। दिलचस्प यह है कि समय के बदलते अंतरालों में कई शैलियाँ विकसित हुई, कलाकारों की आने वाली पीढ़ियों ने भी उनसे संस्कार ग्रहण किए। इन प्रयोगों और नवाचारों के बीच चित्रकला के साथ नई तकनीक भी जुड़ी। इस तरह यह माध्यम बहुत लोकप्रिय तो हुआ ही, सामाजिक और सांस्कृतिक आंदोलन का प्रतीक भी बना। नई चित्रकार पीढ़ी के सामने संभावना तो है ही, चुनौतियाँ भी उतनी ही हैं।

शंकर तायड़े

# सांस्कृतिक संवाद की पैरोकार
# हमारी परंपराएँ

**भारत की सांस्कृतिक चेतना अपने लोक व्यापी विस्तार और सघनता में मानवीय मूल्यों की हिमायती रही है। यही वजह है कि संस्कृति के गर्भ से निकलने वाली तमाम परंपराओं ने जन-मन में इसका संचार किया। भारतीय समाज सदियों से चली आ रही इन परंपराओं में गहरा रच-बस कर उत्कर्ष की राहें तलाशता रहा है। साहित्य और कला की तमाम विधाएँ वाचिक परंपरा का दामन थामकर ही जनता को संबोधित होती रही है। एक सुसभ्य और संस्कारशील समाज की रचना सांस्कृतिक संवाद से ही संभव है। हमें बार-बार जीवन, प्रकृति और संस्कृति की परस्परता में लौटना होगा।**

इन सूत्रों के आसपास विमर्श के नए आयाम तलाशने का मंच रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय में तैयार हुआ। 'भारतीय सांस्कृतिक एवं संचार परंपराएँ' विषय पर एकाग्र संगोष्ठी में साहित्य, शिक्षा, संस्कृति, दर्शन एवं इतिहास के विशेषज्ञ-शोधार्थी और अध्येताओं ने अपने विचार साझा किये। संयोजन टैगोर वि.वि. के मानविकी एवं उदार कला संकाय तथा धर्मपाल शोध पीठ, स्वराज संस्थान संचालनालय ने मिलकर किया।

उद्घाटन सत्र में मुख्य वक्ता बतौर आमंत्रित निजी विश्वविद्यालय विनियामक आयोग के अध्यक्ष भरत शरण सिंह ने कहा कि संस्कृति किसी व्यक्ति या परिवार की नहीं होती बल्कि वह भूभाग कि होती है जिसे राष्ट्र कहते हैं। राज्य और देश बदलते रहते हैं पर राष्ट्र स्थाई रहता है। अलग-अलग राज्य होने के बाद भी हमारी भावनाएँ सांस्कृतिक राष्ट्र वाली है।

अध्यक्षता करते हुए वरिष्ठ कवि-कथाकार, टैगोर विश्वविद्यालय के कुलाधिपति संतोष चौबे ने कहा कि हमारे यहाँ पहले संचार परंपरा वाचिक परंपरा के माध्यम से ही आगे बढ़ी है। दो ढाई हजार साल तक तो वेद वाचिक परंपराओं से संचारित हुए। इतिहास लिखने भर से नहीं बनता वो वाचिक परंपरा से भी बनता है। भारतीय पद्धति कथा की ही थी। हमारे यहाँ कथात्मक आख्यानों में ही इतिहास दर्ज है। जीवन के चारों स्तरों की जो पहचान है वो सबसे अच्छी भारतीय संस्कृति और परंपरा में है। इन चारों स्तरों के ऊपर भी एक पांचवाँ स्तर है जो अदृष्य है जिसे देवत्व कहा गया है। चौबे ने जोड़ा कि हमारे यहाँ वसुधैव कुटुंबकम की बात कही जाती है। हमारे यहाँ कभी भी तलवार के दम पर अधिकार जताने की बात नहीं होती बल्कि एक सांस्कृतिक आधार पर हम दिल जीतते हैं।

विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद की शोध परिषद के उपनिदेशक सौरभ कुमार मिश्र ने कहा कि भारत सिर्फ एक भूभाग ही नहीं है बल्कि ये नदी, पर्वत, जंगलों, ऋषियों,

## रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय में राष्ट्रीय संगोष्ठी

**उद्बोधन ... भरत शरण सिंह, संतोष चौबे और ब्रह्मप्रकाश पेठिया**

लोक प्रबोधन (यानि मास कम्यूनिकेशन) का सबसे सशक्त माध्यम हमारी वाचिक परंपरा रही है। हम श्रुति और स्मृति के देश के वासी हैं जो सुंदर भूगोल ही नहीं, ऋषि-साधकों के महान तप और जनजातीय तथा लोक समुदाय के नैसर्गिक और सहज अनुभव सिद्ध निष्कर्षों से समृद्ध सभ्यता को चरितार्थ करता भारत है। बोले हुए शब्द की सांस्कृतिक यात्रा में अनेक ऐसी लोक शैलियाँ परंपरा का परचम थामे जन जागृति का पैग़ाम बन जाती हैं। वेद हमारे आदिग्रंथ हैं तो उनके मंत्र लगभग दो हज़ार वर्षों तक हमारी मानवीय सभ्यता के पास मौखिक परंपरा में ही रहे। स्मृति और कंठ ने इन्हें कई पीढ़ियों तक जीवित रखा। जब लिपि का आविष्कार हुआ तब वे ग्रंथ में यानि पृष्ठों पर अंकित हुए। सामवेद से जन्में संगीत का ही कमाल है कि आज भी वे मंत्र स्वर और लय की निश्चित गतियों और आरोह-अवरोह में गाये जाते हैं। थोड़ा आगे बढ़ें तो रामायण और महाभारत की कथाएँ आख्यान की रोचक-रम्य शैली में आज तक जन मानस को आन्दोलित करती हैं। संतों के प्रवचन इसी महान वाचिक परंपरा की लोकप्रिय पद्धति है।

भारत के लगभग सभी अंचलों में नृत्य संगीत के हज़ारों रूप-स्वरूपों में पौराणिक प्रसंगों से लेकर सामाजिक-सांस्कृतिक विषय या कथावस्तु भाव-रस में भीगकर जनरंजन का मनोहारी वितान रचते हैं। लोक मंचों पर माच, नौटंकी, गम्मत, स्वांग, जात्रा, अंकिया, नाचा और भांड जैसी अनगिनत आंचलिक शैलियाँ शिक्षा, सूचना और मनोरंजन का सशक्त माध्यम रही हैं। ये शैलियाँ आज भी सांस्कृतिक हस्तक्षेप और जन आंदोलन की पैरोकार हैं। यहाँ रामलीलाओं की याद की जा सकती है। छत्तीसगढ़ की तीजनबाई अपने संवाद और देह-मुद्राओं के बेमिसाल ताने-बाने में पंडवानी गाकर महाभारत की कथा का दिव्य-दिग्दर्शन करती हैं। गुजरात में भील आदिवासी भी महाभारत का नाट्यगान करते हैं। वे खुद को भीम का वंशज मानते हैं।

मुनियों का एक समूह है। ये सभी वैदिक संस्कृतियां है जो आज भी परंपरा की तरह हमारे साथ चली आ रही है। यहाँ आए विदेशी आक्रांताओं ने भी ये समझ लिया था कि जब तक यहाँ कि संस्कृति से लोग गहरे जुड़े है तब तक उन्हें तोड़ पाना मुश्किल है। इसीलिए उन्होंने पहले यहां कि संस्कृति को छिन्न-भिन्न करने का प्रयास किया। उन्होंने कहा कि जब तक जमीनी स्तर पर प्रयास नहीं किए जाएंगे तब तक हम इतिहास को सही तरीके से प्रस्तुत नहीं कर पाएंगे। धर्मपाल शोधपीठ संस्थान के प्रभारी निदेशक संजय यादव ने कहा कि आज हमारे पास संचार की अत्याधुनिक सुविधाएं है पर प्राचीन समय में कैसे लोग जुड़ते थे ये विचारणीय विषय है।

विषय प्रवर्तन अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना नई दिल्ली के राष्ट्रीय संगठन मंत्री बालमुकुंद पांडे ने किया। उन्होंने कहा कि संचार के माध्यम से कैसे संस्कृति दुनिया में पहुंचती है। हमारी संस्कृति देशव्यापी ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया में प्रसारित करने का जो कार्य हुआ है वह उस वक्त की संचार परंपराओं का ही परिणाम है। जबसे मनुष्य का मनुष्य से संवाद हुआ होगा तब से ही संचार है। भारतीय संस्कृति परंपराओं पर आधारित है। हमारी परंपराएं नित्य बनती और बिगड़ती है। ऐसी संस्कृति जो हमारे धर्म का प्रतिनिधित्व करती है। हमारी संस्कृति सर्वे भवंतु सुखिनः की संस्कृति है। प्रारंभ में प्रतीक चिन्हों और संकेतों से संचार हुआ करता था। आज के संचार माध्यम हमें हमारी संस्कृति और परंपराओं से दूर कर रहे है ये चिंता का विषय है।

संगोष्ठी में ग्रैंड अकैडमिक पोर्टल की अध्यक्ष साई माधवी और नालंदा नृत्य कला महाविद्यालय मुंबई की संस्थापक प्रख्यात मोहिनीअट्टम नृत्यांगना पद्मभूषण कनक रेले ने भी ऑनलाइन माध्यम से संबोधित किया।

सीवी रामन वि.वि. खंडवा के कुलपति तथा शिक्षाविद् अमिताभ सक्सेना भी विशेष रूप से उपस्थित थे। उन्होंने कहा कि भारत की संस्कृति धार्मिक नहीं है अपितु आध्यात्मिक है। इसलिए आध्यात्मिक उत्थान जरूरी है।

स्वागत वक्तव्य विश्वविद्यालय के कुलपति ब्रह्मप्रकाश पेठिया ने दिया। उन्होंने कहा कि संचार तो जीवन का अभिन्न अंग है। आदिमानव शिकार के समय किस तरह संकेतों से संचार करता था। आज गुफाओं में जो भित्ती चित्र दिखते है वो भी उनके संचार कौशल को ही दिखाते है। हमारे यहाँ प्रकृति को भी देवतुल्य माना है ये हमारी संस्कृति में तीज त्योहारों पर पूजन में वनस्पतियों और वृक्षों को दिए गए मान सम्मान से स्पष्ट झलकता है। आईसेक्ट के निदेशक सिद्धार्थ चतुर्वेदी ने धन्यवाद ज्ञापित करते हुए कहा कि हमें भारतीय संस्कृति और परंपराओं को विद्यार्थियों और आस-पास की कम्युनिटी में पहुँचाना चाहिए।

शुभारंभ सत्र का सफल संचालन समन्वय अरुणेश शुक्ल ने किया। इस अवसर पर मानविकी एवं उदार कला संकाय की डीन संगीता जौहरी, विभागाध्यक्ष उषा वैद्य, टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र के निदेशक विनय उपाध्याय, रुचि मिश्रा तिवारी सहित विश्वविद्यालय के सदस्य उपस्थित थे। संगोष्ठी के समन्वय-संयोजन में सावित्री सिंह परिहार और विशाखा राजूरकर राज की रचनात्मक भूमिका रही।

संगोष्ठी के समापन सत्र में शिक्षाविद् बी.के. कुठियाला, अमिताभ सक्सेना और बी.एस.एस. कॉलेज की प्राध्यापक नैना सिंह ने संबोधित करते हुए संचार परंपराओं और संस्कृति के संदर्भ में अपने अनुभव साझा किए। अन्य वैचारिक सत्रों में बी.डी. शुक्ला ने प्राचीन भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक परंपराएं और उनका समाज पर प्रभाव और मिथलेष तिवारी ने औपनिवेषिक संचार व्यवस्था और उसका गांधीवादी प्रतिउत्तर विषय पर अपनी बात रखी। कई षोधार्थियों ने अपने शोध पत्र प्रस्तुत किए। इसी दिन दूसरे सत्र में प्रशांत पौराणिक ने संचार अध्ययन के लिए प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणाली को महत्वपूर्ण बताया। प्रीति ओझा ने कल्चरल डिफ्युजन ऑफ बुद्धिस्ट, नियो बुद्धिस्ट एंड इंडिक इन कंटेम्परेरी इंडिया पिलग्रीमेज और राकेश मिश्रा ने भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में संचार व्यवस्था पर विचार व्यक्त किये।

देवव्रत सिंह ने भारतीय संचार परंपराएं, उमा रेले ने भारतीय पारिभाषिक वैचारिक शब्दावलियां एवं संचार और अवधेश मिश्रा ने मिथकों की सामाजिक स्वीकार्यता में संचार की भूमिका विषय पर अपने विचार व्यक्त किए। बिप्लब लोहोचौधरी ने भारतीय शोध परंपराएं और सत्यम सिंह ने विपश्चात्यीकरण पर कुछ नई उद्भावनाएँ सामने रखीं। आयोजक विश्वविद्यालय की ओर से विभागीय डीन संगीता जौहरी सहित अन्य प्राध्यापक उपस्थित रहे। - **समीर चौधरी, विक्रांत भट्ट**

# संसार सागर में नदी की तरह

कविता संग्रह–**शब्दगूँज** लेखक–**अरुण सातले**

कविता मन की प्रार्थना होती है। चित्त का विस्तार होती है। आत्मा की अभिव्यक्ति होती है। ये कविताएँ आत्माभिव्यक्ति के कुंज की किलकारी है। अरुण सातले की कविता आह्वान करती है– 'तुम जीवित रखो, अपनी हथेलियों की उस गर्माहट को, जिसने उस भाषा को जिंदा रखा है जिसे प्रेम और सिर्फ प्रेम कहते हैं।'

अरुण सातले साहित्य में जाना पहचाना नाम है। 'शब्दगूँज' नाम से उनका दूसरा कविता संग्रह प्रकाशित हुआ है। उनके लिए कविता कर्म पपीहे की चाहत सरीखा है। उनकी कविता के केंद्र में यद्यपि मनुष्य ही होता है। यह मनुष्य अपनी आभ में घर–परिवार, परिवेश–प्रकृति, भाव–विचार, मिट्टी–पानी की समेट लिए होता है। इसीलिए इस मनुष्य की मानुष–गंध में बड़ा अपनापन, साधारणता और एक प्राकृत–संस्कारशीलता का अनुभव होता है। इसलिए संग्रह की कविताएँ अपने समय और अपने समय के व्यक्ति को उसकी संपूर्णता किंतु सहजता में वाणी देती है। स्मृति मनुष्य की दुर्लभ थाती है, ये कविताएँ उस स्मृति गंध को और और मधुर, सुवासित और स्थायी बनाती हैं।

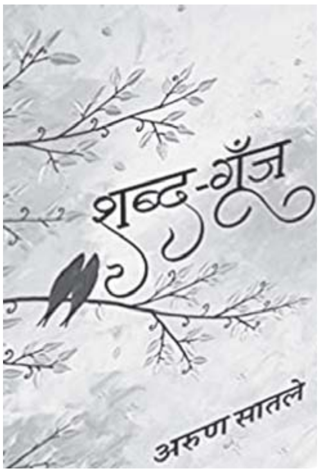


कविता मनुष्य का हलफनामा या बयान नहीं है। वह मन की प्रार्थना होती है। चित्त का विस्तार होती है। आत्मा की अभिव्यक्ति होती है। ये कविताएँ आत्माभिव्यक्ति के कुंज की किलकारी है। कवि प्रश्नाकुल इसीलिए है– 'हम क्यों नहीं रहते संसार सागर में नदी की तरह।'

भारतीय धर्म संस्कृति को विश्व स्तर पर पहचान दिलाने वाले स्वामी विवेकानंद ने भूगोल की परिधियों का अतिक्रमण कर मानव–समता स्थापित करने का संकल्प लेते हुए विश्व मानव की वंदना की, मानवतावादी जीवन दर्शन का पक्ष लिया। अज्ञेय 'इंद्रधनुष रौंदे हुए ये' में लिखते हैं– 'विवेक की किरण से, विवेक की किरण को, अनुभव के स्तम्भ से, अनुभव के स्तम्भ को मिलाता हूँ।' तो वे समता के आधार पर नव मानव और नव मानव समाज की कविता के माध्यम से स्थापना की बात करते हैं। दिनकर जी 'हुंकार' में इसी मानव की चमक को और उजला करते हुए कहते हैं– मनुज हूँ, सृष्टि का श्रृंगार हूँ मैं,,, तुम्हारे देवता का हार हूँ मैं। या 'युगवाणी' में सुमित्रानंदन पंत लिखते हैं– 'सुंदर है विहग–सुमन सुंदर, मानव तुम सबसे सुंदरतम।'

इसी भाव की उदात्त भूमि पर अरुण सातले का कवि खड़ा है। तभी तो वह माँ के चले जाने के बाद भी माँ की पुरानी कीट लगी संदूक में माँ के व्यक्तित्व और संस्कारों की गंध से पूरित हो उठता है–अब भी आती है वही गंध, जब भी खोली जाती है 'माँ की संदूक'। इसी प्राकृत भूमि पर अनुभव करते हुए, इसी भाव के विस्तार में कवि कहता है– 'कुछ देर खड़े होकर, नदी को सूँघो, उसकी गंध बस जाएगी भीतर तक'।

यद्यपि धर्मवीर भारती का कथन है– 'रचना में लेखक का होना जरूरी नहीं', तथापि रचना में लेखक उपस्थित तो रहता है। उत्तरआधुनिकता, बहुसंस्कृति बहुलता पर केंद्रित विमर्शों ने बहुकेन्द्रीयता की संकल्पना को पुष्ट किया है। यह बहुकेन्द्रीयता व्यक्ति की नहीं, समूहों की है। परिणाम में व्यक्ति और अधिक अकेला हो गया है, और अधिक चेतन शक्ति–पुंज के बजाय पदार्थ शक्ति में बदलता जा रहा है। मनुष्य बाजारवाद में मात्र 'उत्पाद' या उत्पाद का 'साधन' बनता जा रहा है। यह किसी भी विचार के स्तर पर स्वीकार नहीं है। कम से कम कविता को तो नहीं स्वीकार है। कवि उत्साह या उपदेश की मुद्रा में नहीं, बहुत गहरे दुःख में डूबकर कहता है– 'आदमी यंत्र ऐसे ही नहीं बनता है?' आदमी का यंत्र बनना कवि को स्वीकार नहीं। स्थिति यह होते जा रही है कि बाज़ार में सपने भी सौदागर के हैं। व्यक्ति का कुछ नहीं। ऐसे बाज़ार का सत्यानाश हो– 'एक दिन तुम्हारे सारे सपने बिकते दिखाई देंगे दुकानों पर।' ऐसा बाज़ार मानुष भाव और मानुष–गंध का रक्षक नहीं हो सकता। इसीलिए कविता इसके विरोध में खड़ी है। कविता आह्वान करती है– 'तुम जीवित रखो, अपनी हथेलियों की उस गर्माहट को, जिसने उस भाषा को जिंदा रखा है जिसे प्रेम और सिर्फ प्रेम कहते हैं।'

वास्तव में अरुण सातले का कवि अपने संग साथ गांव की गंध रखता आ रहा है। वह उस गंध में लोथ–पोथ है। उसके पांवों की अंगुलियों में अब भी अपने घर–गांव के पास की नदी की रेत फंसकर घर आंगन तक चली आती है। गांव के मन के बिना कोई भाव का सागर नहीं बन सकता और कोई भावमय–विचारमय आर्द्र कविता नहीं लिख सकता। इसलिए वे नदी किनारे खड़े होकर, नदी की गंध को अपने भीतर भरने की कविताई रचते हैं। यह कविताई प्रेम के रंगों से भी फगुनाई होती रही है। किसी बच्चे का नींद में मुस्कुराना है। कवि अपनी पहचान बनाने और पहचान को बचाने के लिए–लिखता हूँ फूल, पत्ती और कलियां। कवि प्यार के तिनकों को लेकर मन के किसी कोने में फिर फिर एक घोंसला बना लेता है। यह कवि और कवि की कविता, दोनों का श्रेय और प्रेय है। ये कविताएं नींद को विचार के साथ बुलाती है, कवि को बच्चा बना देने के लिए। कविताएं 'अपनी धरा की अंगुली थामे' अपना (कवि का) घर (अस्मिता) बसाना चाहती है।

**– श्रीराम परिहार**

# लोकरंगी बयार

मिट्टी की महक और उसकी महिमा को मुखरित करती कलाओं की एक सुनहरी दुनिया जब मनुष्यता के आसपास अपने अर्थ खोलती है तो जीवन में उत्सव लौट आता है। इस उत्सव के आसपास कामनाएँ अपना ठौर तलाशती हैं। बुझापन काफूर होता है। समय मुस्कुरा उठता है। 'लोकरंग' के आँगन में इसी इन्द्रधनुष का सतरंगी सैलाब उमड़ आता है। भारतीय गणतंत्र के नाम लोक संस्कृति, परंपरा के उजाले में प्रकट होती फिर इस बात का यकीन पुख्ता करती है कि प्रकृति और संस्कृति की आपसदारी में ही जीवन का उत्कर्ष है। छब्बीस से तीस जनवरी तक भोपाल में आयोजित होने वाला यह छत्तीसवाँ 'लोकरंग' एक लंबी ख़ामोशी और अवसाद को छाँटता ''नवगति, नवलय, ताल छंद नव'' का सनातन संदेश दे गया। म.प्र. शासन के संस्कृति महकमे के संयोजन में हुए इस विराट समागम में देश-देशांतर की कलाएँ अपनी चहक-महक का मनछूता मंज़र रचती रहीं।

पैंतीस बरस बीत गये। यह सोचते एक हरी सी याद उस पगडंडी से जा मिलती है जहाँ कुछ जनजातीय और लोक कलाकारों तथा शिल्पकारों ने अपनी आमद दर्ज़ करते हुए इस उत्सव का आगाज़ किया था। दिलचस्प यह कि अनेक पायदान तय करता यह उत्सव परिकल्पना, विस्तार और संयोजन का मानक मंच बन गया। वक्त अपनी तरह करवट लेता रहा पर 'लोकरंग' की आत्मा पर खरोंच नहीं आयी। इस बार कोराना का साया भी कहीं ईर्द-गिर्द मंडराता रहा। लेकिन गुज़िश्ता यादों को थामता 'लोकरंग' सबको अपनी आगोश में बुलाता रहा।

मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान 'लोकरंग' के परिसर में दाखिल हुए और दीप प्रज्ज्वलन के साथ ही बेटियों के पाँव पखारते हुए इस सांस्कृतिक अनुष्ठान का शुभारंभ किया। अपने उद्‌बोधन में उन्होंने म.प्र. की सांस्कृतिक विरासत को याद करते हुए अपना संकल्प दोहराया कि इस ह्रदय प्रदेश के सांस्कृतिक उन्मेष के लिए सरकार उदारमन से सहयोग करती रहेगी। इस मौके पर मुख्यमंत्री ने देश की पहली भीली चित्रकार श्रीमती भूरी बाई को मंच पर आमंत्रित करते हुए राष्ट्रीय पद्मश्री अलंकरण हेतु उनके चयन पर प्रसन्नता जाहिर की और उन्हें शॉल-श्रीफल भेंटकर सार्वजनिक सम्मान किया। संस्कृति, पर्यटन और अध्यात्म मंत्री सुश्री उषा ठाकुर ने 'लोकरंग' में शामिल सभी जनजातीय और लोक कलाकारों की आमद का स्वागत किया। प्रमुख सचिव संस्कृति शिवशेखर शुक्ल और संचालक संस्कृति अदिति कुमार त्रिपाठी ने भी अपने वक्तव्य में कला और कलाकारों के प्रोत्साहन तथा नए अवसरों में उनकी भागीदारी हेतु विभागीय सक्रियता का हवाला दिया। 'लोकरंग' के मुख्यमंच पर परंपरानुसार गणतंत्र दिवस के मुख्य समारोह में प्रदर्शन करने वाले सैन्य दलों, झांकियों तथा कलाकारों को मंजूषा तथा प्रमाण पत्र भेंटकर पुरस्कृत किया।

इस बार 'लोकरंग' का विन्यास गत वर्षों की तुलना में कुछ सिमटा सा ज़रूर था लेकिन उसकी बुनियादी आकांक्षा जनजातीय और लोक कलाओं के उसी गहरे अनुराग में रची-बसी थी। इस दुनिया-ए-फानी को अलविदा कह चुके प्रख्यात भील चित्रकार पेमा फत्या और गोंड चित्रकार कला बाई श्याम के चित्रांकन की प्रदर्शनी 'प्रणति' से गुजरना आदिम स्मृतियों के रंगों की खुश्बुओं से गुजरना था। 'बोध' के अंतर्गत बुंदेली संस्कृति के सुंदर सोपानों को बधाई, स्वांग, नौरता, राई, अखाड़ा जैसे नृत्यों में देखना भला-सा था, तो 'तारतम्य' में भील जनजातीय समुदाय की उन्मुक्त-अल्हड़ छवियों के छन्द उनकी सांस्कृतिक यात्रा की कहानी सुनाते रहे। इस सिलसिले में जुड़ीं धनगिरिजा (महाराष्ट्र), छपेली (उत्तरांचल), गोटीपुआ (उड़ीसा), पंथी (छत्तीसगढ़), ढोलुकुनीता (कर्नाटक), भवई-सपेरा (राजस्थान), और चरकुला-मयूर (उत्तरप्रदेश) सहित सुदूर राज्यों की नृत्यमय थिरकन। सरहद पार से ईरान के कलाकारों ने 'लोकरंग' के मंच पर दस्तक दी तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का विश्वास गहरा गया। उधर मुक्ताकाश में फैला शिल्प मेला हस्त कारीगरी के अनूठे कौशल से तैयार कलात्मक कृतियों से आगंतुकों को लुभाता रहा।

दरअसल यह गतिविधि बाज़ार की महिमा के युग में देसी ढंग से लड़ी जाने वाली एक सांस्कृतिक लड़ाई भर नहीं है, बल्कि विवेकशील ढंग से अपनी लोक परंपरा से सृजनात्मक रिश्ता बनाने की जगह है। यहाँ आकर हमारी स्मृतियाँ जागती हैं, बुझापन काफूर होता है। अपनी स्वाभाविकता में लौटने की पुकार उठती है। 'लोकरंग' की ज़रूरत हर दौर में बनी रहेगी।

# वनमाली सृजन पीठ

**भोपाल ● खण्डवा ● बिलासपुर ● दिल्ली ● सागर**

# साहित्य, संस्कृति एवं सृजन के लिये

सुप्रतिष्ठित कथाकार, शिक्षाविद् तथा विचारक स्व. जगन्नाथ प्रसाद चौबे 'वनमाली' के रचनात्मक योगदान और स्मृति को समर्पित वनमाली सृजन पीठ एक साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा रचनाधर्मी अनुष्ठान है, जो परंपरा तथा आधुनिक आग्रहों के बीच संवाद तैयार करने सतत सक्रिय है। साहित्य तथा कलाओं की विभिन्न विधाओं में हो रही सर्जना को प्रस्तुत करने के साथ ही उसके प्रति लोकरुचि का सम्मानजनक परिवेश निर्मित करना भी पीठ की प्रवृत्तियों में शामिल हैं। इस आकांक्षा के चलते रचनाधर्मियों से संवाद और विमर्श के सत्रों के अलावा यह सृजन पीठ शोध, अन्वेषण, अध्ययन तथा लेखन के लिए नवोन्मेषी प्रयासों तथा सृजनशील प्रतिभाओं को चिन्हित करने और उन्हें अभिव्यक्ति के यथासंभव अवसर उपलब्ध कराने का काम भी करेगी। बहुलता का आदर और समावेशी रचनात्मक आचरण हमारी गतिशीलता के अभीष्ट हैं।

### सक्रियता के आधार बिन्दु

पुस्तकालय तथा अध्ययन केन्द्र की स्थापना ● कथा, उपन्यास और आलोचना के साथ ही कविता तथा अन्य साहित्यिक विधाओं पर एकाग्र रचनापाठ एवं संवाद गोष्ठियाँ ● स्थानीय तथा प्रवासी साहित्यकार कलाकारों के प्रदर्शन सह व्याख्यान ● पुस्तक चर्चाएँ ● साहित्य तथा कलाओं के अंतर्संबंधों की पड़ताल ● अग्रज और नई पीढ़ी के सर्जकों के बीच विमर्श ● चयनित कलाकारों साहित्यकारों के मोनोग्राफ का प्रकाशन ● बच्चों की कलात्मक अभिरुचि का प्रोत्साहन ● अध्ययन और शोध के अवसर उपलबध कराना ● उत्कृष्ट सर्जना का सम्मान ● पारंपरिक कलारूपों और समकालीन सृजन संवाद का दस्तावेजीकरण ● साहित्यिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले शहरों कस्बों में विभिन्न आयोजन ● लोक, शास्त्रीय, उपशास्त्रीय, सुगम संगीत तथा वृन्दगान की प्रस्तुतियाँ ● अन्य समानधर्मी संस्थाओं के साथ लिकर गतिविधियों की साझेदारी।


● 22, ई-7, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-16 फोन: 0755-242806

● 25, ए, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल-462011

फोन: 0755-4923952, मो. 9424446584, 9425675811

सांस्कृतिक सरोकारों और
समकालीन कला चेतना का

# जीवंत दस्तावेज़

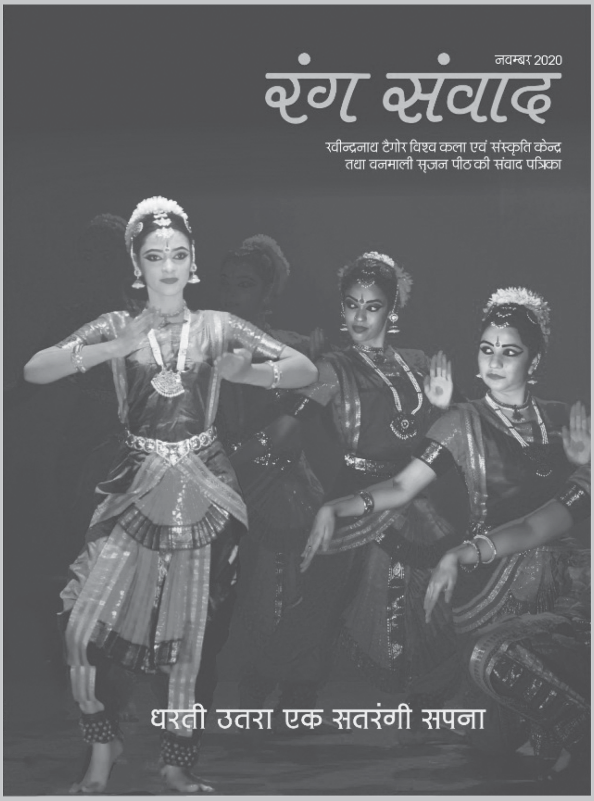



**संपादकीय संपर्क**

वनमाली सृजन पीठ

22, ई-7, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462016

मो. 9826256733, मो. 9826392428 फोन नं. 0755-2423806

ई-मेल : choubey@aisect.org ई-मेल : vinay.srujan@gmail.com

**आईसेक्ट पब्लिकेशन**

ज्ञान-विज्ञान, कौशल विकास तथा कला-साहित्य पर हिंदी, अंग्रेजी एवं अन्य भाषाओं में पुस्तकों और पत्रिकाओं का राष्ट्रीय प्रकाशन

## सभी लेखकों के लिए प्रस्तुत है आईसेक्ट पब्लिकेशन की

# स्व-प्रकाशन योजना

हिंदी भाषा, साहित्य एवं विज्ञान की विभिन्न विधाओं में पुस्तकों के प्रकाशन में आने वाली कठिनाइयों को देखते हुए आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल ने लेखकों के लिए स्व-प्रकाशन योजना एक अनूठे उपक्रम के रूप में शुरू की है।

जिन रचनाकारों को अपनी मौलिक, अनूदित, संपादित रचनाओं का पुस्तक रूप में प्रकाशन करवाना है, वे कम्प्यूटर पर साफ-साफ अक्षरों में कागज के एक ओर टाइप की हुई पांडुलिपि की सॉफ्ट कॉपी के साथ आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल से संपर्क करें।

## आईसेक्ट पब्लिकेशन से पुस्तक प्रकाशन के लाभ ही लाभ

- प्रकाशित पुस्तक आईसेक्ट पब्लिकेशन की पुस्तक सूची में शामिल की जायेगी।
- पुस्तक, बिक्री के लिये सुप्रसिद्ध स्टॉलों एवं मेलों आदि में उपलब्ध रहेगी।
- प्रकाशित पुस्तक की समीक्षा सुप्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराई जायेगी।
- प्रकाशित पुस्तक, शहरों व कस्बों में स्थापित वनमाली सृजनपीठ के सृजन केन्द्रों में पठन-पाठन और चर्चा के लिए भिजवाई जायेगी।
- पुस्तक के लोकार्पण और साहित्यिक मंच पर संवाद-चर्चा आदि की व्यवस्था की जायेगी।
- पुस्तक चयनित ई-पोर्टल (अमेज़न, फ्लिपकार्ट, आईसेक्ट ऑनलॉइन आदि) पर भी बिक्री के लिये प्रदर्शित की जायेगी।

**सुरुचिपूर्ण फोर कलर प्रिंटिंग • आकर्षक गेटअप • नयनाभिराम पेपर बैक में**

**कुल बिक्री के आधार पर वर्ष में एक बार नियमानुसार रॉयल्टी भी**

**पांडुलिपि किसी भी विधा में स्वीकार**

### आईसेक्ट पब्लिकेशन, आपका पब्लिकेशन

### आप स्वयं पधारें या संपर्क करें

- प्रकाशन अधिकारी, आईसेक्ट पब्लिकेशन : 25/ए, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल-462011, फोन- 0755-4923952, मो. 9582623368
- अध्यक्ष, वनमाली सृजनपीठ : 25/ए, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल-462011 फोन- 0755-4923952, मो. 9425014166,
- E-mail : aisectpublications@aisect.org

# अंतरंग

## सदी के नायक

रविशंकर • सैयद हैदर रज़ा • सिद्धेश्वर सेन

## अलंकरण

भूरीबाई • कपिल तिवारी

## स्मृति शेष

अस्ताद देबू • सुनील कोठारी • गुलाम मुस्तफ़ा • मुकुंद लाठ • मंगलेश डबराल • अभिलाष • राजन मिश्र • नरेन्द्र कोहली • मंजूर एहतेशाम • कुँअर बेचैन • सिद्धराम स्वामी कोरवार • राजाराम • सुरेश मिश्र • प्रभु जोशी • बटुक चतुर्वेदी • श्याम मुंशी • महेन्द्र गगन • रमेश उपाध्याय • सतीश मेहता • ज़हीर कुरेशी • राजेश झरपुरे • अनिल चौबे • अनुराग सीठा • राजकुमार केसवानी • सुनील मिश्र • वसंत काशीकर • प्रशांत रामस्नेही • मोहन नागर

## आलेख एवं संवाद

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय • मोहन आगाशे • अतुल तिवारी • निर्मला डोसी • जवाहर कर्नावट • विजय मनोहर तिवारी • अजय बोकिल • विनय उपाध्याय • राकेश श्रीमाल और स्वरांगी साने की कविता

TAGORE INTERNATIONAL LITERATURE & ARTS FESTIVAL
विश्व रंग